

Impact Factor : 5.621



ISSN : 2321-0540

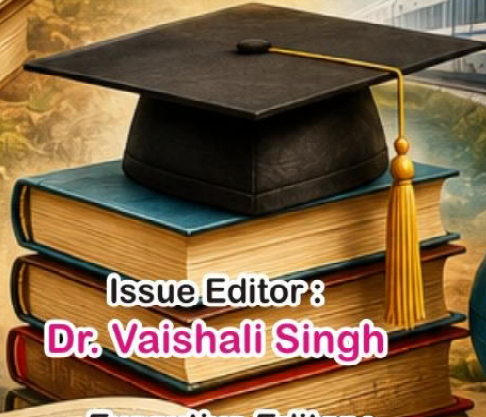
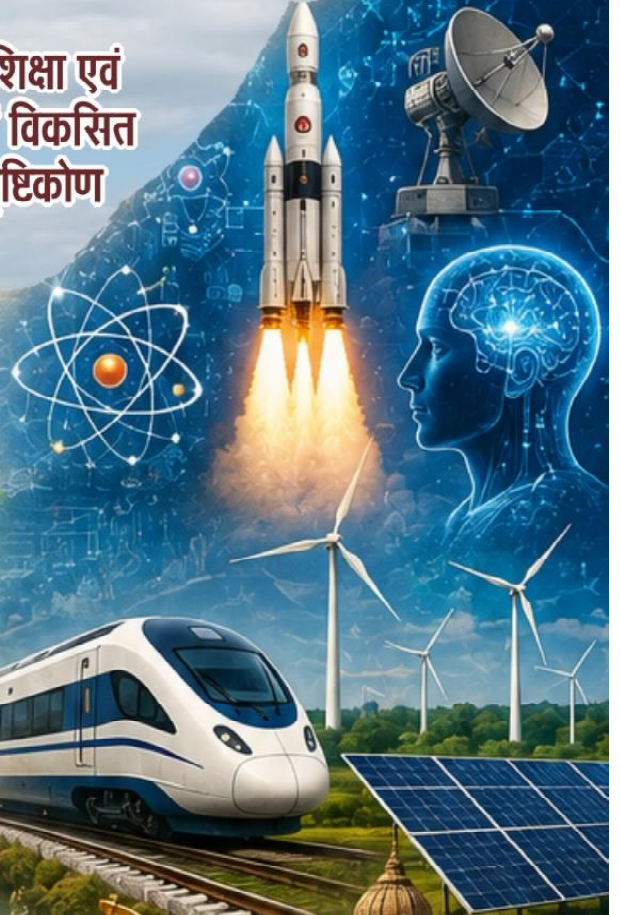
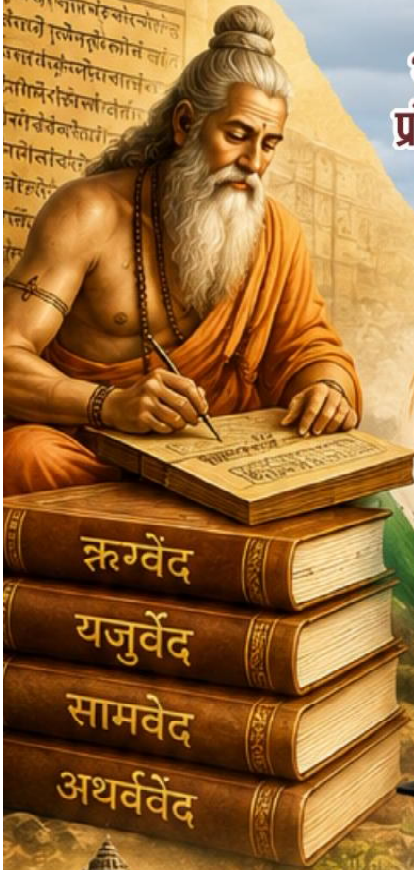
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

KANCHANLATA

कचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान विज्ञान, संस्कृति, शिक्षा एवं
प्रौद्योगिकी का समन्वय: सतत एवं विकसित
भारत की दिशा में बहुविषयक दृष्टिकोण
विशेषांक - 2026



Issue Editor:

Dr. Vaishali Singh

Executive Editor :

Dr. Naresh Sihag Adv.

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित



KANCHANLATA

कंचनलता (त्रैमासिक)



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

वर्ष-15

अंक-3(1)

अगस्त 2026 (विशेषांक)

ISSN : 2321-0540

प्रधान सम्पादक :

डॉ. भरत मिश्र प्राची
विला 15, अशियाना ग्रीनस, सीकर
रोड़, जयपुर, राजस्थान।

कार्यकारी संपादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी
हरियाणा-127021

सह-संपादक :

डॉ. शिवकरण निमल

प्रबंध संपादक :

डॉ. वैशाली सिंह

डिजीटल संपादक :

डॉ. रोहतास निम्मी

अक्षर संयोजन :

मो. सलीम

कानूनी सलाहकार :

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
अजीत सिहाग, एडवोकेट

अंतर्राष्ट्रीय सम्पादक/परामर्श मंडल :

श्री आर.के राज

डॉ. निशीथ गौड, आगरा

डॉ. उषा रानी, शिमला

डॉ. गोविन्द सोनी, श्रीगंगानगर

डॉ. सुनिता सारस्वत, पचेरी बड़ी, झुन्झुनू

डॉ. सुषमा रानी, जीन्द

डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल

श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन

डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा

1. 'कंचनलता' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'कंचनलता' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी हैं।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी (हरियाणा) न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक, मुद्रक, स्वामित्व कलावती देवी डॉ. भरत मिश्र प्राची के वास्ते डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवा, गीना प्रकाशन भिवानी (हरियाणा) से डिजीटल/पीडीएफ प्रसारित किया।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

विषय विशेषज्ञ/सम्पादकीय मण्डल :

डॉ. मुदिता पोपली, प्राचार्य

मां करणी बी.एड. कॉलेज, नाल, बीकानेर, राजस्थान।

डॉ. (श्रीमती) अभिलाषा सैनी, प्राचार्य,

स्वर्गीय रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला- बलोदबाजार, मध्य प्रदेश।

डॉ. माया गोला, असिस्टेंट प्रोफेसर,

हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड) पिन - कोड 263601

डॉ. मोहित शर्मा

श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)

रजनी प्रिया

रांगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वाटर संख्या - 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद

लैंडमार्क - नियर श्रमिक चौक, पोस्ट जिला - धनबाद, पिन कोड - 826001, राज्य - झारखंड

Dr. Tapasya Chauhan, Assistant Professor,

Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Uttar Pradesh)

Dr. AMBILI V. S., Assistant Professor, Department of Hindi,

N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.

Dr. Om Prakash Mehrara, Director,

Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)

Dr. Anju Bala, Assistant Professor Hindi,

Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001

डॉ. आंचल कुमारी, असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी,

राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज, गाजियाबाद। चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

डॉ. सरिता भवानी मालवीय, असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ,

आरकेडीएफ विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश)

डॉ. संदीप कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग,

कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा।

डॉ. प्रमोद नाग, सहायक प्राध्यापक,

आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107

पल्लवी आर्य, असिस्टेंट प्रोफेसर, भाषा विज्ञान विभाग,

के.एम.आई. डॉ. भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

डॉ. अमित कुमार सिंह, डी.लिट् असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

के.एम.आई. डॉ. भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

कोकिला कुमारी, शोधार्थी,

रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड।

गोस्वामी सोनी बाला, शोधार्थी,

जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार।

अगस्त 2026-विशेषांक

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	नरेश सिहाग, वैशाली सिंह	07-08
2.	Modern Knowledge Systems in the Context of the National Education Policy (NEP) 2020 : An Analytical Study	Anil Sahani, Dr. Anamika Sahani	09-16
3.	भारतीय निर्वाचन प्रणाली में EVM एवं VVPAT की भूमिका : चुनावी पारदर्शिता और लोकतांत्रिक विश्वास का विश्लेषण	हर्षा जैन	17-21
4.	महिला सशक्तिकरण में शिक्षा और प्रौद्योगिकी की भूमिका	निरंजन कुमार	22-25
5.	भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान समन्वय	संध्या कुमारी	26-29
6.	प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली	प्रा. ज्ञानेश्वर किसन बगनर	30-34
7.	मानसिक स्वास्थ्य, तनाव प्रबन्धन एवं समग्र कल्याण में योग की भूमिका	डॉ. लावण्या संजय	35-39
8.	सितार का मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक चिंतन से संबंध	किरण पाड़ीहार	40-52
9.	स्थानीय उत्पादों के माध्यम से सांस्कृतिक और आर्थिक पुनर्जागरण	सुश्री नीलम पाटीदार	53-57
10.	नेपथ्य राग में स्त्री जीवन	NANDU MURALI	58-62
11.	भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकज्ञान और आधुनिक सतत विकास : आत्मनिर्भर एवं विकसित भारत 2047 की दिशा में एक बहुविषयक अध्ययन	डॉ. पूनम आर्या	63-66
12.	भगवद्गीता के अनुसार भक्तियोग : तनावपूर्ण आधुनिक जीवन के लिए एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण	Vandana	67-74
13.	सतत विकास में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की भूमिका	डॉ. बरखा घावरी	75-79
14.	दरबारी सत्ता के बीच बेला : 'राग दरबारी' में स्त्री अस्तित्व का संघर्ष	डॉ. प्रणीता पी.	80-84
15.	ग्रामीण विकास में विज्ञान, शिक्षा और प्रौद्योगिकी की भूमिका	Dr. Rupali Nag	85-87
16.	भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा में आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक मूल्यों का वैश्विक आयाम	रोहित	88-91
17.	हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य और समकालीन दृष्टि	शिमला रानी, डॉ. जसबीर भारत	92-96
18.	Perception, Testimony and Tradition : Nyaya Philosophy's Pratyaksha and Shabda for Indigenous Knowledge in Sustainability	Dr. Subitha K. A.	97-100

19. NATIONAL EDUCATION POLICY 2020 AND THE INDIAN KNOWLEDGE SYSTEM	Dr. Ramesh K.Shende	101-109
20. हिन्दी दलित आत्मकथाओं में बिम्ब और प्रतीक योजना : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	वंदना माथुर	110-115
21. डिजिटल भारत और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण : अवसर, चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ	Dr. Amir Khan	116-120
22. भारतीय दर्शन और सतत जीवन शैली का अध्ययन	प्रवीण वर्मा	121-126
23. प्रसाद-साहित्य में औपनिवेशिक सत्ता, सांस्कृतिक अस्मिता और भारतीय नवजागरण का आलोचनात्मक अध्ययन	शिशिर कुमार प्रियदर्शी, प्रो०(डॉ०)कैलाशपति गोस्वामी	127-137
24. Generative AI and its Impact on the Applications, Opportunities and Risks related to Media : An Analytical Review	Prabhat Indora	138-146
25. राष्ट्रीय शैक्षणिक धोरण २०२० च्या पार्श्वभूमीवर भारतीय ज्ञान परंपरा आणि मराठी संतसाहित्याचे लोकाभिमुख योगदान : एक चिकित्सक अभ्यास	प्रा. डॉ. रवींद्र श्रीहरी सोमोशी.	147-151
26. Women, Memory and Indigenous Wisdom : Exploring the Role of Female Voices in Contemporary Indian English Literature	Ashwini Kamble	152-159
27. Indian Cultural Values and Sustainable Entrepreneurship : Fostering Ethical, Innovative and Resilient Enterprises for Viksit Bharat 2047	Ishika Chugh	160-168
28. जनप्रिय संस्कृति एवं डिजिटल भारत : सांस्कृतिक संक्रमण एवं परिवर्तन की दृष्टि	निखिला आर	169-172
29. भारतीय ज्ञान परंपरा में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता	मंजू राठौर, डॉ. पंकज मिश्र	173-180
30. विज्ञान आणि तंत्रज्ञान क्षेत्रातील 'आत्मनिर्भर भारत'ची भूमिका	प्रा.डॉ.प्रभाकर गणपत गावंड	181-186
31. 20वीं शताब्दी का 'हिन्दी काव्य और युगीवाद'	डॉ. निर्मला जोशी	187-192
32. Ecocritical Perspectives and Environmental Awareness in Ancient Indian Literature	Dr. Mangesh Madhukar Gore	193-197

33. हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक परिवेश डॉ. प्रदीप कुमार 198-201
34. हिंदी कहानियों का सिनेमा में रूपांतरण : एक यात्रा डॉ. विश्वनाथ चंद्रकांत पटेकर 202-204
35. महिलाओं की बदलती सामाजिक स्थिति में भारतीय संविधान प्रदत्त अधिकारों की भूमिका : एक अध्ययन प्रा. प्रफुल इ. ढोके 205-209
36. Leveraging Education and Technology for Women's Socio-Economic Empowerment Dr. Anamika Sahani 210-220
37. Libraries and Knowledge Management in Ancient South India : Characteristics and Historical Overview Sudhakar
(8th to 17th Century) Sakharam Kamble 221-225
38. पुनरावृत्त पठन तकनीक और अंग्रेजी मौखिक पठन प्रवाहिता : एक क्रियात्मक विश्लेषण Pratibha Raman 226-230
39. भारतीय ज्ञान परम्परा में किसान चेतना का महत्व एवं योगदान प्रसेन जीत सिंह 231-234
40. डॉ० सुरेन्द्र दत्त सेमल्टी की बाल कविताओं में राष्ट्रीय चेतना शालू जोशी,
डॉ० अलका मोहन शर्मा 235-238
41. The Word That Will Not Sit Still : Orality, Collective Authorship, and the Living Grammar of Folk Expression Siddharth 239-244
42. भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी का एकीकरण एवं माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता के प्रति अभिवृत्ति संतोष कुमार उपाध्याय,
डॉ.(प्रो.)उमेश प्रसाद यादव 245-252



संपादकीय.....

भारतीय ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, शिक्षा एवं प्रौद्योगिकी का समन्वय : सतत एवं विकसित भारत की दिशा में बहुविषयक दृष्टिकोण

भारत की सभ्यता और संस्कृति विश्व की प्राचीनतम ज्ञान परंपराओं में से एक है। भारतीय मनीषियों ने ज्ञान को केवल पुस्तकीय विषय न मानकर जीवन, प्रकृति, समाज और मानव कल्याण से जोड़कर देखा। वेद, उपनिषद, दर्शन, आयुर्वेद, गणित, खगोल विज्ञान, कृषि, वास्तु, भाषा, साहित्य और कला आदि क्षेत्रों में भारत की समृद्ध ज्ञान-परंपरा इसका प्रमाण है। आज जब विश्व तीव्र तकनीकी परिवर्तन, पर्यावरणीय संकट, सामाजिक असमानता और मानवीय मूल्यों के क्षरण जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के समन्वय की आवश्यकता और अधिक प्रासंगिक हो गई है।

वर्तमान समय में विकसित भारत का लक्ष्य केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित नहीं हो सकता। वास्तविक विकास वह है जिसमें आर्थिक समृद्धि के साथ सामाजिक न्याय, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, वैज्ञानिक सोच, सांस्कृतिक चेतना, पर्यावरण संरक्षण और मानवीय मूल्यों का संतुलित विकास हो। इसके लिए आवश्यक है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संवाद स्थापित करे और विद्यार्थियों में रचनात्मकता, अनुसंधान, नवाचार तथा समस्या-समाधान की क्षमता विकसित करे। भारतीय ज्ञान-विज्ञान और आधुनिक विज्ञान एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर पूरक हो सकते हैं। हमारी पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों में प्रकृति के साथ संतुलित जीवन, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और सामुदायिक उत्तरदायित्व की अनेक उपयोगी अवधारणाएँ विद्यमान हैं। आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी इन अवधारणाओं का वैज्ञानिक परीक्षण, पुनर्व्याख्या और नवीन परिस्थितियों में उपयोग करने की संभावनाएँ प्रदान करती है। आवश्यकता इस बात की है कि परंपरा को अंधानुकरण के रूप में नहीं, बल्कि शोध, तर्क और प्रमाण के आधार पर समझा जाए। शिक्षा इस समन्वय की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो विद्यार्थियों को केवल रोजगार के लिए तैयार न करे, बल्कि उन्हें जिम्मेदार, संवेदनशील, वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले और राष्ट्र के प्रति जागरूक नागरिक बनाए। भारतीय भाषाओं, साहित्य, कला, संस्कृति और इतिहास के अध्ययन के साथ विज्ञान, तकनीकी शिक्षा, डिजिटल ज्ञान, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और अनुसंधान को समान महत्व देना आज की आवश्यकता है।

बहुविषयक दृष्टिकोण इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी भी जटिल सामाजिक या राष्ट्रीय समस्या का समाधान केवल एक विषय के माध्यम से संभव नहीं है। जल संकट, जलवायु परिवर्तन, ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य, कृषि, रोजगार, डिजिटल असमानता और शिक्षा जैसे विषयों पर विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, पर्यावरण अध्ययन, प्रौद्योगिकी, मानविकी और भारतीय ज्ञान परंपरा को साथ लेकर कार्य करना होगा। यही समन्वित दृष्टिकोण भारत को आत्मनिर्भर, नवाचारी और सतत विकास की दिशा में आगे ले जा सकता है।

प्रौद्योगिकी ने ज्ञान के प्रसार और अनुसंधान के नए द्वार खोले हैं। डिजिटल शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जैव-प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्र भारत की विकास यात्रा को नई गति दे रहे

हैं। किंतु तकनीकी विकास के साथ नैतिकता और मानवीय संवेदनशीलता का संतुलन भी आवश्यक है। तकनीक मानव जीवन को सरल बनाए, प्रकृति के संरक्षण में सहायक हो और समाज के प्रत्येक वर्ग तक अवसर पहुँचाए — यही तकनीकी प्रगति की सार्थकता है।

आज आवश्यकता एक ऐसे भारत के निर्माण की है जो अपनी गौरवशाली ज्ञान—संपदा से प्रेरणा लेते हुए आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों को अपनाए जो अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा हो और भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार भी हो। 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और प्रकृति के प्रति सम्मान जैसी भारतीय अवधारणाएँ सतत एवं मानवीय विकास के वैश्विक विमर्श को नई दिशा दे सकती हैं।

प्रस्तुत अंक इसी व्यापक चिंतन को केंद्र में रखता है। इसमें विभिन्न विषयों के शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों और चिंतकों के विचारों एवं शोधकार्य के माध्यम से भारतीय ज्ञान—विज्ञान, संस्कृति, शिक्षा और प्रौद्योगिकी के अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास किया गया है। आशा है कि यह अंक पाठकों, शोधार्थियों और शिक्षाविदों के लिए नए विमर्श, शोध और नवाचार की प्रेरणा बनेगा तथा सतत, समावेशी और विकसित भारत के निर्माण की दिशा में सार्थक बौद्धिक योगदान देगा।



गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540



KANCHANLATA कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Modern Knowledge Systems in the Context of the National Education Policy (NEP) 2020 : An Analytical Study

Anil Sahani, Reseach Scholar, School of Education

Dr. Anamika Sahani, Assistant Professor, School of Education

Babu Banarasi Das University, Lucknow.

Abstract :

The National Education Policy (NEP) 2020 marks a transformative shift in India's education system by emphasizing multidisciplinary learning, innovation, research, digital integration, and holistic development. In the twenty-first century, knowledge is increasingly driven by technological advancements, interdisciplinary collaboration, and global connectivity. Modern Knowledge Systems (MKS) encompass scientific inquiry, digital technologies, artificial intelligence, data analytics, innovation ecosystems, and sustainable development practices that collectively shape educational and societal progress. NEP 2020 recognizes the importance of integrating these contemporary knowledge systems with India's rich intellectual heritage to prepare learners for emerging global challenges.

The study adopts a descriptive and analytical approach based on the review of policy documents, government reports, and recent scholarly literature. It concludes that effective implementation of NEP 2020 requires collaborative efforts among policymakers, educational institutions, teachers, and industry stakeholders to establish a knowledge-driven education system capable of meeting national priorities and global standards.

Keywords : National Education Policy 2020, Modern Knowledge Systems, Artificial Intelligence, Multidisciplinary Learning, Innovation, .

1. Introduction :

Education has always been recognized as the foundation of social transformation, economic development, and national progress. In the rapidly changing global environment, traditional approaches

to knowledge are being complemented by modern knowledge systems that emphasize innovation, digital transformation, interdisciplinary learning, research excellence, and lifelong learning. The Fourth Industrial Revolution, characterized by artificial intelligence (AI), machine learning, robotics, cloud computing, big data, and the Internet of Things (IoT), has significantly influenced the nature of education and knowledge creation. Consequently, educational systems worldwide are redesigning curricula and pedagogical practices to prepare learners for complex and dynamic future challenges. India introduced the National Education Policy (NEP) 2020 to reform its education system in alignment with twenty-first-century requirements. The policy seeks to create an education system that is equitable, inclusive, flexible, multidisciplinary, and globally competitive while preserving India's cultural and intellectual traditions. One of the defining features of NEP 2020 is its emphasis on integrating modern knowledge systems with Indian Knowledge Systems (IKS), thereby promoting balanced educational development rooted in both innovation and heritage.

Modern Knowledge Systems refer to contemporary frameworks of knowledge generation, dissemination, and application supported by scientific research, digital technologies, innovation, entrepreneurship, and collaborative learning. These systems prioritize problem-solving, creativity, critical thinking, technological competence, and evidence-based decision-making. Educational institutions are expected to foster these competencies through learner-centered pedagogies, technology-enabled education, project-based learning, and interdisciplinary research.

NEP 2020 recognizes that future graduates must possess not only subject knowledge but also digital literacy, communication skills, analytical thinking, adaptability, ethical values, and global citizenship competencies. The policy introduces several structural reforms, including flexible curriculum design, multiple entry and exit options, competency-based assessment, multidisciplinary universities, vocational integration, and enhanced research opportunities through the National Research Foundation. These reforms collectively aim to strengthen India's knowledge economy and position the country as a global leader in education, innovation, and research.

Furthermore, the COVID-19 pandemic accelerated the adoption of digital education, online learning platforms, virtual classrooms, and educational technologies, making modern knowledge systems more relevant than ever before. NEP 2020 acknowledges these developments by promoting blended learning, digital infrastructure, open educational resources, and technology-assisted teaching-learning processes.

In this context, examining the role of Modern Knowledge Systems within the framework of NEP 2020 is essential for understanding how educational reforms can contribute to sustainable national

development and global competitiveness. This paper provides an analytical discussion of the opportunities, challenges, and future prospects associated with the integration of modern knowledge systems into India's evolving educational landscape.

2- Objectives of the Study :

The present study is guided by the following objectives :

- To examine the concept and significance of Modern Knowledge Systems in contemporary education.
- To analyze the major provisions of the National Education Policy (NEP) 2020 related to knowledge creation and dissemination.
- To explore the integration of modern knowledge systems within the framework of NEP 2020.

3. Research Methodology :

The present paper adopts a descriptive and analytical research design based entirely on secondary data. Information has been collected from authentic and reliable sources, including the National Education Policy (NEP) 2020 document, reports published by the Ministry of Education, University Grants Commission (UGC), All India Council for Technical Education (AICTE), UNESCO publications, peer-reviewed journal articles, books, and government reports. The collected literature has been critically reviewed, interpreted, and synthesized to understand the relationship between NEP 2020 and Modern Knowledge Systems. The study does not involve primary data collection and focuses on conceptual analysis and policy interpretation.

4. Concept of Modern Knowledge Systems :

Knowledge has evolved significantly over the last few decades due to rapid technological advancement, globalization, and interdisciplinary research. Traditional knowledge systems primarily focused on subject-specific learning and teacher-centered instruction, whereas Modern Knowledge Systems (MKS) emphasize innovation, collaboration, digital technologies, scientific inquiry, and lifelong learning.

Modern Knowledge Systems can be defined as an integrated framework of knowledge generation, management, dissemination, and application supported by advanced technologies, research, creativity, and evidence-based practices. These systems encourage learners to acquire competencies that enable them to solve real-life problems, adapt to changing environments, and contribute to sustainable development.

Major Components of Modern Knowledge Systems :

S.N.	Component	Description
1.	Digital Technologies	Integration of ICT, online learning, virtual classrooms, and digital platforms.
2.	Artificial Intelligence	Personalized learning, intelligent tutoring systems, automated assessment, and educational analytics.
3.	Interdisciplinary Learning	Combining knowledge from multiple disciplines to solve complex problems.
4.	Research and Innovation	Promoting scientific inquiry, experimentation, and evidence-based learning.
5.	Skill-Based Education	Developing employability skills, entrepreneurship, leadership, and professional competencies.
6.	Lifelong Learning	Continuous acquisition of knowledge throughout life using flexible learning opportunities.

5. National Education Policy (NEP) 2020 : A Transformative Educational Framework :

The National Education Policy (NEP) 2020 represents one of the most comprehensive educational reforms undertaken in India after more than three decades. It seeks to transform the country's education system into one that is inclusive, flexible, multidisciplinary, technology-driven, and globally competitive. The policy aligns education with the demands of the twenty-first century while preserving India's cultural and intellectual heritage.

One of the primary objectives of NEP 2020 is to move away from rote learning toward competency-based and experiential learning. The policy encourages students to develop conceptual understanding, creativity, analytical thinking, communication skills, and problem-solving abilities rather than focusing solely on examination performance.

The policy introduces several significant reforms that directly support the development of Modern Knowledge Systems :

- **Multidisciplinary Education :** Students are encouraged to study subjects across different disciplines, promoting holistic and flexible learning.
- **Academic Flexibility :** Multiple entry and exit options, along with the Academic Bank of Credits (ABC), provide flexibility in higher education.
- **Technology Integration :** Digital education, online learning platforms, virtual laboratories, and educational technologies are promoted to enhance teaching-learning processes.
- **Research Promotion :** The establishment of the National Research Foundation (NRF) aims to strengthen research culture and innovation across higher education institutions.

- **Skill Development :** Vocational education, internships, entrepreneurship, and industry collaboration are integrated into mainstream education.
- **Teacher Development :** Continuous professional development programs enable teachers to adopt innovative pedagogical approaches and digital teaching competencies.
- **Equity and Inclusion :** The policy emphasizes equal educational opportunities for learners irrespective of their geographical, social, or economic backgrounds.

These reforms collectively create an ecosystem that supports knowledge creation, innovation, research, and global competitiveness.

6. **Integration of Modern Knowledge Systems under NEP 2020 :**

NEP 2020 strongly advocates the integration of modern knowledge systems into every level of education. The policy recognizes that future societies will depend on individuals who possess not only academic knowledge but also technological competence, creativity, collaboration, adaptability, and ethical responsibility.

The policy promotes learner-centered education by encouraging active participation, project-based learning, experiential learning, inquiry-based teaching, and collaborative learning. These pedagogical approaches help students develop critical thinking, innovation, and real-world problem-solving skills.

Digital technologies form one of the strongest pillars of Modern Knowledge Systems under NEP 2020. The policy supports the use of Learning Management Systems (LMS), Massive Open Online Courses (MOOCs), virtual laboratories, educational software, digital libraries, artificial intelligence-based learning tools, and online assessment systems. Such technologies improve accessibility, flexibility, and quality of education while enabling personalized learning experiences. Furthermore, NEP 2020 encourages interdisciplinary research, innovation ecosystems, incubation centers, industry-academia collaboration, and startup culture within higher education institutions. These initiatives contribute to building a knowledge economy capable of addressing national and global challenges.

The integration of Modern Knowledge Systems under NEP 2020 ultimately aims to create graduates who are innovative, digitally competent, socially responsible, globally competitive, and capable of contributing to sustainable national development.

7. **Role of Artificial Intelligence, Digital Technologies, and Innovation in Modern Knowledge Systems :**

Artificial Intelligence (AI), digital technologies, and innovation have become central to modern education and knowledge creation. NEP 2020 recognizes that technology is not merely a supporting tool but a transformative force capable of improving teaching, learning, assessment, research, and

educational administration. The policy encourages educational institutions to adopt digital platforms, smart classrooms, virtual laboratories, online assessment systems, and Learning Management Systems (LMS) to enhance the quality and accessibility of education.

Artificial Intelligence enables personalized learning experiences by analyzing students' learning patterns and providing customized educational support. AI-powered applications assist teachers in designing instructional materials, monitoring student performance, and identifying learning gaps. Adaptive learning technologies also help learners progress at their own pace, making education more inclusive and learner-centered.

The policy also promotes digital literacy as an essential twenty-first-century skill. Students are expected to develop competencies in information and communication technology (ICT), data analysis, computational thinking, cybersecurity awareness, and responsible digital citizenship. Such competencies prepare learners for emerging professions and enhance their employability in a knowledge-driven economy.

8. Opportunities of Modern Knowledge Systems under NEP 2020 :

The integration of Modern Knowledge Systems within the framework of NEP 2020 offers several significant opportunities for learners, teachers, institutions, and society.

First, multidisciplinary education enables students to acquire knowledge across diverse disciplines, thereby promoting holistic development and flexible career pathways. Students are no longer restricted to a single discipline but can combine subjects according to their interests and professional aspirations.

Second, technology-enabled education increases access to quality learning resources regardless of geographical location. Online learning platforms, digital libraries, virtual laboratories, and open educational resources provide learners with flexible and affordable educational opportunities.

Third, research and innovation receive greater emphasis through initiatives such as the National Research Foundation (NRF). Increased funding, collaborative research, and interdisciplinary projects strengthen India's research ecosystem and encourage evidence-based problem-solving.

Fourth, skill-based education enhances employability by integrating vocational education, internships, entrepreneurship, communication skills, leadership, and critical thinking into academic programs. Such reforms reduce the gap between academic learning and industry requirements.

Fifth, lifelong learning opportunities enable individuals to continuously upgrade their knowledge and skills throughout their careers. Flexible learning pathways, online certification programs, and digital platforms make continuous professional development more accessible.

Finally, Modern Knowledge Systems strengthen India's global competitiveness by preparing graduates capable of participating in international research, innovation, and technological advancement.

9. Challenges in Implementing Modern Knowledge Systems :

Despite its transformative vision, the successful implementation of Modern Knowledge Systems under NEP 2020 faces several challenges.

One of the major challenges is the digital divide. Many students, particularly in rural and economically disadvantaged regions, continue to experience limited access to internet connectivity, digital devices, and technological infrastructure. This inequality affects the quality and accessibility of digital education.

Another challenge is inadequate faculty preparedness. Many teachers require continuous professional development to effectively integrate digital technologies, artificial intelligence, competency-based assessment, and innovative pedagogical practices into classroom teaching.

Infrastructure constraints also hinder effective implementation. Several educational institutions lack smart classrooms, high-speed internet, research laboratories, digital libraries, and advanced technological resources required for knowledge-intensive education.

Financial limitations represent another significant concern. Successful implementation of NEP 2020 demands substantial investment in infrastructure, research facilities, faculty training, and digital technologies. Resource constraints may slow the pace of educational transformation.

Resistance to change among institutions and stakeholders may also delay reforms. Transitioning from traditional teacher-centered approaches to learner-centered and technology-driven education requires changes in institutional culture, curriculum design, assessment systems, and administrative practices.

10. Suggestions :

The following measures may strengthen the implementation of Modern Knowledge Systems under NEP 2020 :

- Strengthen digital infrastructure in schools and higher education institutions.
- Organize continuous faculty development programmes on AI, digital pedagogy, and innovative teaching practices.
- Increase investment in research, innovation, and technology-enabled education.
- Promote stronger collaboration between universities, industries, research organizations, and government agencies.
- Ensure equitable access to digital learning resources for rural and disadvantaged learners.
- Encourage interdisciplinary research, entrepreneurship, and startup culture within educational institutions.
- Develop effective quality assurance mechanisms for online and blended learning programmes.
- Integrate ethical use of artificial intelligence, cybersecurity awareness, and digital citizenship

into the curriculum.

11. Conclusion :

The National Education Policy (NEP) 2020 represents a landmark reform that seeks to transform India's education system into a knowledge-driven, technology-enabled, and globally competitive ecosystem. The policy recognizes that Modern Knowledge Systems are essential for preparing learners to meet the demands of the twenty-first century. By emphasizing multidisciplinary education, digital transformation, research, innovation, skill development, and lifelong learning, NEP 2020 creates opportunities for educational excellence and national development.

However, the successful realization of these objectives depends on effective implementation, adequate financial investment, faculty preparedness, technological infrastructure, and institutional commitment. Addressing challenges such as the digital divide, infrastructure gaps, and capacity building will be critical to achieving the policy's vision.

In conclusion, the integration of Modern Knowledge Systems under NEP 2020 has the potential to create an education system that nurtures creativity, innovation, ethical leadership, and global citizenship while preserving India's rich intellectual heritage. With sustained collaboration among policymakers, educators, researchers, industry, and society, India can establish a resilient and future-ready education system capable of contributing to sustainable national and global development.

Reference :

- Miao, F., Holmes, W., Huang, R., & Zhang, H. (2021). AI and education: Guidance for policy-makers.
- Romero, M., et al. (2023). Teaching and learning in the age of artificial intelligence.
- Chan, C. K. Y. (2023). A Comprehensive AI Policy Education Framework for University Teaching and Learning.
- Tzirides, A. O., Saini, A., Zapata, G., et al. (2023). Generative AI: Implications and Applications for Education.
- Kamalov, F., Santandreu Calonge, D., & Gurrib, I. (2023). New Era of Artificial Intelligence in Education: Towards a Sustainable Multifaceted Revolution.
- University Grants Commission. (2022). Guidelines for Transforming Higher Education Institutions under NEP 2020.
- All India Council for Technical Education. (2022). AICTE Approval Process Handbook.
- Ministry of Education. (2021). Implementation Plan for National Education Policy 2020.

भारतीय निर्वाचन प्रणाली में EVM एवं VVPAT की भूमिका : चुनावी पारदर्शिता और लोकतांत्रिक विश्वास का विश्लेषण

हर्षा जैन

शोधार्थी (Ph.D.), राजनीति विज्ञान

भारती विश्वविद्यालय, पुलगांव चौक, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

सारा (Abstract)

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है, जहाँ चुनाव केवल शासन परिवर्तन का माध्यम नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों की अभिव्यक्ति का आधार भी हैं। स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव लोकतंत्र की सफलता की प्रमुख शर्त माने जाते हैं। समय के साथ चुनावी प्रक्रिया में बढ़ती मतदाता संख्या, मतपेटियों की सुरक्षा, बूथ कैप्चरिंग, अवैध मतदान तथा मतगणना में विलंब जैसी समस्याओं ने भारत को तकनीकी समाधान अपनाने के लिए प्रेरित किया। इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप भारतीय निर्वाचन आयोग ने इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (Electronic Voting Machine–EVM) को चरणबद्ध रूप से लागू किया तथा बाद में मतदाता सत्यापन योग्य कागजी पर्ची प्रणाली (Voter Verifiable Paper Audit Trail–VVPAT) को जोड़ा, जिससे मतदाता अपने मत का दृश्य सत्यापन कर सकें। VVPAT को सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुरूप पारदर्शिता बढ़ाने के उद्देश्य से अपनाया गया।

यद्यपि EVM एवं VVPAT ने मतगणना को तीव्र, त्रुटिरहित तथा अधिक व्यवस्थित बनाया है, फिर भी इनके संबंध में समय-समय पर राजनीतिक दलों, नागरिक संगठनों तथा विशेषज्ञों द्वारा पारदर्शिता, सत्यापन तथा जनविश्वास से जुड़े प्रश्न उठाए जाते रहे हैं। दूसरी ओर निर्वाचन आयोग का मत है कि भारतीय म्टड इंटरनेट या किसी नेटवर्क से जुड़ी नहीं होतीं तथा बहु-स्तरीय तकनीकी एवं प्रशासनिक सुरक्षा व्यवस्था के अंतर्गत संचालित की जाती हैं।

यह शोध-पत्र भारतीय निर्वाचन प्रणाली में EVM एवं VVPAT की भूमिका का विश्लेषण करते हुए चुनावी पारदर्शिता, लोकतांत्रिक विश्वास, न्यायिक दृष्टिकोण, वर्तमान चुनौतियों तथा भविष्य की संभावनाओं का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य तकनीकी दक्षता और लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व के बीच संतुलन स्थापित करने वाले चुनाव सुधारों की आवश्यकता को रेखांकित करना है।

मुख्य शब्द (Keywords) :

भारतीय निर्वाचन प्रणाली, EVM, VVPAT, चुनाव सुधार, निर्वाचन आयोग, चुनावी पारदर्शिता, लोकतांत्रिक विश्वास, निर्वाचन तकनीक।

1. भूमिका :

भारत का लोकतंत्र सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार पर आधारित है, जहाँ प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्र एवं निष्पक्ष वातावरण में मतदान करने का संवैधानिक अधिकार प्राप्त है। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तभी संभव है जब मतदाता को यह विश्वास हो कि उसका मत सुरक्षित रूप से दर्ज हुआ है तथा उसी के अनुरूप मतगणना की गई है। यही विश्वास चुनावी वैधता और लोकतांत्रिक स्थिरता की आधारशिला है।

स्वतंत्रता के बाद प्रारंभिक चुनावों में मतपत्र (Ballot Paper) का प्रयोग किया जाता था। उस समय चुनावों में मतपत्रों की छपाई, परिवहन, सुरक्षा, मतगणना में अत्यधिक समय तथा बूथ कैप्चरिंग जैसी समस्याएँ व्यापक रूप से सामने आती थीं। बढ़ती जनसंख्या और विशाल चुनावी प्रबंधन को देखते हुए भारत निर्वाचन आयोग ने इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) को एक तकनीकी समाधान के रूप में विकसित और लागू किया। इसका उद्देश्य मतदान प्रक्रिया को अधिक सरल, सुरक्षित तथा तेज बनाना था। EVM का व्यापक उपयोग 2000 के दशक से सभी आम एवं विधानसभा चुनावों में होने लगा।

हालाँकि EVM के प्रयोग से चुनावी प्रक्रिया में उल्लेखनीय सुधार हुए, फिर भी समय-समय पर इसकी विश्वसनीयता को लेकर प्रश्न उठते रहे। इन्हीं चिंताओं के समाधान हेतु VVPAT प्रणाली को जोड़ा गया, जिससे प्रत्येक मतदाता कुछ सेकंड के लिए अपनी मत-पर्ची देखकर यह सत्यापित कर सके कि उसका मत इच्छित प्रत्याशी के पक्ष में दर्ज हुआ है। यह पर्ची सुरक्षित बॉक्स में स्वतः गिर जाती है और आवश्यक होने पर सत्यापन के लिए उपयोग की जा सकती है।

आज EVM और VVPAT केवल तकनीकी उपकरण नहीं हैं, बल्कि चुनावी पारदर्शिता, जवाबदेही और लोकतांत्रिक विश्वास के महत्वपूर्ण आधार बन चुके हैं। फिर भी इनके संबंध में सार्वजनिक विमर्श, न्यायिक परीक्षण तथा सुधार की मांग निरंतर जारी है। इसलिए इनका राजनीतिक एवं लोकतांत्रिक दृष्टि से समालोचनात्मक अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

2. EVM एवं VVPAT का विकास :

भारत में प्रारंभिक चुनाव मतपत्र (Ballot Paper) के माध्यम से कराए जाते थे, किन्तु मतदाताओं की बढ़ती संख्या, मतगणना में विलंब, बूथ कैप्चरिंग तथा अमान्य मतों जैसी समस्याओं ने चुनाव प्रक्रिया में तकनीकी सुधार की आवश्यकता को स्पष्ट किया। इसी उद्देश्य से भारत निर्वाचन आयोग ने भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड (BEL) एवं इलेक्ट्रॉनिक्स कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (ECIL) के सहयोग से इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) का विकास किया।

EVM का प्रथम प्रयोग वर्ष 1982 में केरल के परूर विधानसभा क्षेत्र के कुछ मतदान केंद्रों पर किया गया। इसके बाद जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 61A के अंतर्गत स्टड के उपयोग को वैधानिक मान्यता प्राप्त हुई। वर्ष 2004 के लोकसभा चुनाव से पूरे देश में EVM का व्यापक उपयोग प्रारंभ हुआ।

EVM की विश्वसनीयता को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए Voter Verifiable Paper Audit Trail (VVPAT) प्रणाली विकसित की गई। VVPAT के माध्यम से मतदाता कुछ सेकंड के लिए यह देख सकता है कि उसका मत उसी प्रत्याशी के पक्ष में दर्ज हुआ है जिसे उसने चुना है। यह पर्ची सुरक्षित रूप से मशीन में संग्रहीत रहती है तथा आवश्यकता पड़ने पर सत्यापन के लिए उपयोग की जा सकती है।

डॉ. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत निर्वाचन आयोग (2013) के ऐतिहासिक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने

चुनावी पारदर्शिता और मतदाता के विश्वास को सुदृढ़ करने के लिए VVPAT को आवश्यक माना। इसके बाद चरणबद्ध रूप से VVPAT लागू किया गया और 2019 के लोकसभा चुनाव से सभी मतदान केंद्रों पर EVM के साथ इसका उपयोग अनिवार्य कर दिया गया।

वर्तमान में EVM एवं VVPAT भारतीय निर्वाचन प्रणाली का अभिन्न अंग हैं। इन्होंने चुनाव प्रक्रिया को अधिक तेज, पारदर्शी एवं प्रभावी बनाया है, साथ ही लोकतांत्रिक विश्वास को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

3. भारतीय निर्वाचन प्रणाली में EVM एवं VVPAT की भूमिका एवं चुनावी पारदर्शिता :

भारतीय निर्वाचन प्रणाली में EVM एवं VVPAT का उद्देश्य मतदान प्रक्रिया को अधिक सरल, सुरक्षित एवं पारदर्शी बनाना है। EVM के उपयोग से मतपत्रों की छपाई, परिवहन तथा मतगणना में लगने वाले समय और खर्च में उल्लेखनीय कमी आई है। साथ ही अमान्य मतों (Invalid Votes) की समस्या लगभग समाप्त हो गई है, जिससे चुनाव परिणाम अधिक सटीक एवं शीघ्र प्राप्त होने लगे हैं।

चुनावी पारदर्शिता को सुदृढ़ करने में VVPAT की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह प्रणाली मतदाता को कुछ सेकंड के लिए यह सत्यापित करने का अवसर देती है कि उसका मत उसी प्रत्याशी के पक्ष में दर्ज हुआ है जिसे उसने चुना है। आवश्यकता पड़ने पर VVPAT की पर्चियों के माध्यम से EVM के परिणाम का मिलान भी किया जा सकता है। इससे चुनाव प्रक्रिया की विश्वसनीयता और जवाबदेही दोनों में वृद्धि हुई है।

भारत निर्वाचन आयोग द्वारा EVM एवं VVPAT की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रथम स्तर की तकनीकी जाँच, मॉक पोल, मशीनों का यादृच्छिक आवंटन (Randomization), सीलिंग तथा सुरक्षित स्ट्रांग रूम जैसी बहु-स्तरीय व्यवस्थाएँ अपनाई जाती हैं। ये व्यवस्थाएँ चुनाव प्रक्रिया को निष्पक्ष बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

फिर भी समय-समय पर कुछ राजनीतिक दलों और नागरिक संगठनों द्वारा म्टड की विश्वसनीयता पर प्रश्न उठाए जाते रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में VVPAT केवल तकनीकी व्यवस्था नहीं, बल्कि चुनावी पारदर्शिता और मतदाता के विश्वास को सुदृढ़ करने का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरी है। इसलिए वर्तमान समय में EVM एवं VVPAT भारतीय लोकतंत्र में निष्पक्ष और विश्वसनीय चुनाव सुनिश्चित करने के महत्वपूर्ण साधन माने जाते हैं।

4. लोकतांत्रिक विश्वास, प्रमुख चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ :

लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता केवल निष्पक्ष चुनाव कराने पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि मतदाताओं के विश्वास पर भी आधारित होती है। EVM एवं VVPAT ने चुनाव प्रक्रिया को अधिक तेज, सरल एवं पारदर्शी बनाया है, फिर भी समय-समय पर इनकी विश्वसनीयता को लेकर राजनीतिक दलों एवं नागरिक संगठनों द्वारा प्रश्न उठाए जाते रहे हैं। विशेष रूप से VVPAT की सभी पर्चियों की गणना, मशीनों की पारदर्शिता तथा स्वतंत्र तकनीकी परीक्षण जैसी माँगें सार्वजनिक विमर्श का विषय रही हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने डॉ. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत निर्वाचन आयोग (2013) में VVPAT को चुनावी पारदर्शिता के लिए आवश्यक माना। इसके अतिरिक्त एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्मस (ADR) बनाम भारत निर्वाचन आयोग (2024) मामले में न्यायालय ने सभी VVPAT पर्चियों की 100 प्रतिशत गणना की माँग स्वीकार

नहीं की, किन्तु यह स्पष्ट किया कि निर्वाचन प्रक्रिया में मतदाताओं का विश्वास बनाए रखना लोकतंत्र की मूल आवश्यकता है।

भविष्य में चुनावी सुधारों के अंतर्गत EVM एवं VVPAT के संबंध में जन-जागरूकता बढ़ाना, नियमित तकनीकी परीक्षण, स्वतंत्र विशेषज्ञों द्वारा समय-समय पर मूल्यांकन तथा निर्वाचन आयोग की पारदर्शिता को और अधिक सुदृढ़ करना आवश्यक है। इससे चुनाव प्रक्रिया के प्रति जनता का विश्वास और मजबूत होगा तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था अधिक उत्तरदायी एवं विश्वसनीय बनेगी।

अतः यह कहा जा सकता है कि EVM एवं VVPAT भारतीय निर्वाचन प्रणाली के महत्वपूर्ण तकनीकी साधन हैं। इनकी सफलता केवल तकनीकी सुरक्षा पर नहीं, बल्कि पारदर्शिता, जवाबदेही और नागरिकों के विश्वास पर भी निर्भर करती है। इसलिए निरंतर सुधार और प्रभावी निगरानी के माध्यम से ही भारतीय लोकतंत्र को और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

5. निष्कर्ष :

भारतीय निर्वाचन प्रणाली में EVM एवं VVPAT का उपयोग चुनावी प्रक्रिया को अधिक आधुनिक, त्वरित एवं पारदर्शी बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण सुधार है। EVM के माध्यम से मतगणना की गति में वृद्धि हुई है, अमान्य मतों की समस्या लगभग समाप्त हुई है तथा चुनावी प्रबंधन अधिक प्रभावी बना है। वहीं VVPAT प्रणाली ने मतदाता को अपने मत का सत्यापन करने का अवसर प्रदान कर चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता एवं विश्वसनीयता को और अधिक सुदृढ़ किया है।

यद्यपि EVM एवं VVPAT की विश्वसनीयता को लेकर समय-समय पर राजनीतिक दलों, विशेषज्ञों तथा नागरिक संगठनों द्वारा विभिन्न प्रश्न उठाए जाते रहे हैं, फिर भी भारत निर्वाचन आयोग द्वारा अपनाई गई बहु-स्तरीय सुरक्षा व्यवस्था तथा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय यह संकेत देते हैं कि चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता एवं निष्पक्षता बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। लोकतंत्र में केवल तकनीकी दक्षता ही पर्याप्त नहीं होती, बल्कि मतदाताओं का विश्वास भी उतना ही आवश्यक है। इसलिए चुनावी प्रणाली में समय-समय पर समीक्षा एवं आवश्यक सुधार किए जाना लोकतांत्रिक व्यवस्था की अनिवार्य आवश्यकता है।

भविष्य की दृष्टि से आवश्यक है कि EVM एवं VVPAT के संबंध में जन-जागरूकता बढ़ाई जाए, तकनीकी परीक्षण एवं स्वतंत्र ऑडिट की व्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ किया जाए तथा निर्वाचन आयोग की पारदर्शिता को निरंतर मजबूत किया जाए। इससे मतदाताओं का विश्वास बढ़ेगा, चुनाव प्रक्रिया की विश्वसनीयता और सुदृढ़ होगी तथा भारतीय लोकतंत्र अधिक उत्तरदायी, पारदर्शी एवं सशक्त बन सकेगा। इस प्रकार EVM एवं VVPAT को केवल तकनीकी उपकरण के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र में स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं विश्वसनीय चुनाव सुनिश्चित करने वाले महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में देखा जाना चाहिए।

संदर्भ (References)

1. भारत निर्वाचन आयोग. EVM एवं VVPAT से संबंधित आधिकारिक दस्तावेज, नई दिल्ली.
2. भारत निर्वाचन आयोग. Handbook for Returning Officers, नवीनतम संस्करण.
3. भारत निर्वाचन आयोग. Annual Report, विभिन्न वर्ष.
4. जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951.

5. भारत का संविधान.
6. Subramanian Swamy v. Election Commission of India, (2013) 10 SCC 500.
7. Association for Democratic Reforms v. Election Commission of India, Supreme Court, 2024.
8. भारत निर्वाचन आयोग. Manual on Electronic Voting Machine and VVPAT.
9. डी. डी. बसु, भारत का संविधान : एक परिचय.
10. एम. लक्ष्मीकांत, भारतीय राजव्यवस्था, नवीनतम संस्करण.
11. एस. सी. कश्यप, हमारा संविधान.
12. निर्वाचन आयोग की आधिकारिक वेबसाइट – <https://eci.gov.in??>

ई-मेल : harshajain033@gmail.com

मोबाइल 9406323000

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा और प्रौद्योगिकी की भूमिका

निरंजन कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

शोध सार :

मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही स्त्री और पुरुष एक ही साइकिल के दो पहिए रहे हैं, फिर भी सदियों से विकसित 'पुरुष श्रेष्ठता' की अवधारणा ने महिलाओं को समान विकास के अवसरों से वंचित रखा है। प्रस्तुत शोध पत्र में यह विश्लेषण किया गया है कि आधुनिक युग में शिक्षा और प्रौद्योगिकी किस प्रकार पारंपरिक सीमाओं को तोड़कर महिला सशक्तिकरण की वैश्विक अनिवार्यताओं को नया आयाम दे रही हैं। जहाँ शिक्षा महिलाओं में विश्लेषणात्मक सोच और संवैधानिक अधिकारों की जागरूकता पैदा करती है, वहीं प्रौद्योगिकी उनके लिए वैश्विक उद्यमिता के द्वार खोल रही है। हालाँकि, यह शोध पत्र 'वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट 2025 – भारत का 131वाँ स्थान' के चौंकाने वाले आंकड़ों और जमीनी हकीकत के आलोक में यह भी उजागर करता है कि डिजिटल डिवाइड, साइबर सुरक्षा का डर और गहरी सामाजिक-मानसिकता आज भी एक बड़ी बाधा बनी हुई है। क्या केवल डिजिटल पहुँच प्रदान कर देना ही सच्चा सशक्तिकरण है या इसके पीछे छिपे साइबर भय और अवसरचरणात्मक अभावों को दूर करना अधिक अनिवार्य है? यह शोध पत्र शिक्षा और प्रौद्योगिकी के सामंजस्य से निर्मित वास्तविक सशक्तिकरण के मार्ग और चुनौतियों का व्यावहारिक व तथ्यात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द : महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, प्रौद्योगिकी, लैंगिक समानता, सामाजिक विषमता, महिलाओं का शोषण।

प्रस्तावना :

पुरुषों एवं महिलाओं का एक-दूसरे पर निर्भरता मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही रही है। ये दोनों ही एक साइकिल के दो पहिए के समान हैं, जिसमें एक का न होने से या कमतर आंकने से दूसरे का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। फिर भी सदियों पूर्व अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने और स्वयं की श्रेष्ठता को दिखाने के लिए पुरुष जाति ने यह अवधारणा विकसित किया कि स्त्रियाँ पुरुषों की तुलना में निम्नतर हैं। इस अवधारणा ने आने वाली पीढ़ियों के लिए 'महिलाओं की विकास' का समान अवसर से वंचित कर दिया। आज के आधुनिक युग में शिक्षा एवं प्रौद्योगिकी दो ऐसे सर्वोपरि एवं शक्तिशाली मानव हथियार हैं जिन्होंने पारंपरिक सोच की सीमाओं को तोड़ने में सहयोग किया है। महिला सशक्तिकरण केवल एक विचार नहीं, बल्कि एक वैश्विक अनिवार्यता बन चुका है। जहाँ शिक्षा महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक कर ज्ञान और आत्मविश्वास से परिपूर्ण कर रहा है, वहीं प्रौद्योगिकी उन्हें अवसरों के नए द्वार दे कर आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त कर रहा है।

महिला सशक्तिकरण :

महिला सशक्तिकरण की विचारधारा आज बड़े पैमाने पर देश-दुनिया में फैलती जा रही है, जिसका मुख्य कारण है शिक्षा एवं प्रौद्योगिकी तक लोगों का पहुँच। महिला सशक्तिकरण का अर्थ है महिलाओं की आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, लैंगिक या आर्थिक शक्ति को बढ़ावा देना। भारत जैसे देशों में महिलाओं का सशक्तिकरण कई कारकों पर निर्भर करता है, जिनमें भौगोलिक स्थिति (शहरी/ग्रामीण), शैक्षिक स्थिति, सामाजिक स्थिति (जाति और वर्ग) तथा आयु शामिल हैं।¹

महिलाओं को सशक्त करना केवल उनके अधिकारों को प्रदान करना नहीं है, बल्कि उन्हें ऐसा सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक और तकनीकी वातावरण उपलब्ध कराना है, जिसमें वे स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सकें, अपने अधिकारों का उपयोग कर सकें तथा समाज और राष्ट्र के विकास में समान भागीदारी निभा सकें। यह भारतीय संविधान की प्रस्तावना 'समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, धर्म, विश्वास व उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता' को संदर्भित करता है।

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में समय के साथ बदलाव देखा गया है। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा, धार्मिक कार्यों और सामाजिक निर्णयों में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, अपितु मध्यकाल तक आते-आते उन्हें कई सामाजिक पीड़ाओं और लैंगिक भेदभाव का सामना करना पड़ा। वहीं आधुनिक काल में सामाजिक सुधार आंदोलनों, शिक्षा का प्रसार, संवैधानिक अधिकारों और सरकारी नीतियों ने महिलाओं की स्थिति में महत्वपूर्ण सुधार किए। आजकल महिलाएँ सभी क्षेत्रों और कार्यक्षेत्रों में सम्मानजनक नौकरियाँ प्राप्त कर रही हैं। फिर भी, महिलाएँ समाज में लैंगिक भेदभाव, मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई हैं। केवल कुछ महिलाएँ ही अपनी पूरी क्षमता का उपयोग कर पाती हैं। इसलिए, प्रत्येक व्यक्ति को महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।²

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका :

महिला सशक्तिकरण का मुख्य आधार शिक्षा है। यह महिलाओं को केवल पढ़ना या लिखना नहीं सिखाता, अपितु उन्हें अपने अधिकारों, कर्तव्यों एवं आत्मविश्वास के प्रति सचेत भी करता है। हमारे यहाँ एक कहावत है कि "यदि आप किसी पुरुष को शिक्षित करते हैं तो आप एक व्यक्ति को शिक्षित करते हैं, लेकिन यदि आप किसी महिला को शिक्षित करते हैं तो आप एक परिवार (राष्ट्र) को शिक्षित करते हैं।" शिक्षित महिलाएँ स्वच्छता, पोषण, मातृ एवं बाल विकास, स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन के प्रति अधिक सचेत होती हैं। इसका सकारात्मक प्रभाव पूरे परिवार और अंततः राष्ट्र पर पड़ता है।

शिक्षित महिला अपने जीवन से जुड़े निर्णय स्वयं लेने में सक्षम होती हैं तथा परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में अपना योगदान देती हैं। इसलिए शिक्षा को महिला सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी माध्यम माना जाता है। केवल साक्षरता और शिक्षा ही महिलाओं को भारत के संवैधानिक और विधायी प्रावधानों को समझने में मदद कर सकती है, जो उन्हें सशक्त बनाने के लिए बनाए गए हैं।³ डॉ. भीमराव आंबेडकर का कथन है कि "शिक्षा शेरनी का वह दूध है, जो पिएगा वही दहाड़ेगा।" यह कथन समान रूप से सभी पर लागू होता है चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। शिक्षा के द्वारा ही महिलाओं में तेजी से बदलती हुई विश्व की वास्तविकताओं को समझने के लिए आवश्यक विश्लेषणात्मक कौशल प्राप्त होगा जो उन्हें अपमानपूर्ण और मानवीय स्थितियों का विरोध करने का विश्वास और ताकत प्रदान करेगा।⁴

विश्व आर्थिक मंच की वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट 2025 पुरुषों और महिलाओं के बीच अंतर को चार मूलभूत श्रेणियों में मापता है – आर्थिक भागीदारी और अवसर, शैक्षिक उपलब्धि, स्वास्थ्य और अस्तित्व, तथा राजनीतिक सशक्तिकरण। भारत 148 देशों में से 131वें स्थान पर है। यह भारत में महिलाओं की स्थिति और जीवन के सभी पहलुओं जैसे – शिक्षा, आर्थिक गतिविधि और सशक्तिकरण में लैंगिक भेदभाव को दर्शाता है। अतः यह ध्यान रखना जरूरी है कि किसी भी देश का सर्वांगीण विकास तभी संभव है जब महिलाओं को अच्छी और समान शिक्षा के अवसर मिलें। इसलिए, महिला सशक्तिकरण की दिशा में शिक्षा को प्राथमिकता देना एक महत्वपूर्ण कदम है।

महिला सशक्तिकरण में प्रौद्योगिकी की भूमिका :

वर्तमान में प्रौद्योगिकी महिला सशक्तिकरण में एक क्रांतिकारी माध्यम बनकर उभरी है। पहले महिलाओं को शिक्षा, नौकरी और जानकारी तक पहुँचने में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। लेकिन आज प्रौद्योगिकी ने इन बाधाओं को तोड़ने और महिलाओं के लिए नए अवसर पैदा करने में मदद कर रही है। इसने महिलाओं के लिए उद्यमी बनने के द्वार भी खोल दिए हैं। ई-कॉमर्स वेबसाइटें, सोशल मीडिया और मोबाइल ऐप जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म ने महिलाओं के लिए अपना व्यवसाय शुरू करना आसान बना दिया है। अब महिलाएँ ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से उत्पाद बेच सकती हैं, सेवाएँ प्रदान कर सकती हैं या अपने कौशल को बढ़ावा दे सकती हैं, जिससे वे बिना बड़े पूंजी निवेश के वैश्विक स्तर तक पहुँच सकती हैं।⁵

प्रौद्योगिकी ने महिलाओं के लिए शिक्षा को अधिक सुलभ और लचीला बनाया है। साथ ही उनके संवैधानिक अधिकारों, सरकारी योजनाओं, कानूनी सहायता और सुरक्षा से संबंधित जानकारी तक तेजी से पहुँच प्रदान की है। इससे वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं तथा शोषण के विरुद्ध आवाज भी उठा रही हैं। अतः प्रौद्योगिकी के मदद से आज महिलाएँ वैश्विक बाजार में प्रवेश कर चुकी हैं और अपने पुरुष समकक्षों के समान स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर रही हैं।

प्रमुख चुनौतियाँ :

यद्यपि शिक्षा और प्रौद्योगिकी महिला सशक्तिकरण के प्रभावी साधन हैं, फिर भी इनके माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने की प्रक्रिया में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ गरीबी, भुखमरी और स्वास्थ्य अब भी एक मुख्य कारण बना हुआ है। ऐसे में सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब परिवार के लिए एक मोबाइल फोन और फिर इंटरनेट का बंदोबस्त कर पाना मुश्किल होता है। दूसरी समस्या समाज की परंपरागत सोच की है, जिसके चलते महिलाओं को घर की चारदीवारी में ही रखने की कोशिश की जाती है, उनकी शिक्षा पर खर्च करने से बचा जाता है, पुरुष और महिला में शिक्षा में व्यापक भिन्नता इसकी मिसाल है। समाज शिक्षा, पोषण और अन्य अवसरों के मामले में पुरुष बच्चे के पक्ष में अधिक झुका हुआ है। इस प्रकार की मानसिकता की जड़ यह है कि पुरुष संतान वंश को आगे बढ़ाती है, सिवाय मेघालय के जहाँ स्थिति भिन्न है। महिलाएँ अक्सर अपनी पारंपरिक भूमिका को स्वाभाविक मानकर अन्याय को स्वीकार कर लेती हैं।

इसके अतिरिक्त गरीबी भारत की अधिकांश महिलाओं के जीवन की वास्तविकता है और यह महिलाओं के सशक्तिकरण को प्राप्त करने में एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत करती है।⁶ तीसरी समस्या अवसंरचना की कमी है, सुदूर क्षेत्र जो पहाड़ों से लगी हुई हैं वहाँ तक शिक्षा का समान अवसर नहीं पहुँच पाता है। वहीं यदि शहर की ओर शिक्षा के लिए प्रवास किया जाय तो शहर के खर्चे एक सामान्य परिवार के लिए उठा पाना मुश्किल होता

है। रोजगार के अवसरों का अभाव। बेरोजगारी इतनी बढ़ गई है कि शिक्षा के मुताबिक रोजगार प्रबन्ध कर पाना चुनौतीपूर्ण है। यह समस्या हालांकि पुरुषों के लिए भी है, पर महिलाओं के लिए ज्यादा चुनौतीपूर्ण है क्योंकि पढ़ लिखकर रोजगार न मिल पाने पर भविष्य में शिक्षा के लिए लड़कियों पर बंदिश का डर तो दूसरी तरफ उनकी योग्यता पर सवाल उठने का डर बना रहता है।

अब तक का मेरा अनुभव यह दर्शाता है कि आज भी अनेक लड़कियाँ और महिलाएँ प्रौद्योगिकी का उपयोग करने से झिझकती हैं। कई बार इसका कारण केवल जानकारी की कमी नहीं, बल्कि डर भी होता है। परिवार के लोग अक्सर कहते हैं कि सोशल मीडिया सुरक्षित नहीं है, इसलिए लड़कियाँ उससे दूर ही रहें। कुछ महिलाएँ गलत कॉल, फर्जी लिंक, ऑनलाइन ठगी और सोशल मीडिया पर अभद्र व्यवहार की घटनाएँ देखकर मोबाइल का उपयोग केवल कॉल करने तक ही सीमित रखती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा एवं प्रौद्योगिकी जितनी बड़ी उपलब्धि है उतना ही बड़ी चुनौती भी। इसके लिए जरूरी है की महिलाओं और लड़कियों को डिजिटल साक्षरता और साइबर सुरक्षा की जानकारी दी जानी चाहिए। यही सच्चे अर्थों में महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

निष्कर्ष :

शिक्षा और प्रौद्योगिकी महिला सशक्तिकरण के दो सबसे प्रमुख साधन हैं। जहाँ शिक्षा महिलाओं में ज्ञान, आत्मविश्वास, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता तथा निर्णय लेने की क्षमता का विकास की ओर अग्रसर है, वहीं प्रौद्योगिकी उन्हें शिक्षा, रोजगार, उद्यमिता तथा सूचना तक आसानी से पहुँच प्रदान कर आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनाने में अपनी कदम आगे बढ़ा रही है। हालाँकि महिला सशक्तिकरण की दिशा में इन क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति नजर आती है, फिर भी लैंगिक भेदभाव, आर्थिक विषमता, सुदूर ग्रामीण इलाकों में तकनीकी संसाधनों की कमी, साइबर अपराध तथा डिजिटल साक्षरता जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं।

संदर्भ सूची :

1. शेटर, एम. आर., अज्जा, एच., जिगालुर, के. एस., एवं शेषगिरी, एस. एम. (2015). ए स्टडी ऑन इश्यूज एंड चैलेंजेस ऑफ वूमेन एम्पावरमेंट इन इंडिया, जर्नल ऑफ बिजनेस एंड मैनेजमेंट, 17(4), 13–19.
2. हजारिका डी. (2011). वूमेन एम्पावरमेंट इन इंडिया: ए ब्रीफ डिस्कशन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, 1(3), 199–202.
3. शेटी, सौजन्या एवं हंस, वी. बासिल, रोल ऑफ एजुकेशन इन वूमेन एम्पावरमेंट एंड डेवलपमेंट: इश्यूज एंड इंपैक्ट (सितंबर 26, 2015).
4. कुमारी, स. (2020). महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एकेडमिक स्टडीज, 2(1), 305–308.
5. तिरुमलम्बा, के., एवं लक्ष्मी, के. ए. (2026). द रोल ऑफ टेक्नोलॉजी इन वूमेन एम्पावरमेंट. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ग्लोबल रिसर्च इनोवेशन्स एंड टेक्नोलॉजी, 04(01), 07–10.
6. शेटर, एम. आर., अज्जा, एच., जिगालुर, के. एस., एवं शेषगिरी, एस. एम. (2015). ए स्टडी ऑन इश्यूज एंड चैलेंजेस ऑफ वूमेन एम्पावरमेंट इन इंडिया, जर्नल ऑफ बिजनेस एंड मैनेजमेंट, 17(4), 13–19.

ई-मेल : xniranjankumar@gmail.com

भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान समन्वय

संध्या कुमारी

शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

भारत को प्राचीन काल से ही विश्वगुरु की संज्ञा दी जाती रही है। इसका प्रमुख कारण केवल इसकी आर्थिक या राजनीतिक समृद्धि नहीं, बल्कि इसकी समृद्ध ज्ञान परम्परा है। भारतीय ज्ञान परंपरा मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष—आध्यात्मिक, बौद्धिक, भौतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करती है। इसका मूल उद्देश्य केवल सूचना या ज्ञान का संचय नहीं, बल्कि मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास तथा लोककल्याण है। दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान तर्क, प्रयोग, अवलोकन और प्रमाण पर आधारित है। वर्तमान समय में मानव कल्याण और सतत् विकास के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा तथा आधुनिक विज्ञान का समन्वय अत्यंत आवश्यक है। यह समन्वय केवल अतीत और वर्तमान का मेल नहीं, बल्कि भविष्य के निर्माण का आधार भी है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार वेद, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रंथ आरण्यक स्मृतियों, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, पुराण, दर्शन, आयुर्वेद, योग गणित, ज्योतिष, व्याकरण, साहित्य, कला तथा लोकज्ञान है। यह परम्परा हजारों वर्षों में विकसित हुई और गुरु शिष्य परम्परा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती रही। इसकी विशेषता यह है कि इसमें ज्ञान को केवल बौद्धिक उपलब्धि नहीं माना गया, बल्कि आत्मानुभूति और जीवन व्यवहार का साधन समझा गया। आज जब विश्व जलवायु परिवर्तन, मानसिक तनाव, नैतिक संकट हिंसा, उपभोक्तावाद तथा सामाजिक असंतुलन जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब भारतीय ज्ञान परम्परा पुनः वैश्विक विमर्श का विषय बन रही है। नई शिक्षा नीति (NEP-2020) ने भी भारतीय ज्ञान प्रणाली को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने पर विशेष बल दिया है।

भारतीय ज्ञान परम्परा का स्वरूप :

भारतीय ज्ञान परम्परा बहुआयामी है। इसका मूल उद्देश्य केवल भौतिक उन्नति नहीं, बल्कि व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच संतुलित स्थापित करना है। इसमें सहय, अहिंसा, करुणा, आत्मसंगम, योग, ध्यान तथा प्रकृति के प्रति सम्मान जैसे मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य का समग्र दृष्टिकोण मिलता है, जबकि योग शरीर मन और आत्मा के संतुलन का मार्ग दिखाता है। प्राचीन भारत के गणितज्ञ आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने गणित और खगोल विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय ज्ञान परंपरा का ऐतिहासिक विकास :-

भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है, जिसे मुख्यतः चार चरणों में समझा जा सकता है:-

(1) वैदिक काल:-

भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रारंभ वैदिक काल में चार वेदों से माना जाता है।

- **ऋग्वेद** :- विश्व का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ माना जाता है। इसमें ज्ञान एवं स्तुतियों का संग्रह है।
- **यजुर्वेद** :- यज्ञ एवं कर्मकाण्ड।
- **सामवेद** :- संगति एवं उपासना।
- **अथर्ववेद** :- चिकित्सा, कृषि, समाज तथा लोकजीवन।

(2) उपनिषद् काल -

उपनिषदों में भारतीय दर्शन का सर्वोच्च विकास दिखाई देता है। यहाँ बाह्य कर्मकाण्ड की अपेक्षा आत्मज्ञान को अधिक महत्व दिया गया। उपनिषदों का प्रसिद्ध वाक्य है :-

“असतो मा सद्गमय।

तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा मृतं गमय॥”

यही भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल आदर्श है।

(3) महाकाव्य काल :-

रामायण और महाभारत केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं बल्कि भारतीय समाज, राजनीति, नैतिकता तथा संस्कृति के विश्वकोश हैं। भगवद्गीता में कृष्ण निष्काम, कर्म, ज्ञान, भक्ति और आत्मसंयम का संदेश देते हैं।

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”

यह श्लोक भारतीय कर्मदर्शन का आधार माना जाता है।

(4) शास्त्रीय काल :-

इस काल में भारतीय गणित, चिकित्सा, व्याकरण, ज्योतिष, साहित्य तथा दर्शन का व्यापक विकास हुआ।

पाणिनि	—	व्याकरण (अष्टाध्यायी)
कौटिल्य	—	अर्थशास्त्र
चरक	—	आयुर्वेद
सुश्रुत	—	शल्य चिकित्सा
आर्यभट्ट	—	गणित एवं खगोल विज्ञान
ब्रह्मगुप्त	—	बीजगणित

भारतीय परंपरा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक विचारों तक सीमित नहीं है। इसमें विज्ञान—चिकित्सा, गणित, शिक्षा, पर्यावरण, भाषा, साहित्य, कला, शासन तथा सामाजिक जीवन के विविध आयाम समाहित हैं। इसकी विशेषता यह है कि यह ज्ञान को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जोड़ती है और मानव कल्याण को उसका अंतिम उद्देश्य मानती है। भारतीय ज्ञान परंपरा अतीत की विरासत पर नहीं बल्कि एक जीवंत बौद्धिक धारा है जो आज भी मानवता को संतुलित, नैतिक और समग्र विकास का मार्ग दिखाती है। भारतीय ज्ञान परंपरा और **आधुनिक विज्ञान का समन्वय :**

कुछ लोग भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान को परस्पर विरोधी मानते हैं, जबकि वास्तव में दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। आधुनिक विज्ञान प्रयोग, निरीक्षण और प्रमाण पर आधारित है, जबकि भारतीय ज्ञान परंपरा अनुभव, तर्क और आत्मानुभूति को महत्व देती है। आज अनेक क्षेत्रों में दोनों का समन्वय दिखाई देता है।

1. **आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा :-** आयुर्वेदिक औषधियों पर वैज्ञानिक अनुसंधान किए जा रहे हैं, जिससे उनकी प्रभावशीलता प्रमाणित हो रही है।
2. **योग और चिकित्सा :-** आधुनिक वैज्ञानिक शोधों ने सिद्ध किया है कि योग और ध्यान तनाव कम करने, मानसिक स्वास्थ्य सुधारने तथा कई रोगों की रोकथाम में सहायक हैं।
3. **पर्यावरण संरक्षण :-** भारतीय परंपरा का प्रकृति-केंद्रित दृष्टिकोण सतत विकास की आधुनिक अवधारणा के साथ सामंजस्य रखता है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति की पूजा और संरक्षण की भावना रही है। आधुनिक पर्यावरण विज्ञान भी जैव-विविधता और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर बल देता है।

- **विज्ञान और नैतिकता :-**

भारतीय दर्शन विज्ञान को नैतिक मूल्यों से जोड़ने की प्रेरणा देता है, जिससे वैज्ञानिक प्रगति मानव कल्याण के लिए उपयोगी बनती है।

- **खगोल विज्ञान और अंतरिक्ष अनुसंधान :-**

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने सूर्य, चंद्रमा, ग्रहों और नक्षत्रों की गति का सूक्ष्म अध्ययन किया था। उन्होंने पंचांग निर्माण, ग्रहण की गणना तथा समय निर्धारण जैसी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ प्राप्त की थी।

आज आधुनिक अंतरिक्ष विज्ञान ने उपग्रह, चंद्रयान, मंगलयान तथा अंतरिक्ष अभियानों के माध्यम से इन अध्ययनों को नई ऊंचाइयों तक पहुँचाया है। भारत की अंतरिक्ष संस्था इसरो (ISRO) आधुनिक विज्ञान और प्राचीन गणितीय परंपरा के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, अभियांत्रिकी, सूचना प्रौद्योगिकी तथा व्यावसायिक शिक्षा को नई ऊंचाइयों प्रदान की है। परंतु केवल तकनीकी ज्ञान पर्याप्त नहीं है। यदि आधुनिक शिक्षा में भारतीय ज्ञान परंपरा के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को भी जोड़ा जाए, तो विद्यार्थियों का व्यक्तित्व अधिक संतुलित और जिम्मेदार बन सकता है। इसी उद्देश्य से राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) में भारतीय ज्ञान परंपरा, भारतीय भाषाओं, योग, आयुर्वेद, भारतीय दर्शन और पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक शिक्षा के साथ जोड़ने पर विशेष बल दिया गया है। इससे विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ-साथ सांस्कृतिक चेतना भी विकसित होगी।

भारतीय ज्ञान परंपरा के आधुनिक विज्ञान के समन्वय के लाभ :-

भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान का समन्वय केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकता है। भारतीय ज्ञान परम्परा जीवन को समग्र दृष्टि से देखती है, जबकि आधुनिक विज्ञान जीवन को अधिक सुविधाजनक, सुरक्षित और उन्नत बनाने के लिए नवीन तकनीकों का विकास करता है। जब ये दोनों एक साथ कार्य करते हैं, तब समाज का संतुलित और सतत विकास संभव होता है।

इस समन्वय का सबसे बड़ा लाभ स्वास्थ्य के क्षेत्र में दिखाई देता है। यदि आधुनिक चिकित्सा के साथ योग, आयुर्वेद, प्राणायाम, संतुलित आहार और प्राकृतिक जीवनशैली को अपनाया जाए, तो अनेक रोगों की रोकथाम की जा सकती है। इससे चिकित्सा पर होने वाला खर्च भी कम होगा और लोगों का जीवन अधिक स्वस्थ एवं संतुलित बनेगा।

शिक्षा के क्षेत्र में भी यह समन्वय अत्यंत उपयोगी है। आधुनिक शिक्षा विद्यार्थियों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तकनीकी दक्षता और व्यावसायिक योग्यता प्रदान करती है, जबकि भारतीय ज्ञान परंपरा उन्हें नैतिकता,

अनुशासन, आत्मविश्वास, करुणा, सहिष्णुता और सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध कराती है। इन दोनों का संतुलित मेल एक आदर्श नागरिक का निर्माण कर सकता है।

पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में भी इस समन्वय का विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति प्रकृति को पूजनीय मानती है, जबकि आधुनिक विज्ञान पर्यावरण संरक्षण के लिए नवीन तकनीकों का विकास करता है। यदि दोनों का समन्वय हो, तो प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, जल प्रबंधन, ऊर्जा संरक्षण तथा सतत् विकास के लक्ष्य अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त किए जा सकते हैं।

उपसंहार :

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की सबसे प्राचीन, समृद्ध और निरंतर विकसित होने वाली ज्ञान परंपराओं में से एक है। इसकी विशेषता यह है कि यह ज्ञान को केवल बौद्धिक उपलब्धि नहीं, बल्कि जीवन, समाज और प्रकृति के समग्र विकास का माध्यम मानती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी प्राचीन ज्ञान-परंपरा पर गर्व करें, उसका वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करें और उसे आधुनिक अनुसंधान के साथ जोड़ें। इससे न केवल भारत की सांस्कृतिक पहचान सुदृढ़ होगी, बल्कि विज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण और सामाजिक विकास के क्षेत्रों में भी नए आयाम स्थापित होंगे। नई शिक्षा नीति, वैज्ञानिक अनुसंधान, नवाचार, डिजिटल तकनीक तथा भारतीय ज्ञान परंपरा का समन्वय भारत को आत्मनिर्भर, समृद्ध और ज्ञान-आधारित राष्ट्र बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यही समन्वय भविष्य में भारत की सबसे बड़ी शक्ति बनेगा।

प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली

प्रा. ज्ञानेश्वर किसन बगनर

महात्मा फुले कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय पनवेल।

प्रस्तावना -

प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली विश्व की सबसे प्राचीन, समृद्ध एवं वैज्ञानिक ज्ञान परंपराओं में से एक है। इसका आधार केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के सर्वांगीण विकास, नैतिक मूल्यों, आध्यात्मिक उन्नति तथा सामाजिक कल्याण पर आधारित एक समग्र जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करती है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्षों के चिंतन, अनुभव, साधना और अनुसंधान के माध्यम से जो ज्ञान अर्जित किया, वही वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, आयुर्वेद, योग, गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, न्याय, व्याकरण, वास्तुशास्त्र, संगीत तथा अन्य शास्त्रों के रूप में संरक्षित है। यह ज्ञान केवल भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समय-समय पर विश्व के अनेक देशों को भी प्रभावित करता रहा है। भारतीय की प्राचीन शिक्षा पद्धति में हमें अनौपचारिक तथा औपचारिक दोनों प्रकार के शैक्षणिक केन्द्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। औपचारिक शिक्षा मन्दिर, आश्रमों और गुरुकुलों के माध्यम से दी जाती थी। ये ही उच्च शिक्षा के केन्द्र भी थे। जबकि परिवार, पुरोहित, पण्डित, सन्यासी गुरुकुलों की स्थापना प्रायः वनों, उपवनों और त्यौहार प्रसंग आदि के माध्यम से अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त होती थी। विभिन्न धर्मसूत्रों में इस बात का उल्लेख है कि माता ही बच्चे की श्रेष्ठ गुरु है। कुछ विद्वानों ने पिता को बच्चे के शिक्षक के रूप में स्वीकार किया है जैसे-जैसे सामाजिक विकास हुआ वैसे-वैसे शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित होने लगी।

“वैदिक काल में परिषद, शाखा और चरण जैसे संघों का स्थापन हो गया था, लेकिन व्यवस्थित शिक्षण संस्थाएँ सार्वजनिक स्तर पर बौद्धों द्वारा प्रारम्भ की गई थी”¹ तथा ग्रामों या नगरों में की जाती थी। वनों में गुरुकुल बहुत कम होते थे। अधिकतर दार्शनिक आचार्य निर्जन वनों में निवास, अध्ययन तथा चिन्तन पसन्द करते थे। वाल्मीकि, सन्दीपनि, कण्व आदि ऋषियों के आश्रम वनों में ही स्थित थे और इनके यहाँ दर्शन शास्त्रों के साथ-साथ व्याकरण, ज्योतिष तथा नागरिक शास्त्र भी पढ़ाये जाते थे। अधिकांश गुरुकुल गांवों या नगरों के समीप किसी वाग अथवा वाटिला में बनाये जाते थे। जिससे उन्हें एकान्त एवं पवित्र वातावरण प्राप्त हो सके। इससे दो लाभ थे, एक तो गृहस्थ आचार्यों को सामग्री एकत्रित करने में सुविधा थी, दूसरे ब्रह्मचारियों को भिक्षाटन में अधिक भटकना नहीं पड़ता था। “ब्रह्मचारों को गुरु के कुल में, अपनी जाति वालों में तथा कुल बान्धवों के

यहाँ से भिक्षा याचना नहीं करनी चाहिए, यदि भिक्षा योग्य दूसरा घर नहीं मिले, तो पूर्व-पूर्व गृहों का त्याग करके भिक्षा याचना करनी चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि गुरुकुल गांवों के सन्निकट ही होते थे। स्वजातियों से भिक्षा याचना करने में उनके पक्षपात तथा ब्रह्मचारी के गृह की ओर आकर्षण का भय भी रहता था अतएव स्वजातियों से भिक्षा-याचना का पूर्ण निषेध कर दिया गया था²। बहुधा राजा तथा सामन्तों का प्रोत्साहन पाकर विद्वान् पण्डित उनकी सभाओं की ओर आकर्षित होते थे और अधिकतर उनकी राजधानी में ही बस जाते थे, जिससे वे नगर शिक्षा के केन्द्र बन जाते थे। इनमें तक्षशिला, पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, मिथिला, धारा, तंजोर आदि प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार तीर्थ स्थानों की ओर भी विद्वान् आकृष्ट होते थे। फलतः काशी, कर्नाटक, नासिक आदि शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये।

कभी-कभी राजा भी अनेक विद्वानों को आमंत्रित करके दान में भूमि आदि देकर तथा जीविका निश्चित करके उन्हें बसा लेते थे। उनके बसने से वहाँ एक नया गाँव बन जाता था। इन गाँवों को 'अग्रहार' कहते थे। इसके अतिरिक्त विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों एवं मठों के आचार्यों के प्रभाव से ईसा की दूसरी शताब्दी के लगभग मठ शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गये। इनमें शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि के मठ प्रसिद्ध हैं। सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएँ सर्वप्रथम बौद्ध विहारों में स्थापित हुई थीं। भगवान् बुद्ध ने उपासकों की शिक्षा-दीक्षा पर अत्यधिक बल दिया। इस संस्थाओं में धार्मिक ग्रन्थों का अध्यापन एवं आध्यात्मिक अभ्यास कराया जाता था। अशोक (300 ई० पू०) ने बौद्ध विहारों की विशेष उन्नति करायी। कुछ समय पश्चात् ये विद्या के महान केन्द्र बन गये। ये वस्तुतः गुरुकुलों के ही समान थे। किन्तु इनमें गुरु किसी एक कुल का प्रतिनिधि न होकर सारे विहार का ही प्रधान होता था। ये धर्म प्रचार की दृष्टि से जनसाधारण के लिए भी सुलभ थे। इनमें नालन्दा विश्वविद्यालय (450 ई०), वल्लभी (700 ई.), विक्रमशिला (800 ई०) प्रमुख शिक्षण संस्थाएँ थीं। इन संस्थाओं का अनुसरण करके हिन्दुओं ने भी मन्दिरों में विद्यालय खोले जो आगे चल कर मठों के रूप में परिवर्तित हो गये।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली देश की बौद्धिक विरासत और ज्ञान प्रसार के प्रति प्रतिबद्धता का एक उल्लेखनीय प्रमाण है। अपने समग्र दृष्टिकोण, समावेशिता और नैतिक मूल्यों पर जोर देने की विशेषता वाली इस प्रणाली को चार मुख्य श्रेणियों में व्यवस्थित किया गया था, जिन्होंने व्यक्तियों के बौद्धिक विकास को आकार दिया।

1. गुरुकुल प्रणाली :

गुरु की उपस्थिति में सीखना प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का केंद्र गुरुकुल प्रणाली थी, जहाँ छात्र अनौपचारिक, पारिवारिक सेटिंग में अपने गुरुओं (शिक्षकों) के साथ रहते थे। इस व्यक्तिगत शिक्षा मॉडल ने शिक्षक और छात्र के बीच एक गहरे बंधन को बढ़ावा दिया, जिससे व्यक्तिगत निर्देश और मार्गदर्शन की अनुमति मिली। गुरुओं ने न केवल शैक्षणिक ज्ञान बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य भी प्रदान किए, जिससे एक सर्वांगीण व्यक्ति का निर्माण हुआ। इस घनिष्ठ छात्र-शिक्षक संबंध ने छात्रों में सम्मान और विनम्रता की भावना पैदा की, जिन्होंने न केवल तथ्यों को बल्कि गुणों को भी आत्मसात किया।

2. वैदिक शिक्षा : मौखिक परंपरा के माध्यम से ज्ञान का संरक्षण :

वैदिक शिक्षा प्राचीन भारतीय शिक्षा की आधारशिला थी। छात्र वेदों और उपनिषदों जैसे पवित्र ग्रंथों को मौखिक रूप से सीखेंगे और उनका पाठ करेंगे, जिससे पीढ़ियों तक ज्ञान का संरक्षण सुनिश्चित होगा। इस

मौखिक परंपरा ने न केवल याद रखने के कौशल को निखारा बल्कि दार्शनिक, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसारण को भी सुविधाजनक बनाया। वैदिक शिक्षा में स्मृति और स्वर-शैली पर जोर ने अनुशासित शिक्षण प्रथाओं की नींव रखी, जो जटिल अवधारणाओं को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं³।

3. कला और विज्ञान का अध्ययन : एक समग्र पाठ्यक्रम :

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली आध्यात्मिक शिक्षाओं तक ही सीमित नहीं थीय इसमें विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। छात्रों को एक समग्र पाठ्यक्रम से अवगत कराया गया जिसमें गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, संगीत, राजनीति और बहुत कुछ शामिल था। इस व्यापक दृष्टिकोण ने विभिन्न विषयों की परस्पर संबद्धता को पहचाना और एक सर्वांगीण शिक्षा को प्रोत्साहित किया। नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालय शिक्षा के प्रसिद्ध केंद्र थे जिन्होंने दुनिया भर के विद्वानों को आकर्षित किया और वैश्विक स्तर पर ज्ञान के प्रसार में योगदान दिया।

4. नैतिक मूल्यों पर जोर : चरित्र विकास के लिए शिक्षा :

प्राचीन भारतीय शिक्षा चरित्र विकास और नैतिक आचरण को महत्वपूर्ण महत्व देती थी। छात्रों को सत्य, करुणा, अहिंसा और सामाजिक जिम्मेदारी के मूल्य सिखाए गए। नैतिक शिक्षा को अकादमिक पाठ्यक्रम में शामिल किया गया था, जिससे ऐसे व्यक्तियों को बढ़ावा मिला जिन्होंने न केवल अपने चुने हुए क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया बल्कि समाज में सकारात्मक योगदान भी दिया। इस प्रणाली का उद्देश्य न केवल जानकार व्यक्तियों का निर्माण करना था, बल्कि नैतिकता की गहरी भावना वाले जिम्मेदार नागरिक भी बनाना था।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली शिक्षाशास्त्र की उत्कृष्ट कृति थी जो व्यक्तिगत शिक्षा, समग्र शिक्षा और नैतिक मूल्यों पर जोर देती थी। गुरुकुल प्रणाली ने एक मजबूत शिक्षक-छात्र बंधन को बढ़ावा दिया, जबकि वैदिक शिक्षा ने मौखिक परंपरा के माध्यम से ज्ञान की निरंतरता सुनिश्चित की। पाठ्यक्रम की समावेशिता और चरित्र विकास पर ध्यान ने छात्रों को शैक्षणिक क्षेत्र से परे जीवन की चुनौतियों के लिए तैयार किया। आधुनिक युग में भी, इस प्राचीन प्रणाली की गूँज समकालीन शैक्षिक दर्शन में देखी जा सकती है जो समग्र शिक्षा और मूल्य-आधारित शिक्षा पर जोर देती है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की समृद्ध विरासत दुनिया भर के शिक्षकों और शिक्षार्थियों को प्रेरित करती रहती है।

प्राचीन भारत में शिक्षा के उद्देश्य :

1. पवित्रता तथा जीवन की संभावना :

प्राचीन भारत में प्रत्येक बालक के मस्तिष्क में पवित्रता तथा धार्मिक जीवन की भावनाओं को व्यक्त करना शिक्षा का प्रथम उद्देश्य था शिक्षा आरंभ होने से पूर्व प्रत्येक बालक के उपनयन संस्कार की पूर्ति करना शिक्षा प्राप्त करते समय अनेक प्रकार के व्रत धारण करना प्रातः तथा सायंकाल ईश्वर की महिमा के गुणगान करना तथा गुरु के कुल में रहते हुए धार्मिक त्योहारों का मानना आदि सभी बातें बालक के मस्तिष्क में पवित्रता तथा धार्मिक भावनाओं को विकसित करते हुए उसे आध्यात्मिक दृष्टि से बलवान बनाती हैं ऐसा लोगो का मानना था कि सभी प्रकार की शिक्षा का प्रत्यक्ष उद्देश बालक को समाज का एक पवित्र तथा लाभप्रद सदस्य बनाना था मुख्य उद्देश्य था कि बालक के अंदर पवित्रता कैसे आ सके उसके जीवन में सुख कैसे हो उसका व्यवहार सदभावना पूर्वक

किया जाता है।

2. चरित्र निर्माण :

भारत की प्राचीन शिक्षा का दूसरा प्रमुख उद्देश्य था कि बालक के चरित्र का निर्माण किस प्रकार हो सके उस समय की दार्शनिकों का विश्वास था कि केवल पढ़ना लिखना ही शिक्षा नहीं है बल्कि बालक के चरित्र का निर्माण होना भी अति आवश्यक है किस की पूर्ति के लिए समय-समय पर विभिन्न आचार्य द्वारा नैतिकता के उपदेश दिए जाते थे बालकों के सामने राम लक्ष्मण सीता हनुमान अर्जुन कृष्ण आदि महापुरुषों के उदाहरण दिए जाते थे प्राचीन शास्त्रों में ऐसा वर्णन मिलता है कि व्यक्ति को ज्ञान भले ही कम हो पर वह सज्जन हो शुद्ध जीवन व्यतीत करता हो तो वह अच्छा है परन्तु ऐसा व्यक्ति जिसे वेदों का बहुत ज्ञान हो और फिर भी यदि उसके अंदर नैतिकता ना हो ऐसे व्यक्ति उतना अच्छा नहीं माना जाता था।

3. व्यक्तित्व का विकास :

शिक्षा का तीसरा प्रमुख उद्देश्य था इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक बालक में आत्मविश्वास आत्मनिर्भरता आत्मनिर्भरता विवेक एवं निर्णय आदि अनेक गुणों एवं शक्तियों को पूर्णता विकसित करने का अथक प्रयास किया जाता था ऐसा लोगों को मानना था कि यदि इस देश को प्राप्त करना है तो बालकों में आत्मसम्मान की भावना को विकसित करना परम आवश्यक है।

4. नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का विकास :

यह प्राचीन शिक्षा का चौथा प्रमुख उद्देश्य था उस समय की शिक्षा में इस बात पर बल दिया जाता था कि व्यक्ति समाज उपयोगी बने बालकों को देश समाज माता पिता भाई बहन पास पड़ोस सब के प्रति जो बालक के कर्तव्य है वह समझाये जाते थे कहने का मतलब यह है प्राचीन काल में बालकों को ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे वे अपने कर्तव्यों का पालन भी कर सकें और समाज की उन्नति में सहयोग भी कर सकें।

सामाजिक कुशलता तथा सुख की उन्नति :

प्राचीन कालीन शिक्षा का या पांचवा प्रमुख उद्देश्य था इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोगों के बीच में वर्ण विभाजन था कार्य का भी विभाजन था। बालकों को ज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे आयुर्वेद धनुर्वेद व्यवसाय तथा औद्योगिक शिक्षा में भी प्रशिक्षण दिया जाता था। एक तरफ यह भी था की सभी व्यक्ति अपने परिवार के व्यवसाय को ही अपनाएं। इससे प्रत्येक परिवार के व्यवसाय की कुशलता में वृद्धि होती थी और उनके सुख में भी उन्नति होती थी।

निष्कर्ष :

प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल अतीत की गौरवशाली विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक एवं उपयोगी ज्ञान-संपदा है। यह प्रणाली व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास पर समान रूप से बल देती है और जीवन को संतुलित, मूल्यनिष्ठ तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने की प्रेरणा प्रदान करती है। वेद, उपनिषद, आयुर्वेद, योग, गणित, दर्शन, ज्योतिष तथा अन्य ज्ञान-विज्ञान की परंपराओं ने न केवल भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया है, बल्कि विश्व मानवता को भी अमूल्य योगदान दिया है। वर्तमान समय में जब पर्यावरण संरक्षण, नैतिक मूल्यों का ह्रास, मानसिक तनाव तथा सतत

विकास जैसी चुनौतियाँ सामने हैं, तब प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली के सिद्धांत और जीवन-दृष्टि अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं। अतः आवश्यक है कि इस ज्ञान-परंपरा का संरक्षण, संवर्धन तथा आधुनिक शिक्षा और शोध के साथ समन्वय स्थापित किया जाए, जिससे भारत की सांस्कृतिक विरासत सुदृढ़ हो तथा भावी पीढ़ियाँ इस अमूल्य ज्ञान से प्रेरणा लेकर राष्ट्र एवं विश्व के सर्वांगीण विकास में अपना योगदान दे सकें।

संदर्भ ग्रंथ -

1. भारतीय प्राचीन शिक्षा प्रणाली के अनुप्रयोग पर एक अध्ययन।- अंकित राठी, मनोविज्ञान और शिक्षा जर्नल 58,
2. भारतीय शिक्षा प्रणाली -कश्यप, सोनिया, पृ. 70
3. भारत की शिक्षा प्रणाली प्रक्रिया - कनिका बंसल, पृ. 24

Email : dnyaneshwarbagnar90@gmail.com

मोबा. ९३२५४०८०७६

मानसिक स्वास्थ्य, तनाव प्रबंधन एवं समग्र कल्याण में योग की भूमिका

डॉ. लावण्या संजय

सहायक आचार्य, भाषा विभाग – हिन्दी

एम.ओ.पी. वैष्णव महिला महाविद्यालय (स्वायत्तशासी)

नं. 20, IV लेन, नुंगमबक्कम हाई रोड, चेन्नई-600034, तमिलनाडु, भारत।

सारांश :

इक्कीसवीं सदी के बदलती जीवन शैली में व्यक्ति चाहे नारी या पुरुष यांत्रिक जीवन बिता रहा है। वह आर्थिक रूप से सक्षम हो रहा है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के विकास ने उसे अधिक सुविधाएँ प्रदान किए हैं। वह महत्वकांक्षी है लेकिन उसमें असफलता को स्वीकारने की मानसिकता नहीं है। वह इस प्रतिस्पर्धा संसार में सफलता पाने के लिए उसके क्षमता से परे मेहनत करता तो है ही, साथ ही फल की अपेक्षा रखते हुए हमेशा अशांत और चिंतित रहता है। परिणामस्वरूप अकेलापन, तनाव और शारीरिक रूप से कमजोर होता जाता है। ऐसी स्थिति में भारतीय ज्ञान परंपरा में विकसित योग-पद्धति महत्वपूर्ण साधन सिद्ध होती है। प्रस्तुत शोध पत्र में हमारे पूर्वजों ने प्राचीन ग्रन्थों में योग के जिस महत्व को बताया है उसी का उल्लेख किया गया है।

मुख्य शब्द : भारतीय ज्ञान परंपरा में योग की अवधारणा, पतंजलि का अष्टांग योग, हठयोग प्रदीपिका, मानसिक स्वास्थ्य, तनाव प्रबंधन और समग्र कल्याण।

प्रस्तावना :

इक्कीसवीं सदी में व्यक्ति को परिवार और कार्यक्षेत्र में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। परिवार में आज पति-पत्नी दोनों नौकरीपेशा हैं और उनकी समस्या बच्चों के संरक्षण का है। कार्यक्षेत्र में तरक्की करने के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ रहा है। क्योंकि आज का समाज प्रतिस्पर्धा का व्यस्त और स्वार्थ समाज है। इस समाज का हर व्यक्ति अर्थ-केन्द्रित है और उपभोक्तावादी संस्कृति से पूरी तरह हावी हो चुका है। वह इस भागा-दौड़ी में कभी-कभी क्या अच्छा है और क्या बुरा है पर ध्यान नहीं दे रहा है। परस्पर प्रतिस्पर्धा और सफलता के शिखर पर पहुँचने की महत्वकांक्षा ने उसके दिमाग और शरीर पर नकारात्मक प्रभाव डाल दिया है। वह परिवार के सदस्यों के साथ कम समय और सोशल मीडिया पर अधिक समय बिता रहा है। हारने या सफल न हो पाने के डर से चैन की नींद नहीं ले पा रहा है। भले ही वह अपने और अपनी के लिए परिश्रम कर रहा है पर वह यह समझने में असमर्थ है कि स्वास्थ्य ही सच्ची संपत्ति है। वह इस अर्थ-केन्द्रित मानसिकता के फलस्वरूप मानसिक तनाव और अवसाद जैसी बीमारियों का शिकार हो रहा है। स्वस्थ जीवन बिताने के लिए

तन, मन और आत्मा में संतुलन की आवश्यकता होती है। यह तभी संभव है जब वह संयम हो। प्राचीन काल से ही भारतीय ज्ञान परंपरा में योगिक पद्धति का इस संदर्भ में अधिक महत्व रहा है। वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, पतञ्जलि योगसूत्र, हठयोग प्रदीपिका आदि प्राचीन ग्रन्थों में योग के महत्व को बताया गया है। इन दार्शनिक और आध्यात्मिक योग के ज्ञान को साधारण व्यक्ति तक पहुँचाने का श्रेय हिन्दी साहित्य के आदिकाल और भक्तिकाल के रचनाकारों जैसे गोरखनाथ और संत कबीरदास को जाती है। इन रचनाकारों ने योग को जीवन-शैली का एक अंग माना था, क्योंकि योग के आसन मन, तन और आत्मा के संतुलित विकास पर बल देता है।

ऋग्वेद में परमात्मा पर ध्यान केन्द्रित करते हुए योग करने की बात कही गयी है। व्यक्ति चाहे जितना भी बुद्धिमान हो, मन को यदि एकग्र नहीं कर पाता तो वह सफलता नहीं पा सकता है। ईश्वर के प्रति समर्पित होने से ही मन स्थिर होता है। **यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्च न स धीनां योगमिब्वति।¹** ईश्वरीय प्रार्थना से यह आशय है कि धन और ऐश्वर्य के साथ सत्त मार्ग पर चलना। **सघा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्याम् गमद् वाजेभिरा स नः²** संक्षेप में व्यक्ति मन को ईश्वर के प्रति समर्पित कर, मन के विकारों पर नियंत्रण पाता है। मैत्र्युपनिषद् में भी मानसिक स्वास्थ्य, तनाव प्रबन्धन और आत्म-संयम के महत्व को स्पष्ट किया है। ईश्वर के प्रति समर्पित होने से व्यक्ति सांसारिक बन्धन से मुक्ति पाता है। जिस प्रकार पानी में मिला हुआ जल, आग में आग और आकाश में आकाश मिलकर एक हो जाता है, इसी प्रकार व्यक्ति का मन भी बाहरी चिंताओं को छोड़कर शांत हो जाता है और परमतत्त्व की ओर मन एकग्र हो जाता है। क्योंकि व्यक्ति का जीवन सुखमय या दुःखमय होना उसके मन की अवस्था पर निर्भर करता है। यदि उसका मन इच्छाओं के प्रति आसक्त होता जाएगा, उतना ही वह बन्धन में जकड़ता जाएगा। मन पर नियंत्रण करके संयम जीवन जीने से चिंता-रहित, शांतिपूर्ण जीवन जी सकता है। उपनिषद् इस आनंद की अवस्था को मुक्ति का स्वरूप मानता है कि :

अपामापोऽग्निरग्नौ वा व्योम्नि व्योम न लक्षयेत्।

एवमन्तर्गतं यस्य मनः स परिमुच्यते॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

बन्धाय विषयासङ्गि मोक्षो निर्विषयं स्मृतम्॥ इति।³

भगवद्गीता में जब अर्जुन श्रीकृष्ण से स्थितिप्रज्ञ व्यक्ति के लक्षणों के बारे में प्रश्न करते हैं, तब श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं कि जब व्यक्ति अपनी समस्त कामनाओं को त्याग देता है तब वह स्थितिप्रज्ञ कहलाता है। ऐसे व्यक्ति सुख-दुख, लाभ-हानि और हार-जीत परिस्थितियों में समान भाव रखता है और इसका मन कभी विचलित नहीं होता है। स्थितिप्रज्ञता की अवस्था योग-अभ्यास के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

श्रीभगवानुवाच :

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।⁴

योग भारतीय ज्ञान परंपरा की देन है। 'योग' शब्द संस्कृत की 'युज' धातु से बना है जिसका अर्थ है - 'जुड़ना'। योग की अवधारणा में 'जुड़ना' शब्द का आंतरिक भाव मन, तन और आत्मा के एकीकरण से है। योग ऐसे साधन या उपकरण (साधना) के रूप में कार्य करता है, जिसका प्रयोग कुशलता से करते हुए एक

साधक पवित्रता तथा मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।⁵ योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, अपितु अनुशासित जीवन—पद्धति द्वारा मानसिक स्वास्थ्य को बनाया रखने का साधन है। इसे एक प्रकार से तनाव—प्रबन्धन भी कह सकते हैं। प्राचीन काल से ही मानसिक स्वास्थ्य और तनाव प्रबन्धन के लिए योग को महत्वपूर्ण माना गया था। महर्षि पतंजलि का योगसूत्र, योग—दर्शन का व्यवस्थित और सर्वमान्य ग्रन्थ है। उन्होंने योग को केवल शारीरिक अभ्यास न मानकर मन की मानसिक प्रक्रियाओं के नियंत्रण का वैज्ञानिक साधन माना है। स्वस्थ शरीर से स्वस्थ मन के योग साधना ही मानसिक स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण कदम है। **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः⁶** पतंजलि यह स्पष्ट करते हैं कि मन के विचारों और भावनाओं पर योग द्वारा नियंत्रण हो सकता है। योगसूत्र में चार अध्याय समाधि पाद, साधन पाद, विभूति पाद और कैवल्य पाद हैं जो जीवन—दर्शन को समझाते हैं। साधन पाद और विभूति पाद में योग के आठ अंग बताए हैं। पहले पाँच यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार में यह बताते हैं कि व्यक्ति को नैतिक और सामाजिक मूल्यों का पालन करते हुए आसन करना चाहिए। वह इस तरह इंद्रियों यानी बाहरी चेष्टाओं से ध्यान हटाकर सांसों पर नियंत्रण पाता है। इससे व्यक्ति का मन अविचल होकर शांति प्राप्त करता है जो आखिरी तीन धारणा, ध्यान और समाधि योग में बताए गए हैं। आधुनिक मनोविज्ञान भी नियंत्रित श्वास और ध्यान अभ्यास को मानसिक तनाव कम करने और मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने का श्रेष्ठ मार्ग बताता है।

हठयोग प्रदीपिका ग्रन्थ में भी योग—साधना से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन की होने की बात कही गयी है। यह तभी संभव है जब व्यक्ति योग अभ्यास के समय सभी सांसारिक समस्याओं के बारे में चिंता छोड़कर अभ्यास करें। फिर कालांतर में इस अभ्यास के द्वारा वह चिंताओं से मुक्त होकर तन और मन से स्वस्थ अनुभव करेगा। **एवंविधे मठे स्थित्वा सर्वचिंताविवर्जितः⁷** जब व्यक्ति चिंता को छोड़कर योग अभ्यास करता है तो उसका मन श्वासन पर ध्यान देता है। इससे उसे मानसिक शांति और मन को विश्राम मिलता है। इसलिए आसनों में श्वासन का महत्वपूर्ण महत्व है। नियमित योग के अभ्यास से वह चंचल चित्त पर नियंत्रण रखता है और तनाव, अवसाद जैसे रोगों से बच सकता है। तनाव प्रबंधन के लिए योग अत्यंत आवश्यक है।

श्वासनं श्रान्तिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्⁸। व्यक्ति तीन प्रकार के कष्ट या दुख का सामना करता है। वह हैं — आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। आध्यात्मिक मानसिक कष्ट, आधिभौतिक बाहरी प्राणियों द्वारा दिए गए कष्ट और आधिदैविक प्रकृति द्वारा दिए गए कष्ट कहा जाता है। इनमें आधिभौतिक और आधिदैविक कष्टों से छुटकारा पाना कठिन है लेकिन योग द्वारा आध्यात्मिक कष्ट को दूर किया जा सकता है। हठयोग प्रदीपिका के इस श्लोक से हठयोग से मानसिक तनाव से मुक्ति मिलने की बात कही गयी है कि : **अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः⁹**

योग के महत्व के प्रतिपादन में आदिकाल के संतों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। नाथ—पंथ के प्रमुख प्रवर्तक गोरखनाथ ने सरल शब्दों में समझाया है कि धर्म, नीति और अनुशासन का पालन करते हुए संयमित और पवित्र जीवन जीना चाहिए। ऐसे व्यक्ति ही अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रख सकता है। नाथ परंपरा में तन और मन को एक दूसरे के पूरक माना गया है। मानसिक नियंत्रण से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है और शरीर—व्यायाम और संयमित जीवनशैली से मन भी स्वस्थ एवं संतुलित रहता है। गोरखनाथ ने अपनी बाणी में मन और तन का संतुलन इस प्रकार स्पष्ट किया है कि : **बालै जोबनि जे नर जती, काल दुकाला ते नर सती। फुरतैं भोजन अलप अहारी, नाथ कहै सो काया हमारी।¹⁰** भक्तिकाल के संत कबीरदास कहते हैं कि यदि व्यक्ति मन पर नियंत्रण कर सकता है तो वह जीवन में सफलता पा सकता है। यदि उसका मन नाना प्रकार के भौतिक

वस्तुओं के प्रति आकर्षित होकर विचलित होगा और भौतिक समस्याओं से उलझा रहेगा तो वह जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता है। उसे अपने आप पर विश्वास होना चाहिए और मन पर हर स्थिति में काबू रखने की क्षमता होनी चाहिए। यहाँ कबीर ने योग—साधना से आंतरिक सुख की बात कहते हैं कि : **मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। कहै कबीर हरि पाइए, मन ही की परतीति।**¹¹

इस प्रकार योग के महत्व को पहले धार्मिक ग्रन्थों में उपदेश के रूप में कहा गया है। बाद में इस योग को पतंजलि ने योग को एक सूत्र के रूप में बाँधकर विश्व के सामने रखा था। इन्हीं के राह पर चलकर कई भाषाओं में योग—साधना पद्धतियों की व्याख्या सरल रूप में जनता के सामने रखी गयी।

निष्कर्ष :

नयी सदी में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने व्यक्ति को व्यस्त जीवन के लिए प्रेरित किया है। प्रगति के अवसर प्रदान किए हैं साथ ही साथ अनेक सुविधाएँ भी दी हैं। लेकिन मानव यंत्र तो नहीं है। यदि वह भाव—शून्य होकर आर्थिक विकास के लिए तन और मन में दबाव डालेगा तो मानसिक तनाव का शिकार हो सकता है। आज परिवार के हर सदस्य समाज के हर क्षेत्र में चाहे वह विद्यालय, महाविद्यालय या कार्य—क्षेत्र हो किसी न किसी तरह अवसाद का शिकार हो रहे हैं। इसका मुख्य कारण संयम जीवन—शैली नहीं अपनाना है। उनके लिए वैश्वीकरण की आर्थित नीतियाँ और उपभोक्तावादी संस्कृति से बचना कठिन है। इसलिए विश्व में मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना आवश्यक हो गया है। योग साधना को इसका एक मात्र समाधान बताया गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा यह निरूपित किया गया है कि यह उल्लेखनीय है कि योग के तात्कालिक मनोवैज्ञानिक लाभ सिद्ध हुए हैं। यह चिंता और तनाव को कम करने के साथ—साथ भावनात्मक तथा सामाजिक कल्याण की भावना को बढ़ाता है। अन्य प्रकार की शारीरिक गतिविधियों के विपरीत, जो शरीर को थका सकती हैं, योग हृदय गति को कम करने तथा परानुकंपी नाड़ी तंत्र को सक्रिय करने में सहायक होता है। इतना ही नहीं, योग का अभ्यास रोगग्रस्त व्यक्ति भी अपनी क्षमता के अनुसार कर सकता है।¹² इसलिए व्यक्ति के समग्र कल्याण के लिए योग को अपनी दिनचर्या में शामिल करना आवश्यक है।

संदर्भ सूची :

1. ऋग्वेद 1.18.7
2. ऋग्वेद 1.5.3
3. पृ. सं. 180, मैत्र्युपनिषद्, प्रपाठक 6, मन्त्र 34
4. श्रीमद्भगवद्गीता 2.55
5. पृ. सं. 11, पतंजलि योग सूत्र, बी. के. एस. आयंगर, प्रभात प्रकाशन, ISO 9001 : प्रकाशक।
6. पृ. सं. 22, योगसूत्र 1.2, पृ. सं. 22, योगदर्शनम्, व्याख्याकार — स्वामी सत्यपति परिव्राजक, दर्शन योग महाविद्यालय प्रकाशक, आर्यवन रोजड़, पत्रालय — सागपुर, जि. साबरकांठा (गुजरात) ३८३३०७, द्वितीय संस्करण 2003.
7. पृ. सं. 17, श्लोक 14, हठयोग प्रदीपिका, स्वात्माराम योगीन्द्र, संस्कृत टीका श्री शुभ्रह्मानन्द, भाषा टीका पं. द्विजचन्द्र, श्रीकृष्णदास प्रकाशन, संस्करण संवत् 2009
8. पृ. सं. 26, श्लोक 32, वही....

9. पृ. सं. 11, श्लोक 10, वही....
10. पृ. संख्या 8, दोहा 20, गोरखबाणी, सम्पादक एवं टीकाकार डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थवाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण 2003 वि.
11. पृ. संख्या 194, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2013
12. <https://www.who.int/southeastasia/news/opinion-editorials/detail/yoga-for-humanity>

Notably, yoga has been shown to have immediate psychological benefits, decreasing anxiety and stress, and increasing feelings of emotional and social well-being. Unlike other forms of physical activity, which can be tiring, yoga can help lower heart rate and activate the parasympathetic nervous system. It can even be performed by people who are sick.

सितार का मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक चिंतन से संबंध

किरण पाड़ीहार

सहायक प्राध्यापक (सितार)

संगीत (वाद्य) विभाग, मीरा गर्ल्स कॉलेज, उदयपुर, राजस्थान।

सारांश -

मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, जैसे तनाव, चिंता, अवसाद और भावनात्मक असंतुलन, वैश्व स्तर पर सार्वजनिक स्वास्थ्य की प्रमुख चुनौतियों में सम्मिलित हैं। यद्यपि संगीत-चिकित्सा पर पर्याप्त वैज्ञानिक शोध उपलब्ध है, वर्तमान साहित्य से स्पष्ट होता है कि भारतीय शास्त्रीय वाद्य सितार के मानसिक स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक चिंतन पर प्रभाव का व्यवस्थित, साक्ष्य-आधारित और बहुआयामी अध्ययन अत्यंत सीमित है। अधिकांश पूर्ववर्ती अनुसंधान सामान्य संगीत-चिकित्सा, भारतीय राग-संगीत अथवा गायन पर केंद्रित रहे हैं, जबकि सितार-वादन अथवा सितार-श्रवण के मनोवैज्ञानिक, संज्ञानात्मक और आध्यात्मिक प्रभावों का समेकित मूल्यांकन अभी तक पर्याप्त रूप से नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, उपलब्ध अध्ययनों में मानसिक स्वास्थ्य संकेतकों और आध्यात्मिक अनुभवों के मध्य अंतर्संबंधों का एकीकृत विश्लेषण भी अपेक्षाकृत अनुपस्थित है। इन्हीं शोध-अंतरालों को ध्यान में रखते हुए यह अध्ययन सितार को केवल एक संगीत वाद्य के रूप में नहीं, बल्कि मानसिक संतुलन, भावनात्मक आत्म-नियमन तथा आध्यात्मिक आत्मचिंतन के संभावित माध्यम के रूप में विश्लेषित करता है। अध्ययन एक समेकित वैचारिक रूपरेखा प्रस्तुत करता है, जिसमें भारतीय संगीतशास्त्र, संगीत-चिकित्सा, मनोविज्ञान तथा आध्यात्मिक चिंतन के सिद्धांतों को एक साझा विश्लेषणात्मक मॉडल में संयोजित किया गया है। यह रूपरेखा स्पष्ट करती है कि सितार की रागात्मक संरचना, स्वर-अनुनाद, लयात्मक प्रवाह तथा ध्यानात्मक श्रवण-अनुभव किस प्रकार तनाव में कमी, भावनात्मक स्थिरता, आत्म-जागरूकता, एकाग्रता और आंतरिक शांति को प्रभावित कर सकते हैं।

यह शोध साहित्य-आधारित विश्लेषण के माध्यम से उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाणों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है, विद्यमान अनुसंधान सीमाओं की पहचान करता है तथा भविष्य के अनुभवजन्य अनुसंधानों के लिए एक मानकीकृत शोध-दिशा प्रस्तावित करता है। इस अध्ययन की नवीनता भारतीय शास्त्रीय संगीत, विशेष रूप से सितार, को मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक कल्याण के एकीकृत संदर्भ में प्रस्तुत करने तथा एक बहुविषयक वैचारिक ढाँचा विकसित करने में निहित है। प्रस्तावित दृष्टिकोण संगीत-आधारित मानसिक स्वास्थ्य हस्तक्षेपों, समग्र स्वास्थ्य संवर्धन तथा भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक उपयोगी आधार प्रदान कर सकता है।

मुख्य शब्द : सितार, मानसिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक चिंतन, भारतीय शास्त्रीय संगीत, संगीत-चिकित्सा, राग, भावनात्मक कल्याण, भारतीय ज्ञान परंपरा।

परिचय :

वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य की सबसे महत्वपूर्ण चुनौतियों में से एक बन चुका है। तीव्र प्रतिस्पर्धा, बदलती जीवनशैली, तकनीकी निर्भरता, सामाजिक अलगाव तथा कार्य-संबंधी तनाव के कारण चिंता, अवसाद, मानसिक थकान और भावनात्मक असंतुलन जैसी समस्याओं में निरंतर वृद्धि देखी जा रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक रोगों की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि यह ऐसी सकारात्मक अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमताओं को पहचानते हुए जीवन की सामान्य चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना कर सके, उत्पादक कार्य कर सके तथा समाज में सार्थक योगदान दे सके। इसी कारण मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के लिए औषधीय उपचारों के साथ-साथ पूरक एवं गैर-औषधीय हस्तक्षेपों की आवश्यकता निरंतर बढ़ रही है।



चित्र 1. सितार, मानसिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक चिंतन का वैचारिक मॉडल

संगीत मानव सभ्यता की सबसे प्राचीन और प्रभावशाली सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में से एक है। विभिन्न संस्कृतियों में संगीत का उपयोग केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि भावनात्मक अभिव्यक्ति, सामुदायिक सहभागिता, उपचार, ध्यान तथा आध्यात्मिक साधना के माध्यम के रूप में भी किया जाता रहा है। आधुनिक

तंत्रिका-विज्ञान, मनोविज्ञान तथा संगीत-चिकित्सा के क्षेत्रों में किए गए अनेक अध्ययनों ने यह संकेत दिया है कि संगीत मस्तिष्क की भावनात्मक, संज्ञानात्मक तथा जैविक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। संगीत सुनने अथवा संगीत का सक्रिय अभ्यास करने से तनाव में कमी, मनोदशा में सुधार, भावनात्मक नियंत्रण, स्मृति, ध्यान तथा सामाजिक जुड़ाव में सकारात्मक परिवर्तन देखे गए हैं। इन निष्कर्षों ने संगीत को मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के एक प्रभावी पूरक माध्यम के रूप में स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण आधार प्रदान किया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत अपनी राग-प्रधान संरचना, सूक्ष्म स्वर प्रणाली, लयात्मक संतुलन तथा भावात्मक अभिव्यक्ति के कारण विश्व की विशिष्ट संगीत परंपराओं में स्थान रखता है। भारतीय संगीत दर्शन में यह माना गया है कि प्रत्येक राग विशिष्ट भावनात्मक वातावरण निर्मित करने की क्षमता रखता है, जो श्रोता के मानसिक एवं भावनात्मक अनुभवों को प्रभावित कर सकता है। भारतीय संगीत परंपरा में 'नाद ब्रह्म' की अवधारणा ध्वनि को केवल भौतिक कंपन न मानकर चेतना, आत्म-अनुभूति और आध्यात्मिक अनुभव का माध्यम स्वीकार करती है। इसी कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत का संबंध केवल सौंदर्यबोध तक सीमित न होकर मानसिक शांति, ध्यान, आत्म-अवलोकन तथा आंतरिक संतुलन से भी जोड़ा जाता है।

इन वाद्यों में सितार भारतीय शास्त्रीय संगीत का सर्वाधिक प्रतिष्ठित तंतुवाद्य माना जाता है। इसकी विशिष्ट संरचना, अनुनादी तार, दीर्घ स्वर-अनुनाद, मींड, गमक तथा राग-विस्तार की क्षमता इसे अन्य वाद्यों से अलग पहचान प्रदान करती है। सितार वादन में स्वर क्रमिक रूप से विकसित होते हैं, जिससे श्रोता का ध्यान धीरे-धीरे संगीत की सूक्ष्मताओं पर केन्द्रित होता है। यह श्रवण-अनुभव मन की चंचलता को कम करने, भावनात्मक स्थिरता विकसित करने तथा आत्म-चिंतन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने में सहायक हो सकता है। भारतीय संगीतज्ञों ने लंबे समय से सितार को साधना, अनुशासन और आत्मानुभूति का माध्यम माना है, किंतु इन दावों का वैज्ञानिक मूल्यांकन अभी भी सीमित है।

पिछले कुछ वर्षों में संगीत-चिकित्सा, भारतीय राग-संगीत तथा ध्यान-आधारित हस्तक्षेपों पर अनेक शोध प्रकाशित हुए हैं। इन अध्ययनों में सामान्य संगीत, वोकल संगीत अथवा विभिन्न रागों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। कई अध्ययनों में तनाव, चिंता, नींद की गुणवत्ता, भावनात्मक नियंत्रण तथा शारीरिक तनाव-सूचकों में सकारात्मक परिवर्तन भी दर्ज किए गए हैं। तथापि उपलब्ध साहित्य का समालोचनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि विशेष रूप से सितार को केंद्र में रखकर मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक चिंतन के संयुक्त प्रभावों का व्यवस्थित, बहुविषयक एवं साक्ष्य-आधारित विश्लेषण अभी तक पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुआ है। अधिकांश अनुसंधान संगीत-चिकित्सा के व्यापक क्षेत्र तक सीमित हैं तथा उनमें भारतीय तंतुवाद्यों की विशिष्ट ध्वनिक विशेषताओं, रागात्मक प्रस्तुति तथा आध्यात्मिक अनुभवों के मध्य संबंधों का समेकित अध्ययन अपेक्षाकृत अनुपस्थित है। इसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के वैज्ञानिक संकेतकों और आध्यात्मिक कल्याण के आयामों को एकीकृत करने वाला वैचारिक ढाँचा भी वर्तमान साहित्य में स्पष्ट रूप से उपलब्ध नहीं है।

इन शोध-अंतरालों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन सितार, मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक चिंतन के अंतर्संबंधों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह शोध संगीत-चिकित्सा, मनोविज्ञान, भारतीय संगीतशास्त्र तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के सिद्धांतों को एकीकृत करते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि सितार की रागात्मक संरचना, स्वर-अनुनाद, लयात्मक प्रवाह तथा ध्यानात्मक श्रवण-अनुभव किस प्रकार

मानसिक संतुलन, भावनात्मक आत्म-नियमन, आत्म-जागरूकता और आध्यात्मिक अनुभवों को प्रभावित कर सकते हैं। अध्ययन का उद्देश्य केवल उपलब्ध साहित्य का संकलन करना नहीं, बल्कि विभिन्न अनुसंधानों के निष्कर्षों का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए एक समेकित वैचारिक मॉडल प्रस्तुत करना है, जो भविष्य के अनुभवजन्य, नैदानिक तथा तंत्रिका-वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए आधार प्रदान कर सके।

इस प्रकार यह अध्ययन भारतीय शास्त्रीय संगीत की पारंपरिक ज्ञान-परंपरा और आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान के मध्य एक महत्वपूर्ण सेतु स्थापित करने का प्रयास करता है। साथ ही, यह मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के लिए सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक, कम लागत वाले तथा गैर-औषधीय हस्तक्षेपों की संभावनाओं को भी रेखांकित करता है। प्रस्तावित अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष न केवल संगीत-चिकित्सा और मनोविज्ञान के शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी होंगे, बल्कि संगीत शिक्षकों, मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों, योग एवं ध्यान प्रशिक्षकों तथा समग्र स्वास्थ्य नीति निर्माताओं के लिए भी महत्वपूर्ण संदर्भ प्रदान कर सकते हैं।



चित्र 2. सितार की ध्वनि से मानसिक स्वास्थ्य तक प्रभाव की प्रक्रिया

साहित्य समीक्षा :

सितार भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक प्रमुख तंतुवाद्य है, जिसकी ध्वनि-रचना में मुख्य तारों के साथ अनुनादी तारों का प्रयोग किया जाता है। इससे उत्पन्न दीर्घ स्वर, सूक्ष्म श्रुतियाँ, मीड और क्रमिक आलाप श्रोता के लिए एक गहन तथा अंतर्मुखी श्रवण-अनुभव निर्मित कर सकते हैं। यद्यपि सितार को विशेष रूप से मानसिक

स्वास्थ्य उपचार के रूप में जाँचने वाले नियंत्रित नैदानिक अध्ययनों की संख्या अत्यंत सीमित है, भारतीय राग-संगीत, वाद्य-संगीत, संगीत-चिकित्सा और ध्यान संबंधी अनुसंधान इसके संभावित मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक प्रभावों को समझने का उपयोगी आधार प्रदान करते हैं।

संगीत-चिकित्सा पर उपलब्ध व्यापक प्रमाण बताते हैं कि संगीत भावनात्मक विनियमन, तनाव-नियंत्रण और अवसाद के लक्षणों को प्रभावित कर सकता है। आल्बर्स आदि की कोक्रेन समीक्षा में पाया गया कि मानक उपचार के साथ संगीत-चिकित्सा जोड़ने से अवसादग्रस्त व्यक्तियों में अल्पकालिक अवसादी और चिंताजनक लक्षणों में सुधार हो सकता है¹। इसी प्रकार, डी विट्टे आदि की व्यवस्थित समीक्षा और मेटा-विश्लेषण ने संकेत दिया कि संगीत-आधारित हस्तक्षेप मनोवैज्ञानिक तनाव के साथ-साथ हृदयगति, रक्तचाप और कॉर्टिसोल जैसे शारीरिक तनाव-संकेतकों को भी कम कर सकते हैं²। ये निष्कर्ष सितार-संगीत के संदर्भ में प्रासंगिक हैं, क्योंकि धीमा आलाप, स्वर-पुनरावृत्ति और स्थिर लय शारीरिक उत्तेजना को घटाने वाली श्रवण-संरचना प्रस्तुत कर सकते हैं।

थोमा आदि के प्रयोगात्मक अध्ययन में तनावपूर्ण कार्य से पूर्व संगीत सुनने वाले प्रतिभागियों में स्वायत्त तंत्रिका-तंत्र की पुनर्प्राप्ति अपेक्षाकृत तीव्र पाई गई³। इससे यह संभावना उभरती है कि संगीत सीधे समस्या का समाधान न करते हुए भी तनाव के बाद शरीर और मन को सामान्य अवस्था में लौटने में सहायता कर सकता है। सितार में प्रयुक्त नियंत्रित गति, अनुनाद और स्वर-विस्तार श्वसन को धीमा करने, ध्यान को वर्तमान श्रवण-अनुभव पर केन्द्रित करने तथा अनियंत्रित विचार-प्रवाह से अस्थायी दूरी बनाने में उपयोगी हो सकते हैं। तथापि, ऐसी व्याख्या को सितार-विशिष्ट जैवचिकित्सकीय निष्कर्ष न मानकर संगीत-संबंधी उपलब्ध प्रमाणों पर आधारित परिकल्पना समझना चाहिए।

भारतीय शास्त्रीय संगीत पर केंद्रित अध्ययनों ने अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। शर्मा आदि के यादृच्छिक नियंत्रित EEG अध्ययन में राग कापी पर आधारित, गति और सप्तक में क्रमिक परिवर्तन वाले वाद्य-संगीत ने स्थिर संगीत की तुलना में चिंता को अधिक कम किया। EEG परिणामों ने डिफॉल्ट मोड नेटवर्क से संबंधित गतिविधि और मन-भटकाव में संभावित परिवर्तन का संकेत दिया⁴। यह निष्कर्ष सितार की राग-विस्तार परंपरा के लिए विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि सितार-वादन प्रायः शांत आलाप से आरम्भ होकर क्रमशः लय और स्वर-सघनता की ओर बढ़ता है। ऐसी संरचना ध्यान को संगीत और आत्म-चिंतन के बीच संतुलित कर सकती है।

डेका आदि ने राग तोड़ी सुनने वाली युवा महिलाओं में अवस्था-चिंता में कमी दर्ज की⁵। इसी प्रकार, कृष्णा आदि ने कर्नाटक राग बिलाहरी आधारित संगीत हस्तक्षेप के बाद कैंसर-रोगियों के देखभालकर्ताओं में चिंता, नींद-विघटन, शारीरिक लक्षण और मानसिक कष्ट में उल्लेखनीय कमी पाई⁶। यद्यपि ये अध्ययन सितार तक सीमित नहीं थे, वे यह स्पष्ट करते हैं कि भारतीय रागों की चिकित्सकीय उपयोगिता केवल सामान्य "आरामदायक संगीत" के प्रभाव से नहीं, बल्कि राग की विशिष्ट स्वरात्मक और भावात्मक संरचना से भी संबंधित हो सकती है।

सितार और आध्यात्मिक चिंतन का संबंध भारतीय संगीत की राग, नाद और साधना-परंपराओं में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। वेंकटरंगम के गुणात्मक अध्ययन में राग से अपरिचित प्रतिभागियों ने लाइव राग-संगीत सुनते समय शांति, सुरक्षा, आत्मनिरीक्षण तथा विचारों को स्वीकार करने की अनुभूति व्यक्त की⁷। अध्ययन ने राग को ध्यान, दृश्यीकरण और ग्रहणशील संगीत-चिकित्सा में उपयोगी माना। आध्यात्मिक चिंतन के संदर्भ में

आत्मनिरीक्षण का अर्थ किसी विशेष धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, इसमें जीवन के अर्थ, आत्म-जागरूकता, आंतरिक शांति, करुणा और स्वयं से संबंध का अनुभव सम्मिलित हो सकता है।

क्रूम के सैद्धांतिक विश्लेषण के अनुसार संगीत सकारात्मक भावनाओं, तल्लीनता या "फ्लो", संबंध-बोध, उपलब्धि और जीवन के अर्थ को सुदृढ़ कर सकता है⁸। सितार का अभ्यास विशेषतः अनुशासन, एकाग्रता, सूक्ष्म श्रवण और गुरु-शिष्य परंपरा से जुड़ा होता है। अतः सक्रिय सितार-वादन श्रोता-आधारित विश्राम से आगे बढ़कर आत्म-अनुशासन, सृजनात्मक अभिव्यक्ति और आध्यात्मिक अर्थ-निर्माण का माध्यम बन सकता है। डिंगल आदि की समीक्षा भी बताती है कि संगीत सुनना, वाद्य बजाना, समूह-संगीत और तात्कालिक रचना मनोदशा, आत्म-नियमन, सामाजिक संबंध, आत्मसम्मान और कल्याण को अलग-अलग मनोसामाजिक प्रक्रियाओं के माध्यम से प्रभावित करते हैं⁹।

ध्यान-अनुसंधान इस संबंध को अतिरिक्त समर्थन देता है। गोयल आदि की व्यवस्थित समीक्षा में माइंडफुलनेस ध्यान से चिंता, अवसाद और मानसिक तनाव में छोटे से मध्यम स्तर के सुधार पाए गए¹⁰। सितार-संगीत जब सजग श्रवण, धीमे श्वसन अथवा मौन चिंतन के साथ प्रयुक्त होता है, तब वह ध्यान के लिए एक श्रवण-आधार प्रदान कर सकता है। फिर भी वर्तमान साहित्य की प्रमुख सीमा यह है कि अधिकांश अध्ययन छोटे नमूनों, अल्प अवधि, अलग-अलग रागों तथा विविध परिणाम-मापों पर आधारित हैं। सितार-विशिष्ट यादृच्छिक नियंत्रित परीक्षण लगभग अनुपस्थित हैं। भविष्य में मानकीकृत सितार हस्तक्षेपों की तुलना मौन, ध्यान, अन्य वाद्यों और स्व-चयनित संगीत से करते हुए चिंता, अवसाद, नींद, HRV, EEG, कॉर्टिसोल तथा आध्यात्मिक कल्याण को मापना आवश्यक है। उपलब्ध प्रमाण आशाजनक हैं, पर सितार को स्वतंत्र चिकित्सकीय उपचार के स्थान पर मानसिक स्वास्थ्य देखभाल और आध्यात्मिक अभ्यास के एक पूरक माध्यम के रूप में देखना अधिक वैज्ञानिक रूप से उचित है।

अनुसंधान पद्धति -

अनुसंधान की प्रकृति :

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक प्रकृति का साहित्य-आधारित अनुसंधान है। इसका उद्देश्य सितार, मानसिक स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक चिंतन के मध्य विद्यमान संबंधों का वैज्ञानिक एवं समग्र विश्लेषण करना है। इस शोध में किसी प्रकार का प्रत्यक्ष प्रयोग, चिकित्सीय परीक्षण अथवा प्रतिभागियों से प्राथमिक आँकड़ों का संकलन नहीं किया गया है। अध्ययन पूर्णतः प्रकाशित एवं प्रमाणित वैज्ञानिक साहित्य के विश्लेषण पर आधारित है।

अनुसंधान अभिकल्प :

इस अध्ययन में समेकित साहित्य समीक्षा पद्धति को अपनाया गया है। विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध-पत्रों, समीक्षा लेखों, पुस्तकों तथा संस्थागत प्रकाशनों का तुलनात्मक एवं विषयगत विश्लेषण किया गया। अध्ययन का उद्देश्य केवल उपलब्ध शोधों का सार प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि उनके निष्कर्षों, सीमाओं तथा अनुसंधान-अंतरालों का समालोचनात्मक मूल्यांकन करना भी है।

आँकड़ों के स्रोत :

अध्ययन में केवल प्रमाणित एवं विश्वसनीय द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया। शोध सामग्री

निम्नलिखित स्रोतों से प्राप्त की गई –

- सहकर्मी–समीक्षित शोध–पत्र।
- अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक पत्रिकाएँ।
- संगीत–चिकित्सा संबंधी शोध प्रकाशन।
- मनोविज्ञान एवं मानसिक स्वास्थ्य संबंधी शोध साहित्य।
- भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं संगीतशास्त्र से संबंधित अकादमिक पुस्तकें।
- विश्वसनीय संस्थागत प्रकाशन एवं शोध डेटाबेस।

अध्ययन में केवल उन्हीं शोधों को सम्मिलित किया गया जिनकी प्रामाणिकता डिजिटल ऑब्जेक्ट आइडेंटिफायर अथवा आधिकारिक प्रकाशक के माध्यम से सत्यापित की जा सकी।



चित्र 3. अनुसंधान पद्धति

साहित्य चयन के मानदण्ड :

शोध की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु साहित्य के चयन के लिए निम्नलिखित मानदण्ड निर्धारित किए गए—

- मानसिक स्वास्थ्य, संगीत–चिकित्सा अथवा भारतीय शास्त्रीय संगीत से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित अध्ययन।
- सहकर्मी–समीक्षित शोध–पत्रों को प्राथमिकता।
- विश्वसनीय अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित शोध।

- ऐसे अध्ययन जिनमें तनाव, चिंता, अवसाद, भावनात्मक स्वास्थ्य, ध्यान, आध्यात्मिक अनुभव अथवा संगीत के मनोवैज्ञानिक प्रभावों का विश्लेषण किया गया हो।
- केवल सत्यापित एवं संदर्भ योग्य प्रकाशनों का समावेश।

निम्न प्रकार के स्रोतों को अध्ययन से बाहर रखा गया -

- अप्रमाणित वेबसाइटें।
- व्यक्तिगत ब्लॉग।
- बिना समीक्षा वाले लेख।
- संदिग्ध अथवा अपूर्ण संदर्भ वाले प्रकाशन।
- ऐसे शोध जिनकी प्रामाणिकता सत्यापित नहीं की जा सकी।

साहित्य संकलन की प्रक्रिया :

अनुसंधान विषय से संबंधित प्रमुख अवधारणाओं के आधार पर व्यवस्थित रूप से साहित्य का चयन किया गया। प्रत्येक शोध-पत्र का शीर्षक, सारांश, उद्देश्य, अनुसंधान पद्धति, प्रमुख निष्कर्ष तथा सीमाओं का पृथक अध्ययन किया गया। इसके पश्चात केवल विषय से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित अध्ययनों को अंतिम समीक्षा में सम्मिलित किया गया।

विश्लेषण की पद्धति :

संकलित साहित्य का विषयगत विश्लेषण किया गया। विश्लेषण के दौरान समान विषयों वाले अध्ययनों को निम्न प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया -

- संगीत एवं मानसिक स्वास्थ्य।
- संगीत-चिकित्सा और भावनात्मक संतुलन।
- भारतीय राग-संगीत के मनोवैज्ञानिक प्रभाव।
- सितार की ध्वनिक एवं रागात्मक विशेषताएँ।
- आध्यात्मिक चिंतन एवं ध्यान।
- संगीत, आत्म-जागरूकता तथा आंतरिक शांति।
- वर्तमान साहित्य की सीमाएँ एवं अनुसंधान-अंतराल।

प्रत्येक विषय के अंतर्गत विभिन्न अध्ययनों की तुलना करते हुए उनके निष्कर्षों की समानताओं एवं भिन्नताओं का विश्लेषण किया गया।

वैचारिक रूपरेखा :

प्रस्तुत अध्ययन इस अवधारणा पर आधारित है कि सितार का प्रभाव केवल श्रवण अनुभव तक सीमित नहीं है, बल्कि इसकी रागात्मक संरचना, स्वर-अनुनाद, लयात्मक प्रवाह तथा ध्यानपूर्ण श्रवण प्रक्रिया मानसिक एवं आध्यात्मिक दोनों आयामों को प्रभावित कर सकती है।

अध्ययन में निम्न वैचारिक संबंधों का विश्लेषण किया गया -

- सितार का रागात्मक प्रस्तुतीकरण।
- ध्यानपूर्ण श्रवण एवं भावनात्मक एकाग्रता।
- तनाव एवं चिंता में संभावित कमी।

- भावनात्मक संतुलन एवं आत्म-जागरूकता।
- आध्यात्मिक चिंतन एवं आंतरिक शांति।

अनुसंधान की विश्वसनीयता :

अध्ययन की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए निम्न उपाय अपनाए गए —

- केवल प्रमाणित वैज्ञानिक साहित्य का उपयोग।
- विभिन्न शोधों के निष्कर्षों का तुलनात्मक विश्लेषण।
- एकल अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत न करना।
- विभिन्न शोध क्षेत्रों जैसे मनोविज्ञान, संगीत-चिकित्सा, तंत्रिका-विज्ञान तथा भारतीय संगीतशास्त्र के निष्कर्षों का समन्वित उपयोग।
- प्रत्येक तथ्य को उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत करना।

अनुसंधान की सीमाएँ :

यह अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है, इसलिए इसमें प्रत्यक्ष प्रयोगात्मक परीक्षण सम्मिलित नहीं हैं। उपलब्ध साहित्य में विशेष रूप से सितार पर केंद्रित नियंत्रित वैज्ञानिक अध्ययनों की संख्या सीमित है। अतः कुछ निष्कर्ष भारतीय राग-संगीत, संगीत-चिकित्सा तथा ध्यान संबंधी व्यापक शोधों के तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न अध्ययनों में प्रयुक्त अनुसंधान पद्धतियों, प्रतिभागियों तथा परिणाम-मापों में भिन्नता होने के कारण निष्कर्षों का सामान्यीकरण सावधानीपूर्वक किया गया है।

नैतिक पक्ष :

यह अध्ययन पूर्णतः प्रकाशित साहित्य पर आधारित है तथा इसमें किसी मानव प्रतिभागी, चिकित्सीय हस्तक्षेप अथवा व्यक्तिगत जानकारी का उपयोग नहीं किया गया है। सभी विचारों, सिद्धांतों तथा निष्कर्षों को उनके मूल स्रोतों के उचित संदर्भ के साथ प्रस्तुत किया गया है। अनुसंधान के प्रत्येक चरण में शैक्षणिक ईमानदारी, बौद्धिक संपदा के सम्मान तथा वैज्ञानिक नैतिकता के सिद्धांतों का पालन किया गया है।

परिणाम एवं चर्चा :

उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य के व्यवस्थित विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि संगीत, विशेष रूप से भारतीय शास्त्रीय संगीत, मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन में महत्वपूर्ण सहायक भूमिका निभा सकता है। यद्यपि सितार को स्वतंत्र अध्ययन विषय बनाकर किए गए वैज्ञानिक शोध सीमित हैं, तथापि संगीत-चिकित्सा, भारतीय राग-संगीत, ध्यान तथा मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य पर उपलब्ध प्रमाण यह संकेत देते हैं कि सितार का श्रवण एवं अभ्यास मानसिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता रखता है।

साहित्य के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर यह पाया गया कि संगीत के प्रभाव तीन प्रमुख स्तरों पर दिखाई देते हैं— मनोवैज्ञानिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक। मनोवैज्ञानिक स्तर पर संगीत चिंता, तनाव तथा नकारात्मक भावनाओं को नियंत्रित करने में सहायक पाया गया। शारीरिक स्तर पर कई अध्ययनों ने तनाव-संबंधी जैविक संकेतकों, जैसे हृदयगति, रक्तचाप तथा तनाव-प्रतिक्रिया में सुधार की संभावना दर्शाई। आध्यात्मिक स्तर पर भारतीय राग-संगीत आत्म-जागरूकता, ध्यान, आंतरिक शांति तथा भावनात्मक संतुलन को प्रोत्साहित करने वाला माध्यम सिद्ध हुआ।

इन निष्कर्षों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सितार, अपनी विशिष्ट ध्वनि, रागात्मक

विस्तार, अनुनादी स्वरों तथा क्रमिक लयात्मक प्रस्तुति के कारण मानसिक एकाग्रता तथा भावनात्मक स्थिरता को विकसित करने में सहायक हो सकता है। यद्यपि इस संबंध में प्रत्यक्ष वैज्ञानिक प्रमाण अभी सीमित हैं, उपलब्ध साहित्य इस संभावना का पर्याप्त समर्थन करता है कि सितार को समग्र मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के पूरक साधन के रूप में विकसित किया जा सकता है।

तालिका 1. साहित्य समीक्षा से प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष :

क्र.	अध्ययन का प्रमुख विषय	साहित्य से प्राप्त निष्कर्ष	मानसिक स्वास्थ्य पर संभावित प्रभाव
1	संगीत-चिकित्सा	तनाव एवं चिंता में कमी	मानसिक शांति एवं भावनात्मक संतुलन
2	भारतीय राग-संगीत	सकारात्मक भावनात्मक अनुभव	मनोदशा में सुधार
3	ध्यान एवं संगीत	एकाग्रता एवं आत्म-जागरूकता में वृद्धि	मानसिक स्थिरता
4	राग आधारित संगीत	विश्राम एवं भावनात्मक नियंत्रण	तनाव प्रबंधन
5	वाद्य-संगीत	ध्यानपूर्ण श्रवण अनुभव	मन की चंचलता में कमी
6	आध्यात्मिक संगीत	आंतरिक शांति एवं आत्मचिंतन	आध्यात्मिक संतुलन

तालिका 1 से स्पष्ट होता है कि उपलब्ध अधिकांश शोध संगीत को मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के प्रभावी पूरक माध्यम के रूप में स्वीकार करते हैं। हालांकि सितार पर केंद्रित शोध अपेक्षाकृत कम हैं, फिर भी भारतीय राग-संगीत के संदर्भ में प्राप्त निष्कर्ष सितार के संभावित सकारात्मक प्रभावों की ओर संकेत करते हैं।

तालिका 2. वर्तमान साहित्य में पहचाने गए अनुसंधान-अंतराल

क्र.	वर्तमान स्थिति	शोध-अंतराल
1	अधिकांश अध्ययन सामान्य संगीत पर आधारित हैं	सितार पर केंद्रित स्वतंत्र अध्ययन अत्यंत सीमित
2	मानसिक स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान	आध्यात्मिक चिंतन का समेकित विश्लेषण दुर्लभ
3	अल्पकालिक हस्तक्षेप	दीर्घकालिक प्रभावों पर सीमित शोध
4	विभिन्न संगीत विधाओं का मिश्रित अध्ययन	भारतीय तंतुवाद्यों का पृथक विश्लेषण उपलब्ध नहीं
5	विविध अनुसंधान पद्धतियाँ	मानकीकृत अनुसंधान रूपरेखा का अभाव
6	सीमित तंत्रिका-वैज्ञानिक अध्ययन	मस्तिष्कीय एवं जैविक प्रभावों पर अधिक शोध की आवश्यकता

तालिका 2 यह दर्शाती है कि वर्तमान साहित्य में सबसे बड़ी कमी सितार-विशिष्ट अनुसंधानों की है। अधिकांश अध्ययनों में संगीत को एक सामान्य हस्तक्षेप के रूप में देखा गया है, जबकि विभिन्न वाद्यों के विशिष्ट प्रभावों की पृथक जाँच बहुत कम हुई है।

तालिका 3. प्रस्तुत अध्ययन का वैज्ञानिक योगदान

क्षेत्र	वर्तमान साहित्य	प्रस्तुत अध्ययन का योगदान
मानसिक स्वास्थ्य	सामान्य संगीत-चिकित्सा	सितार के संदर्भ में समेकित विश्लेषण
आध्यात्मिक चिंतन	सीमित चर्चा	मानसिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिकता का संयुक्त अध्ययन
भारतीय संगीत	राग आधारित अध्ययन	सितार की रागात्मक एवं ध्वनिक विशेषताओं का विश्लेषण
अनुसंधान रूपरेखा	विखंडित निष्कर्ष	एकीकृत वैचारिक मॉडल का प्रस्ताव
भविष्य की दिशा	सीमित सुझाव	सितार-आधारित अनुभवजन्य एवं नैदानिक अनुसंधानों की रूपरेखा

प्रस्तुत समीक्षा के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सितार मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक चिंतन के मध्य एक संभावित सेतु के रूप में देखा जा सकता है। इसकी ध्वनिक संरचना, रागात्मक विकास, अनुनादी स्वर तथा ध्यानपूर्ण श्रवण—अनुभव भावनात्मक संतुलन, मानसिक विश्राम और आत्म—जागरूकता को प्रोत्साहित कर सकते हैं। हालांकि उपलब्ध प्रमाण मुख्यतः संगीत—चिकित्सा एवं भारतीय राग—संगीत के व्यापक साहित्य पर आधारित हैं, फिर भी वे यह संकेत देते हैं कि सितार को मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त और गैर—औषधीय पूरक माध्यम के रूप में विकसित करने की पर्याप्त संभावना है।

समीक्षा का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि भविष्य में नियंत्रित अनुभवजन्य अध्ययनों के माध्यम से सितार—आधारित हस्तक्षेपों का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। विशेष रूप से चिंता, अवसाद, तनाव, नींद की गुणवत्ता, हृदयगति परिवर्तनशीलता, मस्तिष्कीय विद्युत गतिविधि तथा आध्यात्मिक कल्याण जैसे संकेतकों पर मानकीकृत शोध इस क्षेत्र को अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान कर सकते हैं।

अध्ययन की सीमाएँ :

प्रस्तुत अध्ययन उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य के विश्लेषण पर आधारित एक साहित्य समीक्षा है, अतः इसके निष्कर्षों की व्याख्या इस अनुसंधान की सीमाओं के संदर्भ में की जानी चाहिए। इस अध्ययन में किसी प्रकार के प्रत्यक्ष प्रयोग, नैदानिक परीक्षण, सर्वेक्षण अथवा प्राथमिक आँकड़ों का संकलन नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप प्रस्तुत निष्कर्ष प्रकाशित अध्ययनों के समेकित विश्लेषण पर आधारित हैं।

इस अध्ययन की एक प्रमुख सीमा यह है कि मानसिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक चिंतन पर सितार के प्रभावों का प्रत्यक्ष मूल्यांकन करने वाले उच्च—गुणवत्ता वाले वैज्ञानिक अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध हैं। अधिकांश उपलब्ध शोध संगीत—चिकित्सा, भारतीय राग—संगीत अथवा सामान्य वाद्य—संगीत पर केंद्रित हैं, जिनसे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर सितार के संभावित प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। इसलिए इन निष्कर्षों को अंतिम या सार्वभौमिक प्रमाण के रूप में नहीं, बल्कि वर्तमान वैज्ञानिक साक्ष्यों पर आधारित विवेचन के रूप में देखा जाना चाहिए।

एक अन्य सीमा यह है कि विभिन्न अध्ययनों में प्रयुक्त अनुसंधान पद्धतियों, प्रतिभागियों की आयु, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, संगीत हस्तक्षेप की अवधि, रागों के चयन तथा परिणामों के मूल्यांकन के मानदण्डों में पर्याप्त विविधता पाई जाती है। यह विविधता विभिन्न अध्ययनों की प्रत्यक्ष तुलना तथा उनके निष्कर्षों के सामान्यीकरण को सीमित करती है।

इसके अतिरिक्त, मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक चिंतन दोनों ही बहुआयामी अवधारणाएँ हैं, जिन पर सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यक्तिगत, धार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए केवल संगीत अथवा सितार के आधार पर इन दोनों आयामों की पूर्ण व्याख्या करना संभव नहीं है। प्रस्तुत अध्ययन में इन बाह्य कारकों का पृथक विश्लेषण नहीं किया गया है।

अध्ययन में केवल प्रमाणित एवं उपलब्ध अकादमिक स्रोतों को सम्मिलित किया गया है। जिन शोधों की प्रामाणिकता, संदर्भ अथवा प्रकाशन विवरण सत्यापित नहीं किए जा सके, उन्हें समीक्षा में शामिल नहीं किया गया। फलस्वरूप कुछ प्रासंगिक किन्तु अप्रमाणित अथवा सीमित रूप से उपलब्ध साहित्य इस अध्ययन का भाग नहीं बन सका।

इन सीमाओं के बावजूद प्रस्तुत अध्ययन उपलब्ध वैज्ञानिक साक्ष्यों का समेकित एवं आलोचनात्मक

विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा सितार, मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक चिंतन के अंतर्संबंधों पर भविष्य के अनुभवजन्य, नैदानिक एवं अंतःविषयक अनुसंधानों के लिए एक सुदृढ़ वैचारिक आधार उपलब्ध कराता है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य सितार, मानसिक स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक चिंतन के मध्य विद्यमान संबंधों का उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य के आधार पर समग्र विश्लेषण करना था। साहित्य समीक्षा से यह स्पष्ट हुआ कि संगीत मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला एक प्रभावी पूरक माध्यम हो सकता है। विशेष रूप से भारतीय शास्त्रीय संगीत में निहित रागात्मक संरचना, स्वर-अनुनाद तथा ध्यानात्मक श्रवण-अनुभव तनाव को कम करने, भावनात्मक संतुलन स्थापित करने, एकाग्रता बढ़ाने तथा आत्म-जागरूकता को विकसित करने की क्षमता रखते हैं। यद्यपि सितार पर केंद्रित प्रत्यक्ष वैज्ञानिक अनुसंधान अभी सीमित हैं, फिर भी संगीत-चिकित्सा, भारतीय राग-संगीत तथा ध्यान संबंधी उपलब्ध शोध यह संकेत देते हैं कि सितार मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन और आध्यात्मिक आत्मचिंतन के लिए एक उपयोगी पूरक साधन बन सकता है।

इस अध्ययन की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सितार को केवल एक संगीत वाद्य के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा, संगीत-चिकित्सा, मनोविज्ञान तथा आध्यात्मिक चिंतन के साझा परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया गया है। उपलब्ध शोधों के तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि वर्तमान साहित्य मुख्यतः सामान्य संगीत-चिकित्सा या भारतीय राग-संगीत पर केंद्रित है, जबकि सितार की विशिष्ट ध्वनिक विशेषताओं, राग-विस्तार, अनुनादी स्वरों तथा उनके मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रभावों का समेकित वैज्ञानिक अध्ययन अभी पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुआ है। इस प्रकार यह शोध वर्तमान साहित्य में विद्यमान अनुसंधान-अंतरालों को स्पष्ट करता है तथा भविष्य के अध्ययनों के लिए एक व्यवस्थित वैचारिक आधार प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत समीक्षा यह भी रेखांकित करती है कि मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक कल्याण को परस्पर पृथक न मानकर एक-दूसरे के पूरक आयामों के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है। सितार का नियमित श्रवण अथवा अभ्यास ध्यान, आत्म-नियमन, भावनात्मक स्थिरता और आंतरिक शांति जैसे गुणों को प्रोत्साहित कर सकता है। यद्यपि इन संभावित प्रभावों की पुष्टि के लिए अधिक व्यापक अनुभवजन्य अनुसंधानों की आवश्यकता है, उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाण इस दिशा में सकारात्मक संभावनाओं का समर्थन करते हैं।

भविष्य के अनुसंधानों में सितार-आधारित मानकीकृत संगीत हस्तक्षेपों का विभिन्न आयु-वर्गों एवं सामाजिक समूहों पर परीक्षण किया जाना चाहिए। चिंता, अवसाद, तनाव, नींद की गुणवत्ता, संज्ञानात्मक कार्यक्षमता, हृदयगति परिवर्तनशीलता, मस्तिष्कीय विद्युत गतिविधि तथा आध्यात्मिक कल्याण जैसे संकेतकों का समन्वित मूल्यांकन इस क्षेत्र को अधिक सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार प्रदान कर सकता है। साथ ही, संगीतशास्त्र, मनोविज्ञान, तंत्रिका-विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतःविषयक सहयोग से इस विषय पर अधिक विश्वसनीय और प्रमाण-आधारित निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि सितार भारतीय सांगीतिक विरासत का केवल एक सांस्कृतिक प्रतीक नहीं है, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन, भावनात्मक संतुलन तथा आध्यात्मिक आत्मविकास के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण संभावनाएँ रखता है। यदि इन संभावनाओं का वैज्ञानिक पद्धति से व्यवस्थित परीक्षण और सत्यापन किया जाए, तो सितार-आधारित संगीत हस्तक्षेप समग्र स्वास्थ्य, निवारक मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं तथा सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त उपचारात्मक कार्यक्रमों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। इस प्रकार

प्रस्तुत अध्ययन भारतीय शास्त्रीय संगीत और आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य अनुसंधान के मध्य एक सार्थक सेतु स्थापित करने का प्रयास करता है तथा इस क्षेत्र में भविष्य के अनुसंधानों के लिए नई दिशाएँ प्रदान करता है।

संदर्भ :

1. आल्बर्स, एस., फुशियामा, एच., नाट, एम., आदि (2017). "Music Therapy for Depression-" कोक्रेन डेटाबेस ऑफ सिस्टैमैटिक रिव्यूज, अंक 11, लेख संख्या CD004517.
डीओआई : 10.1002/14651858.CD004517.pub3
2. डी विट्टे, एम., स्प्राउट, ए., वान हूरेन, एस., मूनन, एक्स., एवं स्टैम्स, जी.—जे. (2022). "Music Therapy for Stress Reduction : A Systematic Review and Meta-analysis." हेल्थ साइकोलॉजी रिव्यू, खंड 16, अंक 1, पृष्ठ 134–159.
डीओआई : 10.1080/17437199.2020.1846580
3. थोमा, एम. वी., ला मार्का, आर., ब्रोनिमान, आर., फिंकल, एल., एहलर्ट, यू., एवं नेटर, यू. एम. (2013). "The Effect of Music on the Human Stress Response." पीएलओएस वन, खंड 8, अंक 8, लेख संख्या e70156.
डीओआई : 10.1371/journal.pone.0070156
4. शर्मा, एस., आदि (2021). "Indian Classical Music with Incremental Variation in Tempo and Octave Promotes Better Anxiety Reduction and Controlled Mind Wandering—A Randomised Controlled EEG Study." एक्सप्लोर, खंड 17, अंक 2, पृष्ठ 115–121.
डीओआई : 10.1016/j.explore.2020.02.013
5. डेका, एस., तिवारी, पी., एवं त्रिपाठी, के. एम. (2022). "Raga Todi Intervention on State Anxiety Level in Female Young Adults During COVID-19." मैटेरियल्स टुडे : प्रोसीडिंग्स, खंड 62, पृष्ठ 165–169.
डीओआई : 10.1016/j.matpr.2021.12.181
6. कृष्णा, आर., राजकुमार, ई., रोमेट, जे., एलेन, जे. जी., एवं मोनिका, डी. (2022). "Effect of Carnatic Raga-Bilahari Based Music Therapy on Anxiety, Sleep Disturbances and Somatic Symptoms Among Caregivers of Cancer Patients." हेलियॉन, खंड 8, अंक 9, लेख संख्या e10681.
डीओआई : 10.1016/j.heliyon.2022.e10681
7. वेंकटरंगम, एस. (2021). "Participants' Experiences of a Receptive Music Therapy Intervention That Incorporates Raga : An Interpretative Phenomenological Analysis." द आर्ट्स इन साइकोथेरेपी, खंड 73, लेख संख्या 101762.
डीओआई : 10-1016/j.aip.2021.101762
8. क्रूम, ए. एम. (2012). "Music, Neuroscience, and the Psychology of Well-being : A Précis." फ्रंटियर्स इन साइकोलॉजी, खंड 2, लेख संख्या 393.
डीओआई : 10.3389/fpsyg.2011.00393
9. डिंगल, जी. ए., आदि (2021). "How Do Music Activities Affect Health and Well-being\A Scoping Review of Studies Examining Psychosocial Mechanisms." फ्रंटियर्स इन साइकोलॉजी, खंड 12, लेख संख्या 713818.
डीओआई : 10.3389/fpsyg.2021.713818
10. गोयल, एम., आदि (2014). "Meditation Programs for Psychological Stress and Well&being : A Systematic Review and Meta-analysis." जामा इंटरनल मेडिसिन, खंड 174, अंक 3, पृष्ठ 357–368.
डीओआई : 10.1001/jamainternmed.2013.13018

स्थानीय उत्पादों के माध्यम से सांस्कृतिक और आर्थिक पुनर्जागरण

सुश्री नीलम पाटीदार

सहायक प्राध्यापक (इतिहास)

सरदार वल्लभ भाई पटेल शासकीय महाविद्यालय, कुक्षी, जिला— धार (म.प्र.)

शोध सार -

स्थानीय उत्पाद भारत की संस्कृति और स्वावलंबन के जीवंत प्रतीक हैं, जो परंपरा, कला, कौशल और क्षेत्रीय पहचान को समेटे हुए हैं। वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद के युग में जहाँ विदेशी ब्रांड्स का प्रभुत्व बढ़ा वहीं भारत की पारंपरिक हस्तकला, कुटीर उद्योग और लोककला उपेक्षित हो गई। इस पृष्ठभूमि में वोकल फॉर लोकल न केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता का प्रतीक है, बल्कि स्वदेशी संस्कृति और कौशल की पुनर्स्थापना का माध्यम भी है। इसके माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त किया जा सकता है, पलायन को रोका जा सकता है, और रोजगार सृजन के नए अवसर निर्मित किए जा सकते हैं। डिजिटलीकरण और सरकारी योजनाएँ स्थानीय उत्पादों को वैश्विक पहचान देने में सहायक सिद्ध हो रही हैं। हालाँकि इस अभियान के समक्ष कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। स्थानीय उत्पादों को अपनाकर भारत न केवल आर्थिक रूप से सशक्त हो सकता है, बल्कि अपनी सांस्कृतिक जड़ों से पुनः जुड़कर एक आत्मनिर्भर राष्ट्र के रूप में विश्व के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है।

शब्द कुंजी - स्थानीय उत्पाद, कौशल विकास, शिल्पकला, औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद।

प्रस्तावना -

भारत सदियों से विविधता, शिल्पकला और स्वावलंबन की भूमि रहा है। प्रत्येक प्रांत, जनजाति और ग्राम में एक विशिष्ट कला, भाषा, रहन-सहन, खान-पान और हस्तकला का अद्भुत संसार मौजूद रहा है। औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद की दौड़ में यह संसार धीरे-धीरे उपेक्षित होता गया। भारतीय बाजार विदेशी वस्तुओं से भर गए और हमारी अपनी कारीगरी, हस्तनिर्मित वस्तुएँ तथा पारंपरिक उत्पाद का अस्तित्व संकट में पड़ गया। इन्हीं परिस्थितियों में सन् 2020 में "वोकल फॉर लोकल" का अभियान प्रारम्भ किया गया। यह केवल आर्थिक नीति नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक आंदोलन भी है, जो हमें अपनी जड़ों की ओर लौटने का आह्वान करता है। स्थानीय उत्पादों को बढ़ावा देना केवल व्यापारिक दृष्टि से नहीं, बल्कि आत्मगौरव, स्वदेशी भावना और सामूहिक समृद्धि के लिए भी आवश्यक है।

वोकल फॉर लोकल का अर्थ और महत्व – वोकल फॉर लोकल का अर्थ है— स्थानीय उत्पादों का समर्थन करना एवं उन्हें अपनाना। इसका उद्देश्य है— स्थानीय उद्यमों, हस्तशिल्प, कुटीर उद्योगों और लघु व्यवसायों को पुनर्जीवित करना, ताकि भारत अपने उत्पादों के लिए न केवल आत्मनिर्भर बने, बल्कि वैश्विक बाजार में भी प्रतिस्पर्धी हो सके। यह पहल केवल आर्थिक स्वावलंबन की बात नहीं करती, बल्कि भारतीय संस्कृति, परंपरा और पहचान को पुनः सशक्त बनाने की दिशा में कार्य करती है। स्थानीय उत्पाद हमारी सांस्कृतिक विरासत के दूत हैं, वे किसी क्षेत्र के कौशल और जीवनदर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः जब हम किसी स्थानीय वस्तु को अपनाते हैं, तो हम केवल एक वस्तु नहीं खरीदते, बल्कि अपने समाज की जड़ों को सींचते हैं। वोकल फॉर लोकल हमें याद दिलाता है कि प्रगति का वास्तविक अर्थ विदेशी वस्तुओं के आयात में नहीं, बल्कि अपनी जड़ों में निहित क्षमता को पहचानने में है।

भारतीय स्थानीय उत्पाद सांस्कृतिक धरोहर है – भारत के प्रत्येक राज्य में सांस्कृतिक विविधता और हस्तकला की समृद्ध परंपरा देखी जा सकती है। राजस्थान का ब्लू पॉटरी, बनारस की सिल्क साड़ी, कश्मीर का पश्मीना, मध्यप्रदेश का महेश्वरी एवं चंदेरी वस्त्र, बिहार की मधुबनी चित्रकला, ओडिशा की पट्टचित्र कला, तमिलनाडु का कांचीपुरम सिल्क, और उत्तराखंड की ऊन की बुनाई, ये सभी केवल उत्पाद नहीं बल्कि सांस्कृतिक प्रतीक हैं। इन उत्पादों में न केवल सौंदर्य और उपयोगिता का संगम है बल्कि ये पीढ़ियों से संचित लोकज्ञान और परंपरा के संवाहक हैं। जब हम इन वस्तुओं को अपनाते हैं, तो हम अपने कारीगरों को सम्मान देते हैं, उनकी आजीविका को सुदृढ़ करते हैं और सांस्कृतिक विविधता को जीवित रखते हैं।

स्थानीय उत्पादों का आर्थिक पक्ष – भारत में 60% से अधिक जनसंख्या आज भी ग्रामीण या अर्ध-शहरी क्षेत्रों में निवास करती है, जहाँ आजीविका का प्रमुख साधन कृषि, हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग और सेवा कार्य हैं। स्थानीय उत्पादों के प्रचार और संरक्षण से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सीधा बल मिलता है। वोकल फॉर लोकल के माध्यम से जब उपभोक्ता स्थानीय उत्पादों को प्राथमिकता देते हैं, तो ग्रामीण कारीगरों, शिल्पियों, बुनकरों और लघु उद्योगों के लिए नए बाजार खुलते हैं। इससे रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, पलायन घटता है और सामाजिक समरसता बनी रहती है। यह नीति आत्मनिर्भरता बनाती है, जिसमें उत्पादन, उपभोग और पुनर्निवेश, तीनों देश के भीतर ही संचालित होते हैं। इससे न केवल विदेशी मुद्रा की बचत होती है, बल्कि भारत के ळक्क में भी स्थायी वृद्धि होती है।

वैश्वीकरण और स्थानीयता के बीच संघर्ष – बीते तीन दशकों में वैश्वीकरण के प्रभाव से भारतीय उपभोक्ता की मानसिकता में गहरा परिवर्तन आया। विदेशी ब्रांडों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हमारे बाजारों पर कब्जा कर लिया। उपभोक्ताओं के लिए गुणवत्ता की पहचान केवल “विदेशी” शब्द से जुड़ गई। परिणामस्वरूप भारतीय शिल्प और घरेलू उद्योग पिछड़ते चले गए। वोकल फॉर लोकल इस मानसिकता को चुनौती देता है। यह हमें याद दिलाता है कि गुणवत्ता और गौरव दोनों हमारी भूमि में निहित हैं। स्थानीय उत्पाद केवल भावनात्मक प्रतीक नहीं, बल्कि टिकाऊ, पर्यावरण-सम्मत और आर्थिक रूप से सुलभ विकल्प भी हैं।

डिजिटल युग में लोकल उत्पादों की नई उड़ान – ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म जैसे Amazon, Flipkart, Etsy, Meesho और Government e-Marketplace (GeM) ने स्थानीय उत्पादों को राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर पहुंचाने के नए द्वार खोले हैं। आज एक छोटा सा शिल्पकार भी अपने उत्पाद को डिजिटल माध्यम से देशभर में बेच सकता है। सरकारी पहलें जैसे One District One Product (ODOP) और Make in India कार्यक्रम इस

दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रहे हैं। डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन मार्केटिंग और सोशल मीडिया प्रचार ने लोकल ब्रांड्स को नई पहचान दी है।

सांस्कृतिक पुनर्जागरण और लोक स्वाभिमान – वोकल फॉर लोकल केवल आर्थिक नीति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्वाभिमान का पुनरुत्थान है। यह हमें हमारी मिट्टी और लोककला से जोड़ता है। जब हम स्वदेशी उत्पाद अपनाते हैं, तो हम अपने पूर्वजों की परंपराओं को पुनर्जीवित करते हैं। स्थानीय उत्पाद हमारी सांस्कृतिक पहचान को जीवित रखते हैं। उदाहरण के लिए— हाथ से बने खिलौने, मिट्टी के बर्तन, लकड़ी की नक्काशी, जूट और बांस के उत्पाद, लोक वाद्ययंत्र, प्राकृतिक रंगों से बनी वस्त्रकलाएँ, ये सभी भारत की लोकसंस्कृति के जीवंत प्रतीक हैं। इन उत्पादों को बढ़ावा देना केवल खरीददारी नहीं, बल्कि संस्कृति का संरक्षण है। यह आत्मनिर्भरता की वही भावना है जो गांधीजी के स्वदेशी आंदोलन में प्रकट हुई थी।

वोकल फॉर लोकल और पर्यावरणीय संतुलन – स्थानीय उत्पादों का उपयोग पर्यावरणीय दृष्टि से भी अत्यंत लाभकारी है। अधिकांश लोकल वस्तुएँ प्राकृतिक संसाधनों से बनी होती हैं और टिकाऊ होती हैं। इनके उत्पादन में ऊर्जा की खपत कम होती है तथा प्रदूषण भी न्यूनतम रहता है। विदेशी उत्पादों के आयात से जो परिवहन और पैकेजिंग लागत पर्यावरण पर भार डालती है, वह स्थानीय उत्पादों में नगण्य है। इस प्रकार वोकल फॉर लोकल हरित अर्थव्यवस्था की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम है।

युवा पीढ़ी की भूमिका – भारत की युवा पीढ़ी इस अभियान की सबसे बड़ी शक्ति है। युवा यदि स्थानीय ब्रांड्स, हस्तनिर्मित वस्तुओं और स्वदेशी उत्पादों को अपनाएँ, तो समाज में व्यापक परिवर्तन संभव है। युवाओं को केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि उद्यमी के रूप में भी आगे आना चाहिए। स्टार्टअप्स के माध्यम से स्थानीय उत्पादों में नवीनता, पैकेजिंग और मार्केटिंग की दृष्टि से सुधार लाकर उन्हें वैश्विक स्तर तक पहुँचाया जा सकता है।

सरकारी योजनाएँ और नीति समर्थन –

भारतीय सरकार ने स्थानीय उत्पादों के संरक्षण और प्रसार के लिए अनेक योजनाएँ आरंभ की हैं, जैसे:

- आत्मनिर्भर भारत अभियान।
- मेक इन इंडिया।
- स्टार्टअप इंडिया।
- प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY)
- ODOP (One District One Product)
- कौशल विकास योजना।
- Khadi and Village Industries Commission (KVIC)

इन योजनाओं का उद्देश्य है –

पारंपरिक उद्योगों को आधुनिक तकनीक से जोड़ना, विपणन सुविधाएँ उपलब्ध कराना और युवाओं को स्थानीय उद्योगों में भागीदारी के लिए प्रेरित करना।

चुनौतियाँ –

वोकल फॉर लोकल एक दूरदर्शी और सशक्त पहल है, किंतु इसके क्रियान्वयन के मार्ग में अनेक व्यवहारिक, सामाजिक और आर्थिक बाधाएँ भी मौजूद हैं। यदि इन चुनौतियों की पहचान और समाधान न किया

जाए तो यह अभियान केवल नारा बनकर रह सकता है।

1. **उपभोक्ताओं की मानसिकता और ब्रांड-विश्वास का संकट** – भारत में दशकों से विदेशी ब्रांड्स को गुणवत्ता और प्रतिष्ठा का प्रतीक मान लिया गया है। उपभोक्ता स्थानीय वस्तुओं को प्रायः कमतर समझते हैं। यह मानसिकता सबसे बड़ी चुनौती है, क्योंकि जब तक समाज की सोच नहीं बदलेगी, तब तक स्थानीय उत्पादों की स्वीकृति सीमित रहेगी।
2. **विपणन (Marketing) और ब्रांडिंग की कमी** – अनेक स्थानीय उत्पाद उत्कृष्ट गुणवत्ता के होते हुए भी उचित प्रचार और विपणन के अभाव में बाजार में पीछे रह जाते हैं। ग्रामीण और कुटीर उद्योगों के पास ब्रांडिंग, पैकेजिंग, विज्ञापन और वितरण की सुविधाएँ नहीं होतीं।
3. **पूँजी और वित्तीय सहयोग का अभाव** – लघु और कुटीर उद्योगों के सामने सबसे बड़ी बाधा पूँजी की कमी है। ऋण प्रक्रिया जटिल है और बैंक छोटे उद्यमियों को जोखिमपूर्ण समझते हैं। इसके कारण अनेक कारीगर अपना कौशल छोड़कर मजदूरी या पलायन की ओर बढ़ जाते हैं।
4. **तकनीकी पिछड़ापन और नवाचार की कमी** – अनेक स्थानीय उद्योग पारंपरिक तकनीकों पर आधारित हैं, जो आधुनिक प्रतिस्पर्धा के अनुरूप नहीं हैं। इससे उत्पादन की गति और गुणवत्ता दोनों प्रभावित होती हैं।
5. **वैश्विक प्रतिस्पर्धा और मूल्य निर्धारण की समस्या** – विदेशी कंपनियाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन करके वस्तुएँ सस्ती कीमतों पर उपलब्ध कराती हैं, जबकि लोकल उत्पादों की लागत अपेक्षाकृत अधिक होती है। मूल्य प्रतिस्पर्धा में छोटे उद्योग पीछे रह जाते हैं।
6. **वितरण नेटवर्क और लॉजिस्टिक चुनौतियाँ** – ग्रामीण उत्पादों को शहरी और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुँचाने में परिवहन, भंडारण और सप्लाई चेन की कमजोरियाँ आड़े आती हैं।
7. **शिल्प-परंपराओं का क्षरण** – आधुनिकता की अंधी दौड़ में युवा पीढ़ी पारंपरिक कौशल से दूर होती जा रही है। अनेक लोककलाएँ विलुप्त होने के कगार पर हैं।
8. **नीति क्रियाव्ययन की असफलता** – कई सरकारी योजनाएँ कागज पर तो सफल दिखती हैं, किंतु जमीनी स्तर पर उनका लाभ वास्तविक कारीगरों तक नहीं पहुँच पाता।

समाधान –

वोकल फॉर लोकल की सफलता हेतु शिक्षण संस्थानों, मीडिया और सामाजिक अभियानों के माध्यम से स्वदेशी उत्पादों की श्रेष्ठता को प्रचारित किया जा सकता। सरकार और निजी कंपनियाँ लोकल ब्रांड्स को गुणवत्ता प्रमाणन प्रदान करें, जिससे उपभोक्ताओं का विश्वास बढ़े। सरकार को स्थानीय उत्पादों के लिए भारत ब्रांडिंग मिशन जैसी योजना बनानी चाहिए, जिसमें विशेषज्ञ विपणन प्रशिक्षण, ई-कॉमर्स सहायता और सामूहिक ब्रांड पहचान विकसित की जाए। महाविद्यालयों में 'Rural Marketing Internship Program' जैसी पहल युवाओं को जोड़ सकती है। सरकार और निजी बैंकों को माइक्रो फाइनेंस योजनाएँ सरल बनानी चाहिए। मुद्रा योजना और स्टार्टअप इंडिया के तहत ऋण की पहुँच बढ़ाई जाए। साथ ही स्वयं सहायता समूह को प्रोत्साहित कर सामूहिक उत्पादन प्रणाली को बढ़ावा दिया जाए। शिक्षा संस्थानों और औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्रों में तकनीक हस्तांतरण कार्यक्रम प्रारंभ किए जा सकते हैं। स्थानीय कारीगरों को नई मशीनरी, डिजाइन और डिजिटल टूल्स की जानकारी दी जाए। सरकार को स्थानीय उद्योगों के लिए कर छूट, सब्सिडी, और कच्चे माल पर रियायतें देनी चाहिए। साथ ही, उपभोक्ताओं में यह समझ विकसित करनी होगी कि वे केवल सस्ती चीज नहीं, बल्कि

टिकाऊ, नैतिक और देशहितकारी विकल्प चुनें। युवाओं को प्रेरित किया जाए कि वे इन पारंपरिक कलाओं को आधुनिक स्वरूप देकर नए बाजार बनाएं। नीति क्रियान्वयन में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित की जाए। स्थानीय निकायों और पंचायतों को योजनाओं की निगरानी का दायित्व दिया जाए, ताकि सहायता सही हाथों तक पहुँचे। इन समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक है कि सरकार, उद्योग जगत, शैक्षणिक संस्थान, मीडिया और उपभोक्ता सभी मिलकर कार्य करें।

निष्कर्ष -

स्थानीय उत्पाद हमारे इतिहास, परंपरा और कौशल की जीवंत धरोहर हैं। इनके माध्यम से न केवल आर्थिक विकास संभव है, बल्कि भारत की सांस्कृतिक आत्मा भी पुनर्जीवित होती है। जब हम स्थानीय उत्पादों को प्राथमिकता देते हैं, तब हम अपने कारीगरों का सम्मान करते हैं, अपने ग्रामीण समाज को सशक्त बनाते हैं और आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में सक्रिय भागीदारी निभाते हैं। जब कोई भारतीय अपने ही देश में निर्मित वस्तु को अपनाता है, तो वह केवल एक उत्पाद नहीं चुनता, वह अपनी श्रम-संस्कृति, परंपरा और स्वाभिमान को अपनाता है। स्थानीय उत्पाद न केवल आर्थिक स्थिरता लाते हैं, बल्कि वे समाज में आत्मविश्वास और समरसता की भावना भी जाग्रत करते हैं। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होती है, कारीगरों को सम्मान मिलता है और महिलाओं के लिए भी रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम स्थानीय उत्पादों को केवल भावनात्मक दृष्टि से नहीं, बल्कि व्यावहारिक और आधुनिक दृष्टिकोण से भी समझें। इन उत्पादों को डिजाइन, नवाचार, डिजिटल मार्केटिंग और वैश्विक गुणवत्ता मानकों से जोड़ें, ताकि वे न केवल भारत में, बल्कि विश्व बाजार में भारत का गौरव बनें। वोकल फॉर लोकल हमें यह सिखाता है कि आत्मनिर्भरता का अर्थ एकाकीपन नहीं, बल्कि अपनी शक्ति को पहचानकर विश्व के साथ समरसता से आगे बढ़ना है। यदि हर नागरिक स्थानीय वस्तु को प्राथमिकता दे, प्रत्येक युवा नवाचार से स्थानीय उद्योगों को जोड़ने का संकल्प ले, और शासन तंत्र इन प्रयासों को नीतिगत रूप से सहयोग दें, तो निश्चित ही सतत प्रयास, नीति समन्वय और जनसहभागिता के माध्यम से हम वोकल फॉर लोकल को केवल नारा नहीं, बल्कि राष्ट्रीय विकास की सशक्त रणनीति बना सकते हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. पाण्डे गिरीश चंद्र (2022), आत्मनिर्भर भारत : अवसर और चुनौतियां, वालनट पब्लिकेशन।
2. प्रो. कौर मनमीत, प्रो. शर्मा वंदना (2023), आत्मनिर्भर भारत : संभावनाएं एवं चुनौतियां, राधा पब्लिकेशंस, दिल्ली।
3. Dr. Chandra Rahul (2025), Vocal for Local, Pacific Books International.
4. <https://www.drishtiias.com/loksabha&rajyasabhadiscussions/perspective&vocal&for&local>
5. <https://www.taxtmi.com/article/detailed/id/13583>

Mail ID : patidar.neelam@gmail.com

Mob. 9644143281

नेपथ्य राग में स्त्री जीवन

NANDU MURALI

Research Scholar, Cochin University of Science and Technology, Kerala.

सारांश

स्त्री अपनी तमाम प्रतिभाओं, योग्यताओं और हुनर के बावजूद सदियों से समाज के हाशिए पर जीवन जीने के लिए विवश रही है। उसे समाज के एक बड़े वर्ग द्वारा बार-बार उपेक्षा और अस्वीकृति का सामना करना पड़ता है। इस विडंबना का मूल कारण सदियों से हमारे समाज में जड़ जमा चुकी पुरानी रूढ़ियाँ और पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था की खोखली मानसिकता है। यह संकीर्ण सोच बचपन से ही बच्चों के दिलों-दिमाग में इस प्रकार रोपी जाती है कि वे अनजाने में ही इस रूढ़िवादी परंपरा का हिस्सा बन जाते हैं। इस सामाजिक कंडीशनिंग से स्त्री वर्ग भी अछूता नहीं है। बचपन से ही उनके मन में भी यह बात बैठा दी जाती है कि उनका अधिकार-क्षेत्र दोगुना दर्जे का है, जिसके परिणामस्वरूप वे स्वयं को घर की चारदीवारी तक सीमित मान लेती हैं। हिन्दी साहित्य में अनेक रचनाकारों ने इस ज्वलंत समस्या पर अपनी कलम चलाई है, जिनमें प्रख्यात लेखिका मीरा कान्त का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी प्रसिद्ध रचना 'नेपथ्य राग' इसी सामाजिक यथार्थ पर करारा प्रहार करती है।

मूल शब्द : मीरा कांत, नेपथ्य राग, स्त्री अस्मिता, स्त्री शोषण, कामकाजी महिला, शोषण, हाशिएकृत स्थिति, दोगुना दर्जे की स्थिति।

मूल आलेख :

स्त्री मां है, देवी है, पृथ्वी है, सब कुछ है आदि कहके गाने वाली दुनिया जब अधिकार व स्थान व पद की बात क्या आती है तो यह सब भूल जाती है, चाहे वह कितनी भी अकलमंद हो या काबिलयतों से भरपूर हो। क्योंकि वह स्त्री जाति में जन्म लिया है तो उसे दोगुना दर्ज में रखने की कोशिश पुरुषवर्चस्ववादी सोच के चलते हर जगह विद्यमान हो जाती है। इसका कारण बनता है समाज में फैल कर आए जाने वाले इसी सोच व विचारधारा, जिसके चलते विचार व सोच में परिवर्तन आ जाती है। क्षमता व तुल्य राशि की बातें खोखली बनने लगती हैं। इन समस्याओं की ओर इशारा करके, अपने रचनाओं द्वारा उसे समाज के सामने पेश करके, उसके द्वारा सारे लोगों के दिलों दिमाग तक पहुंच कर उसके हल ढूंढने की कोशिश काफी सारे लेखक किए हुए हैं। उनमें प्रमुख कई लोग अपने बेहतरीन लेखनी द्वारा समाज में व्याप्त हर तरह के बुराईयों को मिटाने की कोशिश की है। जहां उन हाशिएकृतों की वाणी बनती है मीरा कांत की रचनाएं। यह उन स्त्री जनों के लिए, उनके लिए उठाई गई आवाज है, जो प्रचंड होकर समाज के हर एक को नए सिरे से सोचने के लिए मजबूर करती है। उन्हीं

के द्वारा लिखी गई एक प्रमुख रचना है 'नेपथ्य राग'। यह उसी रागिनी की कथा है जिसे हर युग से नेपथ्य में खड़ी होने के लिए बाध्य किया गया है। जो समाज रूपी रंगमंच के केंद्र में बीचों-बीच पहुंचने की जिजीविषा रखती है।

यह पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता आगे चलकर कई जिंदगियों और परिवारों को आंतरिक रूप से नष्ट-भ्रष्ट कर देती है, जिसका अंत एक संवेदनाशून्य जीवन और नीरस पारिवारिक माहौल के रूप में होता है। इससे उत्पन्न होने वाली मानसिक और सामाजिक परेशानियाँ स्त्रियों को उम्र भर निचोड़कर रख देती हैं, जहाँ संवेदना और सहानुभूति के लिए कोई स्थान नहीं बचता। इस गंभीर समस्या का समाधान खोजना, संपूर्ण मानव जाति और प्रबुद्ध समाज का एक अत्यंत महत्वपूर्ण दायित्व है।

हिन्दी साहित्य में अनेक रचनाकारों ने इस ज्वलंत समस्या पर अपनी कलम चलाई है, जिनमें प्रख्यात लेखिका 'मीरा कान्त' का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी प्रसिद्ध रचना 'नेपथ्य राग' इसी सामाजिक यथार्थ पर करारा प्रहार करती है। इस नाटक में हमें ऐसे सशक्त स्त्री पात्र देखने को मिलते हैं, जिन्हें ज्ञान, योग्यता और अपार क्षमता होने के बावजूद समाज रूपी रंगमंच के कोने यानी नेपथ्य में धकेल दिया जाता है। सर्वस्व और काबिलियत होने के बाद भी जब उन्हें उनका वाजिब हक नहीं मिलता, तो उन्हें कामकाजी जीवन से लेकर पारिवारिक जीवन तक अनेक मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ता है। उन्हें हर जगह दोहरा श्रम करना पड़ता है, फिर भी न तो उन्हें उचित सम्मान मिलता है और न ही बराबरी का स्थान। केवल स्त्री होने के कारण उन्हें दायम दर्जे पर रहने के लिए बाध्य किया जाता है। मीरा कान्त की यह रचना समाज की इसी विडंबना और स्त्री-संघर्ष की ओर एक सशक्त इशारा करती है।

इस नाटक के केंद्र में मौजूद है उपेक्षित एवं अस्वीकृत उन कई सारी महिलाओं की जीती जागती जिंदगियों की कहानी, जहाँ हुनर व काबिलियत के होते हुए भी वे नेपथ्य में ही खड़े रहने के लिए बाध्य हुई हैं। इस नाटक की ओर आते वक्त लेखिका कहती है, " 'नेपथ्य राग' उस रागिनी की कथा है जो युग-युगान्तर से समाजरूपी रंगमंच के केंद्र में आने के लिए संघर्षरत है। इसी संघर्ष को नाटक प्रस्तुत करता है इतिहास और पौराणिक आख्यान की देहरी पर प्रज्वलित एक दीपशिखा के माध्यम से, जिसे नाम मिला है खना।"¹

इस नाटक के केंद्र में खड़ी हैं 'मेधा' और उसकी 'माँ'। मेधा एक कामकाजी महिला है, जिसे अपने ही ऑफिस में अपनी सहकर्मियों द्वारा पूर्ण रूप से उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है, वहां सब लोग ना ही उसकी कुछ सुनती है, ना ही कोई मौका देता है, हमेशा उसे नीचा दिखाने की कोशिश में ही लगा रहता है। इसका सिर्फ एक ही कारण बनता है, वह है उसका नारी होना, बस लेडी ऑफिसर होना। वह कहती है, "लेडी ऑफिसर.....यही तो प्रॉब्लम है.....परंतु बर्दाश्त कहां कर पाते हैं मुझे वे लोग.....मेरे ज्यादातर फैसलों का विरोध करते हैं.....कमियाँ ढूंढते हैं मुझमें.....दे फील चैलेंज!"²

मेधा की माँ की जिंदगी में भी यही हाल हुआ था। यही समस्या उनकी जिंदगी को भी झकझोर कर रखी हुई थी। वह भी अपने इस लंबे जीवन में इस तरह की कई सारे समस्याओं का सामना कर चुकी है। वह भी इसी तरह के व्यवहारों का अनुभवी रह चुकी है। वह कहती है, "यह विरासत में मिला है क्या करें वे... मैं जब पहली बार मजिस्ट्रेट बनकर गयी थी तो मेरा चपरासी...मेरे सब-ऑर्डिनेट मुझे 'सर' कहकर बुलाते थे। उनके लिए मैडम नहीं सर थी।"³ सदियों से चली आ रही स्त्री की दारुण स्थिति का चित्रण यहां दृष्टव्य है।

मेधा जब पूर्ण रूप से थक हारकर सिमटने लगती है, तभी वह अपनी व्यथा अपनी माँ से कहती है। ऐसे

में उसकी मां उसे 'खना' की कहानी सुनाती हैं, पहली महिला ज्योतिषी की कहानी। जिसने अपनी विलक्षण बुद्धि व काबिलियत से 'मालव गणनायक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य' के नवरत्नों में भी जगह पा ली थी, फिर भी पुरुषवर्चस्ववादी समाज व सोच के कारण उसका सब कुछ नष्ट हो गया।

'खना' उज्जयिनी पहुंची थी मन में एक दृढ़ संकल्प व ध्येय लेकर, कि ज्योतिष की अमूर्त ज्ञान परंपरा को अपनी विलक्षण बुद्धि से हासिल करके अपने कठिन परिश्रम और तप से जिन्दगी के अंतर्चेतना व अंतःसंवेदनाओं को जानना। जब वह अपनी काबिलियत से ख्याति प्राप्त करने लगती है तो बाकि सब उससे जलने लगती हैं। यहां तक की उसके सालों की मेहनत तक को ज्योतिष्मति तैल की ताकत कहकर अनदेखा करने की साजिश में लग जाते हैं लोग। इसका कारण बनता है पुरुषवर्चस्ववादी सोच से पूरित समाज। इस सोच के प्रभाव से पढ़े-लिखे अक्लमंद लोग भी अछूते नहीं हैं। इसी का एक उत्तम उदाहरण है मालवगणनायक सम्राट की पत्नी 'महादेवी' एवं उनका कथन, "दासी कह रही थी कि आचार्य वराह मिहिर की पुत्रवधु खना ने अपने श्वसुर का बनाया हुआ तैल पी लिया था.....ज्योतिष्मति तैल।"⁴ इसी सारे प्रभाव व सोच के चलते साथ हो लेती है, स्वार्थपूर्ण संदेह। जो रिश्तों तक को खारिज कर देता है। जब चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य खना की काबिलियत देखकर उसे सभासद के रूप में चुनते हैं तो खुद उनके पत्नी उनसे प्रश्न कर बैठती है कि, "आपकी इस दुविधा का कारण आपका खना के प्रति छिपा हुआ आकर्षण तो नहीं।"⁵ यहां स्त्री हो कर भी पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता से भ्रष्ट हुए सोच का चित्रण मालवगणनायक सम्राट की पत्नी 'महादेवी' में दृष्टव्य है।

जब उसने वराह मिहिर का शिष्यत्व प्राप्त किया, तभी उसने अपनी जिंदगी व लक्ष में आधी जीत हासिल कर ली थी, लेकिन शीघ्र ही वह आचार्य वराह मिहिर की पुत्रवधू एवं पृथुयशस की पत्नी बन गई। इन सबने उसकी जिंदगी में कई सारे परिवर्तन ला खड़े किए। यहां तक कि उसे अपने अस्तित्व तक की चिंता होने लगती है, जिसके चलते वह कहती है, "पता नहीं काका.....कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि खना कहीं खोती जा रही है।"⁶

इसी नाटक में पुरुषसत्तावादी सोच से ग्रसित मानसिकता से भ्रष्ट हुए समाज व जनता का चित्रण दृष्टव्य है। उसी के साथ ही इसी भ्रष्ट मानसिकता के चंगुल में न आनेवाले पुरुष पात्रों का चित्रण भी है, उनमें प्रमुख है चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य। जो विकासोन्मुख विचार रखनेवाला और लीक से हटकर कुछ करने की क्षमता रखने वाले पात्र हैं। जिन्होंने खना को सभासद के रूप में चुना, नवरत्नों का हिस्सा बनाना चाहा। ताकि उसके माध्यम से समाज एवं दुनिया में एक नया सकारात्मक बदलाव लाया जा सके।

उनका विचार पूर्ण रूप से लिंग पर आधारित न होकर सिर्फ बौद्धिक विचार पर ही आधारित था, लेकिन नवरत्न के ज्यादातर लोग इसे लिंग-भेदवादी विचारधारा के रूप में ही देखा-समझ था। पुरुष सत्तात्मक समाज के नकारात्मक सोच व विचारों के आदी हुए उन पत्थर दिलों के लिए यह सब बस खोखली बातें हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य भी यह जानते थे और उनका यह कथन इसका पक्का सबूत भी है कि, "निर्णय अभूतपूर्व तो है ही.....विवाहित ज्ञानमार्गी स्त्री को सभासद के रूप में न जाने कौन कितना स्वीकार करेगा।"⁷ उनका मानना था कि नवरत्न इस लिंग पर आधारित न होकर सिर्फ बौद्धिक विचार पर आधारित इस सकारात्मक बदलाव को सहर्ष स्वीकारेंगे लेकिन नवरत्नों के बीच भी कुछ छोटे सिक्के मौजूद थे। पहले खना के श्वसुर व गुरु वराह मिहिर भी इसके खिलाफ नहीं थे, बाद में उन्होंने भी सर्वसम्मति की आड़ में अपनी राय बदल ली, "इस संदर्भ में उपस्थित रत्नों के मत में ही मेरा मत है।"⁸ स्त्री जातकों की हृदय से भूरि-भूरि प्रशंसा लिखने वाले,

‘बृहत-जातक’ ग्रंथ का प्रणेता आचार्य वराह मिहिर सर्वसम्मति की ओट में स्त्री के प्रश्न को लेकर बहुत साधारण से हो गए, “स्त्री जातकों की हृदय से भूरि-भूरि प्रशंसा लिखने वाला मैं.....‘बृहत-जातक’ ग्रंथ का प्रणेता आचार्य वराह मिहिर आज जीवन में स्त्री के प्रश्न को लेकर बहुत साधारण हो गया है। मैंने सर्वसम्मति की ओट में अपने व्यक्तिगत अंत पर अवगुण्टन डालने की चेष्टा की.....उसे छिपाया।”⁹

अंत में नवरत्नों को राजसभा में खना के प्रवेश एवं नवरत्नों में उनकी नियुक्ति पर कुछ व्यवस्थाओं के चलते हामी भरनी ही पड़ा, परंतु उन्हें वहाँ जिह्वा विहीन स्त्री ही सभासद के रूप में स्वीकार्य थी, और यह संदेश खना तक पहुंचाने का काम वराह मिहिर को ही सौंप दिया गया, “उनका कहना है कि यदि स्त्री सभासद बने तो पहले उसकी जीभ काट ली जाए।”¹⁰

यह सब सुनकर खना तड़प उठती है। उसके सामने अंधेरा छाने लगता है, वह अपने आप से ही कह उठती है कि, “स्त्री सभासद.....पिताश्री, आप तो व्यर्थ ही चिंतित है। श्रावण क्या यह तो आषाढ़ से भी पहले के मेघ है। बरसेंगे नहीं। आषाढ़ अभी नहीं आया.....नहीं आया..... आषाढ़ आने में कई संवत्सर बीत जाएंगे.....कई युग.....यह नेपथ्य है.....इसे मंच तक पहुँचने में समय लगेगा.....कल्पांत.....कई युग.....।”¹¹

खना के साथ क्या हुआ, यह कोई नहीं जानता, लेकिन आज के वक्त में भी कई सारी खना रूपी स्त्रियां जीवन अपना वजूद खोकर अपनी तमाम प्रतिभाओं, योग्यताओं और हुनर के बावजूद भी सदियों से समाज के हाशिए पर जीवन जीने के लिए विवश हो रही हैं।

यहां दादी पढ़ी-लिखी व कामकाजी लग रही हैं, वे खना की कहानी से परिचित भी हैं। दादी से ही मेधा की मां खना की कहानी सुनती है, मेधा की मां से मेधा, इस तरह यह चक्र घूमता चला आ रहा है। यह कहानी स्त्री जीवन में मौजूद समस्याओं को दर्शाने वाली न होकर पुरुषसत्तात्मक विचारों को बदलने के लिए तैयार की गयी कहानी है, और इसी बदलाव की एक सशक्त कोशिश है, ‘मीरा कान्त’ द्वारा लिखित नाटक ‘नेपथ्य राग’। डॉ. जयदेव तनेजा ने ‘नेपथ्य राग’ नाटक के बारे में कहा है कि “यह एक संयोग भी हो सकता है, पर स्त्री मुक्ति का मुद्दा एक ज्वलंत मुद्दा तो है ही। खास तौर पर ‘नेपथ्य राग’ नाटक इसे इतिहास, वर्तमान और भविष्य तक विस्तार देता है।”¹²

स्त्री जीवन में घटित होने वाली समस्याओं को मिटाने के लिए पुरुष सत्तात्मक विचारधारा को ही पहले बदलना होगा। इसके लिए उनकी सोच को बदलना पड़ेगा, यह तभी संभव होगा, जब सही शिक्षा प्राप्त हो। इस संदर्भ में मीरा कान्त का कथन है कि, “मैं कहती हूँ कि एक पुरुष को शिक्षित करेंगे, तब परिवार शिक्षित होगा। मगर पुरुषों को शिक्षित करना होगा समतामूलक नई मूल्य व्यवस्था में।”¹³

स्त्री जीवन में मौजूद सारी समस्याओं का हल शुरू होता है पुरुषसत्तात्मक विचारधारा से ग्रसित मानसिकता से। जिसे सही शिक्षा और मार्गदर्शन से बदला भी जा सकता है। इसकी शुरुआत हर किसी को अपने घर से करनी पड़ेगी, जिसके बाद ही समाज में बदलाव परिलक्षित हो पाएगा। कभी-कभार खुद स्त्री ही स्त्री की दुश्मन बन जाती है। यहां इसके एक उदाहरण के रूप में मालवगणनायक सम्राट की पत्नी ‘महादेवी’ भी मौजूद है। इसके पीछे भी पुरुष सत्तात्मक सोच व विचारधारा की अनकही वाणी व अनछुए हाथ मौजूद हैं। यहां यह रचना सिर्फ पढ़ने या देखने के लिए ही न होकर समाज के सामने रखा हुआ सच्चा आईना है। यहां यह रचना सोए हुए समाज को झकझोर कर उसे नए सिरे से सोचने के लिए मजबूर करती है।

स्त्री जीवन में मौजूद समस्याओं को, विषम स्थितियों को, कठिनाइयों को मिटाने के लिए नए कानून बनाने

या एक दिन महिला दिवस मना लेने से काम नहीं चलेगा। उसके लिए समाज की सोच को, विचारधारा को बदलना होगा। यह बदलाव बाहर चौराहों या संसद से नहीं, बल्कि हमारे अपने घरों की चारदीवारी से शुरू होना चाहिए। जब हम अपने बेटों को बचपन से यह सिखाना शुरू करेंगे कि घर का काम सिर्फ माँ, बहन या पत्नी की जिम्मेदारी नहीं है, तब जाकर समानता की असली नींव पड़ेगी।

यही वह असल बदलाव है जिसकी ओर मीरा कान्त का नाटक 'नेपथ्य राग' भी इशारा करता है। यह नाटक सिर्फ एक कहानी नहीं है, बल्कि हमारे इस समाज से एक सीधा सवाल है। यह हमें सोचने पर मजबूर करता है कि आखिर कब तक हम अपनी आधी आबादी को श्नेपथ्यश यानी पर्दे के पीछे के अंधेरे में धकेलकर एक उजले और सभ्य समाज की कल्पना करते रहेंगे, सच्चाई तो यह है कि जब तक समाज में औरत को पुरुष के बराबर का साथी नहीं माना जाएगा, तब तक कोई भी देश या समाज सच्ची तरक्की नहीं कर सकता।

बदलाव की यह शुरुआत हमें खुद से करनी होगी, अपने घर के माहौल से, अपनी रोजमर्रा की बातचीत से और अपने नजरिए से। जिस दिन हम बेटियों को पराया धन और बहुओं को सिर्फ घर संभालने वाली समझना बंद कर देंगे, जिस दिन एक लड़की को रात के अंधेरे में सड़क पर चलने से डर नहीं लगेगा, और जिस दिन उसकी ना को पूरे सम्मान के साथ सुना जाएगा, सही मायनों में महिला सशक्तिकरण उसी दिन होगा। जब तक यह सोच नहीं बदलती, तब तक कोई भी कागजी कानून औरतों के हिस्से का आसमान उन्हें नहीं लौटा सकता। जिस दिन औरतें बिना किसी डर या झिझक के, सदियों से चले आ रहे इस श्नेपथ्यश के अंधेरे से बाहर निकलेंगी और अपनी जिंदगी के मंच पर पूरे आत्मविश्वास के साथ बराबरी से खड़ी होंगी, उस दिन सिर्फ उनकी जिंदगी ही नहीं बदलेगी, बल्कि यह पूरी दुनिया सच में एक बेहतर, खूबसूरत और बराबरी वाली जगह बन जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ :

1. कान्त, मीरा — नेपथ्य राग, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली (2015), पृ. सं. 7
2. वही, पृ. सं. 62
3. वही, पृ. सं. 63
4. वही, पृ. सं. 42
5. वही, पृ. सं. 49
6. वही, पृ. सं. 51
7. वही, पृ. सं. 49
8. वही, पृ. सं. 57
9. वही, पृ. सं. 59
10. वही, पृ. सं. 61
11. वही, पृ. सं. 61
12. वही, पृ. सं. 123
13. चौगले, विद्या शामराव — मीरा कान्त के नाटकों में पात्र निरूपण — पृ. सं. 12

भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकज्ञान और आधुनिक सतत विकास : आत्मनिर्भर एवं विकसित भारत 2047 की दिशा में एक बहुविषयक अध्ययन

डॉ. पूनम आर्या

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)

श्री राम सिंह धौनी राजकीय महाविद्यालय, जैती, अल्मोड़ा, उत्तराखंड।

सारांश :

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध ज्ञान-संपदाओं में से एक है, जिसमें लोकज्ञान, पर्यावरणीय चेतना, कृषि विज्ञान, जल संरक्षण, आयुर्वेद, योग, दर्शन तथा सामाजिक मूल्यों का व्यापक समावेश है। यह ज्ञान केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करने वाली जीवंत परंपरा भी है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन, सामाजिक असंतुलन तथा सांस्कृतिक विघटन जैसी वैश्विक समस्याओं के संदर्भ में भारतीय लोकज्ञान और पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों की प्रासंगिकता पुनः स्थापित हो रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 तथा भारतीय ज्ञान प्रणाली भी शिक्षा, अनुसंधान और नवाचार में भारतीय ज्ञान परंपरा के समावेशन पर विशेष बल देती है। यह शोध-पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत लोकज्ञान की अवधारणा, उसके वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक आधार तथा आधुनिक सतत विकास के साथ उसके अंतर्संबंध का बहुविषयक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें पारंपरिक जल प्रबंधन, जैविक कृषि, औषधीय वनस्पतियों का ज्ञान, सामुदायिक जीवन-मूल्य तथा प्रकृति-केंद्रित जीवनशैली को विकसित भारत-2047 की परिकल्पना से जोड़ते हुए विवेचित किया गया है। अध्ययन गुणात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है, जिसमें प्राचीन भारतीय ग्रंथों, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, भारतीय ज्ञान प्रणाली से संबंधित दस्तावेजों तथा समकालीन शोध-साहित्य का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन का निष्कर्ष यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय लोकज्ञान केवल सांस्कृतिक विरासत नहीं, बल्कि सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समरसता तथा आत्मनिर्भर भारत के निर्माण का प्रभावी आधार है। यदि इस ज्ञान परंपरा को आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ समन्वित कर शिक्षा, अनुसंधान और नीति-निर्माण में समुचित स्थान दिया जाए, तो विकसित भारत-2047 के लक्ष्य की प्राप्ति अधिक सुदृढ़ एवं टिकाऊ आधार पर संभव होगी। सतत विकास का मूल उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के हितों एवं प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा सुनिश्चित करना है। भारतीय ज्ञान परंपरा में

निहित लोकज्ञान इस सिद्धांत का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करता है। भारतीय समाज में जल, वन, भूमि तथा जैव विविधता के संरक्षण से संबंधित अनेक पारंपरिक व्यवस्थाएँ विकसित हुईं, जिनका आधार प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व एवं संसाधनों का संतुलित उपयोग रहा है। पारंपरिक जलस्रोतों का संरक्षण, वर्षा जल संचयन, मिश्रित खेती, जैविक कृषि, बीज संरक्षण तथा सामुदायिक वन प्रबंधन जैसी व्यवस्थाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय लोकज्ञान में सतत विकास की अवधारणा प्राचीन काल से विद्यमान रही है। आधुनिक पर्यावरणीय संकटों के समाधान में इन पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों की उपयोगिता आज वैश्विक स्तर पर स्वीकार की जा रही है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, भूमि क्षरण, जल संकट तथा जैव विविधता के ह्रास जैसी समस्याओं ने विकास की पारंपरिक अवधारणाओं पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता उत्पन्न की है। ऐसी स्थिति में भारतीय लोकज्ञान आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकल्प नहीं, बल्कि उसका प्रभावी पूरक सिद्ध हो सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भी भारतीय ज्ञान प्रणाली को शिक्षा, अनुसंधान एवं नवाचार से जोड़ने पर बल देती है, जिससे स्थानीय ज्ञान एवं आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समन्वय स्थापित किया जा सके। यदि लोकज्ञान को वैज्ञानिक सत्यापन के साथ नीति-निर्माण, शिक्षा, कृषि, पर्यावरण संरक्षण तथा ग्रामीण विकास की योजनाओं में समुचित स्थान दिया जाए, तो यह सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति तथा विकसित भारत-2047 के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

प्रमुख शब्द :

भारतीय ज्ञान परंपरा, लोकज्ञान, सतत विकास, आत्मनिर्भर भारत, विकसित भारत 2047, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS), पर्यावरण संरक्षण, पारंपरिक ज्ञान।

प्रस्तावना -

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध ज्ञान-परंपराओं में से एक है, जिसने मानव जीवन के बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक विकास को एक समग्र दृष्टि प्रदान की है। इस परंपरा का मूल उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि व्यक्ति, समाज और प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करना तथा लोककल्याण की भावना को सुदृढ़ करना रहा है। वेद, उपनिषद, आयुर्वेद, योग, अर्थशास्त्र तथा लोकजीवन में निहित अनुभवजन्य ज्ञान भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख आधार हैं।⁽¹⁾ भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण आयाम लोकज्ञान है, जो स्थानीय समुदायों के दीर्घकालीन अनुभव, पर्यावरणीय समझ, कृषि-पद्धतियों, जल संरक्षण, लोकचिकित्सा तथा सामाजिक व्यवहार में परिलक्षित होता है। वर्तमान समय में जब विश्व जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय असंतुलन तथा सतत विकास जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब भारतीय लोकज्ञान की उपयोगिता पुनः स्थापित हो रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने भी भारतीय ज्ञान प्रणाली को शिक्षा और अनुसंधान का अभिन्न अंग बनाने पर बल दिया है, जिससे स्पष्ट होता है कि विकसित भारत-2047 की परिकल्पना में भारतीय ज्ञान परंपरा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।⁽²⁾

इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोध-पत्र भारतीय लोकज्ञान और आधुनिक सतत विकास के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि पारंपरिक ज्ञान आधुनिक विकास मॉडल का प्रभावी पूरक बन सकता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा : अवधारणा एवं स्वरूप :

भारतीय ज्ञान परंपरा से आशय उस समृद्ध बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत से है, जो प्राचीन

काल से निरंतर गुरु-शिष्य परंपरा, लोकजीवन, शास्त्रीय ग्रंथों तथा व्यवहारिक अनुभवों के माध्यम से विकसित होती रही है। यह परंपरा केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र 'शिक्षा, दर्शन, चिकित्सा, कृषि, पर्यावरण, गणित, खगोल विज्ञान, कला, साहित्य तथा सामाजिक व्यवस्था' को समग्र दृष्टि से देखने की प्रेरणा देती है। भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल आधार 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी मान्यताएँ हैं, जिनमें समस्त मानवता एवं प्रकृति के कल्याण की भावना निहित है। भारतीय मनीषियों ने ज्ञान को केवल बौद्धिक उपलब्धि न मानकर आत्मविकास, नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा लोकमंगल का साधन माना है। भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप बहुआयामी एवं समन्वयवादी है। इसमें वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध एवं जैन साहित्य, आयुर्वेद, योग, अर्थशास्त्र तथा लोकपरंपराओं का समान रूप से योगदान रहा है। इन स्रोतों में मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन, प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग, सामुदायिक जीवन, आत्मनिर्भरता तथा सतत विकास की ऐसी अवधारणाएँ निहित हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने भी भारतीय ज्ञान प्रणाली को समकालीन शिक्षा एवं अनुसंधान से जोड़ने पर बल दिया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि विकसित भारत-2047 के निर्माण की एक सशक्त वैचारिक एवं व्यावहारिक आधारशिला भी है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकज्ञान : अर्थ एवं स्वरूप :

भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकज्ञान से तात्पर्य उस ज्ञान से है, जो किसी समाज अथवा समुदाय द्वारा अपने दीर्घकालीन अनुभव, प्रकृति के साथ निरंतर संपर्क तथा सांस्कृतिक परंपराओं के माध्यम से अर्जित किया जाता है। यह ज्ञान किसी औपचारिक शिक्षा व्यवस्था का परिणाम न होकर लोकजीवन की आवश्यकताओं, पर्यावरणीय परिस्थितियों तथा व्यावहारिक अनुभवों से विकसित होता है। भारतीय समाज में कृषि, जल संरक्षण, पशुपालन, लोकचिकित्सा, हस्तशिल्प, लोककला तथा पर्व-त्योहारों से संबंधित अनेक परंपराएँ लोकज्ञान का अभिन्न अंग हैं। यही कारण है कि लोकज्ञान को भारतीय ज्ञान परंपरा की जीवंत एवं व्यवहारिक धरोहर माना जाता है, जिसने विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक जीवन को आत्मनिर्भर एवं संतुलित बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।⁽³⁾

भारतीय लोकज्ञान की सबसे बड़ी विशेषता उसकी स्थानीयता, व्यावहारिकता, सामूहिकता तथा सततता है। यह ज्ञान प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, जैव विविधता के संवर्धन, जल एवं भूमि के संतुलित उपयोग तथा सामुदायिक सहभागिता पर आधारित है। उत्तराखंड की नौला-धारा परंपरा, राजस्थान की जोहड़ जल संरक्षण प्रणाली, पूर्वोत्तर भारत की पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ तथा विभिन्न जनजातीय समुदायों की औषधीय ज्ञान परंपराएँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय लोकज्ञान केवल सांस्कृतिक विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान समय की पर्यावरणीय एवं विकास संबंधी चुनौतियों के समाधान का भी प्रभावी माध्यम है। इसी कारण आज भारतीय ज्ञान प्रणाली के अंतर्गत लोकज्ञान के संरक्षण, प्रलेखन तथा वैज्ञानिक पुनर्मूल्यांकन पर विशेष बल दिया जा रहा है।⁽⁴⁾

लोकज्ञान और आधुनिक सतत विकसित भारत-2047 के संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता :

वर्ष 2047 तक भारत को एक विकसित, आत्मनिर्भर एवं ज्ञान-आधारित राष्ट्र के रूप में स्थापित करने की परिकल्पना केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य सांस्कृतिक विरासत, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक समरसता तथा पर्यावरणीय संतुलन पर आधारित विकास मॉडल का निर्माण करना भी है। भारतीय ज्ञान परंपरा इस लक्ष्य की प्राप्ति में एक सशक्त आधार प्रदान करती है, क्योंकि इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, जल प्रबंधन, पर्यावरण संरक्षण, नैतिक जीवन-मूल्यों तथा सामुदायिक सहभागिता का समन्वित स्वरूप

विद्यमान है। भारतीय ज्ञान प्रणाली व्यक्ति को केवल कौशलयुक्त नहीं, बल्कि उत्तरदायी, नैतिक एवं प्रकृति के प्रति संवेदनशील नागरिक बनाने पर बल देती है। यही कारण है कि वर्तमान समय में भारतीय ज्ञान परंपरा को शिक्षा, अनुसंधान तथा नवाचार के साथ जोड़ने के प्रयास निरंतर बढ़ रहे हैं।⁽⁶⁾

विकसित भारत-2047 की संकल्पना को साकार करने के लिए आवश्यक है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित लोकज्ञान, पारंपरिक तकनीकों एवं सांस्कृतिक मूल्यों का आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ समन्वय स्थापित किया जाए। स्थानीय संसाधनों पर आधारित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था, पर्यावरण-अनुकूल जीवनशैली, पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ, औषधीय ज्ञान तथा सामुदायिक विकास के भारतीय मॉडल सतत एवं समावेशी विकास की दिशा में प्रभावी योगदान दे सकते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भी भारतीय ज्ञान प्रणाली को उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान का अभिन्न अंग बनाकर नवाचार, उद्यमिता तथा राष्ट्र निर्माण को सुदृढ़ करने पर बल देती है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा अतीत की धरोहर मात्र नहीं, बल्कि विकसित भारत-2047 की वैचारिक, सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक आधारशिला है।⁽⁶⁾

निष्कर्ष :

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की सांस्कृतिक एवं बौद्धिक धरोहर नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के विकास की एक सशक्त आधारशिला भी है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित लोकज्ञान प्रकृति के साथ संतुलित सह-अस्तित्व, संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग, सामुदायिक सहभागिता तथा नैतिक जीवन-मूल्यों पर आधारित है। यही विशेषताएँ इसे आधुनिक सतत विकास की अवधारणा के साथ स्वाभाविक रूप से जोड़ती हैं। वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता के क्षरण तथा सामाजिक असंतुलन जैसी चुनौतियों के समाधान के लिए भारतीय लोकज्ञान का वैज्ञानिक पुनर्पाठ और व्यावहारिक उपयोग अत्यंत आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने भारतीय ज्ञान प्रणाली को शिक्षा, अनुसंधान एवं नवाचार का अभिन्न अंग बनाकर इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल की है। यदि भारतीय लोकज्ञान, पारंपरिक तकनीकों तथा स्थानीय अनुभवों का आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ समन्वय स्थापित किया जाए, तो विकसित भारत-2047 की परिकल्पना को अधिक सुदृढ़ एवं स्थायी आधार प्राप्त हो सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल सांस्कृतिक विरासत के रूप में न देखकर उसे समकालीन शिक्षा, नीति-निर्माण, पर्यावरण संरक्षण तथा ग्रामीण विकास की योजनाओं में प्रभावी रूप से समाहित किया जाए। यही प्रयास आत्मनिर्भर, समावेशी एवं सतत भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

संदर्भ सूची :

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (1968). भारतीय दर्शन (भाग-1). नई दिल्ली : राजपाल एंड संस, पृ. 18-32
2. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020. नई दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय, अध्याय-4, पृ. 22-24
3. मिश्र, विद्यानिवास. (2008). भारतीय लोकजीवन और संस्कृति. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. 35-49
4. कपिल तिवारी. (2013). लोकज्ञान और भारतीय परंपरा. भोपाल : आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, पृ. 52-68
5. भारत सरकार. (2023). विकसित भारत@2047 : विजन दस्तावेज. नई दिल्ली : नीति आयोग, पृ. 12-20
6. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020. नई दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय, अध्याय-4, पृ. 22-24

भगवद्गीता के अनुसार भक्तियोग : तनावपूर्ण आधुनिक जीवन के लिए एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण

Vandana

Research Scholar, Yoga Department

Asian International University, Imphal West, Manipur, India

सारांश :

आधुनिक जीवन तीव्र गति, प्रतिस्पर्धा, कार्यभार, पारिवारिक एवं सामाजिक अपेक्षाओं, आर्थिक असुरक्षा तथा भविष्य के प्रति अनिश्चितता से प्रभावित है। इन परिस्थितियों के कारण व्यक्ति में तनाव, चिंता, भावनात्मक अस्थिरता, असंतोष और मानसिक अशांति जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान तनाव-प्रबंधन के लिए अनेक व्यवहारात्मक एवं मनोवैज्ञानिक उपाय प्रस्तुत करता है, किंतु व्यक्ति के आंतरिक अर्थ-बोध, अस्तित्वगत प्रश्नों और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता बनी हुई है।

भगवद्गीता भारतीय दार्शनिक एवं आध्यात्मिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें मानव जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग और भक्तियोग सहित विभिन्न मार्गों का विवेचन किया गया है। विशेष रूप से भक्तियोग व्यक्ति को ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा, समर्पण, अनासक्ति, करुणा, संतोष तथा समत्व के माध्यम से आंतरिक शांति की ओर ले जाने वाला मार्ग प्रस्तुत करता है। भगवद्गीता में वर्णित भक्त के गुण 'अद्वेष्टा, मैत्री, करुणा, निर्ममता, निरहंकारिता, सुख-दुःख में समभाव, क्षमा, संतोष तथा आत्मसंयम' आधुनिक संदर्भ में भावनात्मक संतुलन एवं तनाव-सहनशीलता के महत्वपूर्ण आधार माने जा सकते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भगवद्गीता में प्रतिपादित भक्तियोग के प्रमुख सिद्धांतों का विश्लेषण करना तथा तनावपूर्ण आधुनिक जीवन में उनकी प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है। अध्ययन के लिए साहित्य-समीक्षा एवं आधुनिक शोधों के विश्लेषण की पद्धति अपनाई गई है। प्राथमिक स्रोत के रूप में भगवद्गीता तथा द्वितीयक स्रोतों के रूप में आधुनिक शोध-पत्रों, मनोवैज्ञानिक अध्ययनों और आध्यात्मिकता से संबंधित वैज्ञानिक साहित्य का अध्ययन किया गया है। विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भक्तियोग को केवल धार्मिक आस्था के रूप में न देखकर भावनात्मक संतुलन, स्वीकार्यता, समर्पण, अनासक्ति, सकारात्मक सामाजिक व्यवहार तथा आंतरिक अर्थ-बोध को विकसित करने वाली आध्यात्मिक जीवन-पद्धति के रूप में समझा जा सकता है। तथापि, भक्तियोग को आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य उपचार का विकल्प न मानकर एक सहायक आध्यात्मिक दृष्टिकोण के रूप में

देखना अधिक उपयुक्त है।

मुख्य शब्द : भगवद्गीता, भक्तियोग, तनाव, मानसिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिकता, समत्व, समर्पण, अनासक्ति, भावनात्मक संतुलन।

प्रस्तावना :

वर्तमान युग को वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति का युग माना जाता है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने जीवन को अनेक स्तरों पर सुविधाजनक बनाया है, किंतु इसके साथ व्यक्ति के जीवन में मानसिक दबाव और तनाव के नए आयाम भी उत्पन्न हुए हैं। कार्यस्थल की प्रतिस्पर्धा, समय का अभाव, आर्थिक दबाव, पारिवारिक अपेक्षाएँ, सामाजिक तुलना तथा भविष्य के प्रति अनिश्चितता व्यक्ति के मानसिक संतुलन को प्रभावित कर सकती हैं।

तनाव केवल बाहरी परिस्थितियों का परिणाम नहीं है, बल्कि व्यक्ति किसी परिस्थिति को किस प्रकार ग्रहण करता है और उसके प्रति किस प्रकार की मानसिक एवं भावनात्मक प्रतिक्रिया देता है, यह भी महत्वपूर्ण है। भारतीय दर्शन व्यक्ति के भीतर स्थित मन, बुद्धि, अहंकार, इच्छाओं तथा आसक्ति की भूमिका पर विशेष बल देता है।

भगवद्गीता का प्रारंभ ही एक गंभीर मानसिक एवं नैतिक संकट से होता है। युद्धभूमि में अर्जुन अपने कर्तव्य, संबंधों, परिणामों और भविष्य को लेकर मानसिक द्वंद्व में पड़ जाता है। उसकी स्थिति आधुनिक व्यक्ति के तनाव, निर्णय-असमर्थता, भय और भावनात्मक संघर्ष के संदर्भ में विचारणीय है। श्रीकृष्ण अर्जुन के संकट का समाधान केवल बाहरी परिस्थिति के स्तर पर नहीं करते, बल्कि उसे व्यापक दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

इसी संदर्भ में भक्तियोग महत्वपूर्ण हो जाता है। यह व्यक्ति को अहं-केंद्रित नियंत्रण-बोध से आगे बढ़कर उच्चतर सत्ता के प्रति विश्वास, श्रद्धा और समर्पण की दिशा प्रदान करता है।

शोध की आवश्यकता :

आधुनिक तनाव-प्रबंधन में ध्यान, योग, श्वास-अभ्यास, विश्रांति तथा संज्ञानात्मक एवं व्यवहारात्मक उपायों का व्यापक अध्ययन हुआ है। इसके बावजूद व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवन, अर्थ-बोध और उच्चतर सत्ता के साथ उसके संबंध को तनाव-प्रबंधन के संदर्भ में पर्याप्त रूप से समझने की आवश्यकता बनी हुई है।

योग एवं आध्यात्मिकता से संबंधित आधुनिक समीक्षाओं से संकेत मिलता है कि योग-अभ्यास और आध्यात्मिक अनुभव मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित सकारात्मक परिणामों के साथ जुड़े हो सकते हैं। इसी प्रकार हालिया शोध में भगवद्गीता एवं योग आधारित हस्तक्षेपों का मनोवैज्ञानिक तनाव एवं चिंता पर अध्ययन किया गया है (Das et al., 2026)।

इसलिए यह आवश्यक है कि भगवद्गीता के भक्तियोग को केवल धार्मिक अवधारणा के रूप में न देखकर आधुनिक तनावपूर्ण जीवन के संदर्भ में एक आध्यात्मिक संसाधन के रूप में समझा जाए।

शोध के उद्देश्य :

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. भगवद्गीता में भक्तियोग की अवधारणा का अध्ययन करना।
2. भगवद्गीता में वर्णित भक्त के प्रमुख गुणों का विश्लेषण करना।
3. तनाव एवं मानसिक अशांति के संदर्भ में भक्तियोग की प्रासंगिकता स्पष्ट करना।
4. आधुनिक शोधों में आध्यात्मिकता, योग, भगवद्गीता तथा मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित निष्कर्षों का

विश्लेषण करना।

5. आधुनिक जीवन के लिए भक्तियोग आधारित आध्यात्मिक समाधान की संभावनाओं को प्रस्तुत करना।
6. यह स्पष्ट करना कि भक्तियोग आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के साथ किस प्रकार सहायक दृष्टिकोण के रूप में प्रयुक्त हो सकता है।

शोध प्रश्न :

1. भगवद्गीता के अनुसार भक्तियोग का स्वरूप क्या है?
2. भक्त के कौन-से गुण मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन में सहायक हो सकते हैं?
3. भक्तियोग आधुनिक तनावपूर्ण जीवन के लिए किस प्रकार प्रासंगिक है?
4. आधुनिक शोध आध्यात्मिकता, योग एवं भगवद्गीता के मानसिक स्वास्थ्य संबंधी प्रभावों के बारे में क्या संकेत देते हैं?
5. भक्तियोग को आधुनिक जीवन में किस प्रकार व्यावहारिक बनाया जा सकता है?

शोध-पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक साहित्य—समीक्षा एवं आधुनिक शोधों के विश्लेषण पर आधारित है। अध्ययन में भगवद्गीता के चयनित श्लोकों एवं आधुनिक शोध—साहित्य का विषयगत विश्लेषण किया गया है।

प्राथमिक स्रोत :

प्राथमिक स्रोत के रूप में भगवद्गीता के चयनित अध्यायों एवं श्लोकों का अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से अध्याय 9, 12 तथा 18 में वर्णित भक्तियोग, समर्पण, समत्व, अनासक्ति एवं कर्मफल—त्याग से संबंधित शिक्षाओं को अध्ययन का आधार बनाया गया है।

द्वितीयक स्रोत :

द्वितीयक स्रोतों में शोध—पत्र, शोध—समीक्षाएँ, मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा योग और आध्यात्मिकता से संबंधित आधुनिक वैज्ञानिक साहित्य सम्मिलित किया गया है।

विश्लेषण प्रक्रिया :

साहित्य से प्राप्त सामग्री को निम्नलिखित विषयगत श्रेणियों में व्यवस्थित किया गया :

- तनाव एवं मानसिक अशांति
- ईश्वर—समर्पण
- कर्मफल—त्याग
- अनासक्ति
- समत्व
- करुणा एवं मैत्री
- आत्मसंयम
- संतोष
- आध्यात्मिक अर्थ—बोध
- आधुनिक तनाव—प्रबंधन

इसके पश्चात भगवद्गीता की शिक्षाओं तथा आधुनिक शोधों में प्राप्त निष्कर्षों के बीच विषयगत संबंधों

का विश्लेषण किया गया।

भगवद्गीता में भक्तियोग की अवधारणा :

भगवद्गीता का द्वादश अध्याय भक्तियोग के नाम से जाना जाता है। इसमें अर्जुन साकार एवं निराकार उपासना के संबंध में प्रश्न करता है। श्रीकृष्ण भक्तियोग को एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक मार्ग के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

भगवद्गीता (12.8) में मन और बुद्धि को ईश्वर में स्थिर करने की शिक्षा दी गई है। यदि व्यक्ति के लिए यह निरंतर संभव न हो तो अभ्यास, ईश्वर के लिए कर्म तथा अंततः कर्मफल-त्याग की क्रमिक साधना बताई गई है। अध्याय 12 के श्लोक 12 में कर्मफल-त्याग के पश्चात शांति की प्राप्ति का उल्लेख मिलता है (Bhagavad Gita, 12.12)।

यह सिद्धांत आधुनिक व्यक्ति के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि अपेक्षित परिणाम और वास्तविक परिणाम के बीच का अंतर मानसिक तनाव उत्पन्न कर सकता है। व्यक्ति जब अपने प्रयास के साथ-साथ परिणाम को भी पूर्णतः नियंत्रित करने का प्रयास करता है, तब मानसिक दबाव बढ़ सकता है।

भक्तियोग व्यक्ति को कर्म से पलायन नहीं सिखाता, बल्कि कर्म करते हुए उसके परिणाम के प्रति अत्यधिक आसक्ति को कम करने की दिशा प्रदान करता है।

भक्तियोग और तनाव :

ईश्वर में मन का स्थिरीकरण :

आधुनिक जीवन में व्यक्ति का मन अनेक दिशाओं में लगातार सक्रिय रहता है। कार्य, परिवार, सामाजिक अपेक्षाएँ तथा सूचना-संचार के साधन मानसिक एकाग्रता को प्रभावित कर सकते हैं।

भगवद्गीता मन को ईश्वर में स्थिर करने की शिक्षा देती है। इस दृष्टिकोण में भक्ति मन को एक उच्चतर एवं अर्थपूर्ण केंद्र प्रदान करती है। नियमित ईश्वर-स्मरण, प्रार्थना, नाम-जप तथा ध्यान मन को बाहरी विक्षेपों से हटाकर आंतरिक स्थिरता की ओर ले जाने में सहायक हो सकते हैं।

कर्मफल-त्याग और परिणाम की चिंता :

व्यक्ति के तनाव का एक महत्वपूर्ण कारण परिणाम को लेकर अत्यधिक चिंता हो सकती है। भगवद्गीता कर्म करने तथा उसके फल के प्रति अनासक्ति का सिद्धांत प्रस्तुत करती है।

भक्तियोग में कर्म को ईश्वर को समर्पित करने की भावना व्यक्ति के अहंकार और अत्यधिक नियंत्रण-बोध को कम करने में सहायक हो सकती है।

इस सिद्धांत को आधुनिक जीवन में इस प्रकार समझा जा सकता है :

प्रयास पर ध्यान ↓ परिणाम की स्वीकार्यता ↓ मानसिक दबाव में कमी ↓ आंतरिक संतुलन।

समत्व और भावनात्मक संतुलन :

भगवद्गीता में भक्त के ऐसे गुणों का वर्णन मिलता है जो भावनात्मक स्थिरता से जुड़े हैं। अध्याय 12 के श्लोक 13-14 में भक्त को सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीपूर्ण और करुणामय, अहंकार से मुक्त, सुख-दुःख में सम, क्षमाशील, संतुष्ट तथा आत्मसंयमी बताया गया है (Bhagavad Gita, 12.13-12.14)।

ये गुण व्यक्ति को प्रतिकूल परिस्थितियों में भावनात्मक संतुलन बनाए रखने में सहायता कर सकते हैं।

करुणा, मैत्री और सामाजिक तनाव :

आधुनिक जीवन में सामाजिक तुलना, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या और संबंधों में उत्पन्न तनाव व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकते हैं।

भगवद्गीता में आदर्श भक्त को किसी से द्वेष न करने वाला, सभी के प्रति मैत्रीपूर्ण, करुणामय, अहंकार से मुक्त और क्षमाशील बताया गया है (Bhagavad Gita, 12.13–12.14)।

इस प्रकार भक्तियोग व्यक्ति के भीतर सकारात्मक सामाजिक भावनाओं को विकसित करता है। करुणा एवं मैत्री व्यक्ति को केवल अपनी समस्याओं में केंद्रित रहने के बजाय व्यापक मानवीय संबंधों से जोड़ सकती हैं।

संतोष और आधुनिक उपभोक्तावाद :

आधुनिक समाज में सफलता का मूल्यांकन प्रायः धन, पद, प्रतिष्ठा और भौतिक उपलब्धियों से किया जाता है। इसके कारण इच्छाएँ निरंतर बढ़ सकती हैं और व्यक्ति असंतोष के चक्र में फँस सकता है।

भगवद्गीता में संतोष भक्त के महत्वपूर्ण गुणों में सम्मिलित है। संतोष का अर्थ निष्क्रियता नहीं, बल्कि उपलब्ध परिस्थितियों के प्रति आंतरिक स्वीकार्यता तथा अनावश्यक मानसिक असंतोष से मुक्ति के रूप में समझा जा सकता है।

भक्तियोग व्यक्ति को यह समझ विकसित करने में सहायता करता है कि बाहरी उपलब्धियाँ जीवन की पूर्ण संतुष्टि का एकमात्र स्रोत नहीं हैं।

समर्पण और नियंत्रण-बोध :

आधुनिक व्यक्ति अपने जीवन की अनेक परिस्थितियों को नियंत्रित करना चाहता है, किंतु जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जो उसके नियंत्रण से बाहर रहती हैं।

भक्तियोग में ईश्वर के प्रति समर्पण व्यक्ति को यह स्वीकार करने की दिशा देता है कि वह अपने प्रयास के लिए उत्तरदायी है, किंतु प्रत्येक परिणाम को पूर्णतः नियंत्रित नहीं कर सकता।

भगवद्गीता (18.66) में ईश्वर की शरण ग्रहण करने तथा शोक से मुक्त होने का संदेश मिलता है। इस शिक्षा को आधुनिक जीवन में परिस्थितियों की स्वीकार्यता एवं आध्यात्मिक समर्पण के संदर्भ में समझा जा सकता है।

आध्यात्मिक समर्पण का अर्थ समस्या से भागना नहीं है। इसका अर्थ है— परिस्थितियों के बीच उचित कर्म करते हुए उन परिणामों को स्वीकार करना जिन्हें व्यक्ति नियंत्रित नहीं कर सकता।

आधुनिक शोधों का विश्लेषण :

आधुनिक शोधों में भगवद्गीता तथा तनाव-प्रबंधन के संबंध में रुचि बढ़ रही है। Sivakumar (2022) ने भगवद्गीता के तनाव-प्रबंधन दृष्टिकोण का अध्ययन करते हुए मन, इच्छाओं, क्रोध, इंद्रिय-नियंत्रण तथा भावनात्मक स्थिरता जैसे विषयों को महत्वपूर्ण माना।

हाल के अध्ययनों में भगवद्गीता की शिक्षाओं को तनाव-प्रबंधन के संदर्भ में भी विश्लेषित किया गया है। विशेष रूप से कर्म के प्रति समर्पण तथा फल के प्रति अनासक्ति को मानसिक दबाव से निपटने के संदर्भ में महत्वपूर्ण माना गया है (Devi, 2026)।

Das et al. (2026) ने स्वास्थ्यकर्मियों के बीच योग, भगवद्गीता तथा दोनों के संयुक्त अभ्यास से संबंधित

एक यादृच्छिक नियंत्रित अध्ययन किया। अध्ययन में भगवद्गीता तथा योग-भगवद्गीता समूहों में मनोवैज्ञानिक तनाव एवं चिंता से संबंधित सकारात्मक परिवर्तन के संकेत प्राप्त हुए। हालांकि ऐसे निष्कर्षों की व्यापक व्याख्या करते समय नमूने, अध्ययन अवधि तथा प्रतिभागियों की विशेषताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

इस प्रकार आधुनिक शोध भगवद्गीता आधारित आध्यात्मिक शिक्षाओं को मानसिक कल्याण के संदर्भ में अध्ययन करने की संभावनाओं को प्रस्तुत करते हैं, किंतु इस क्षेत्र में अधिक नियंत्रित और दीर्घकालिक अध्ययनों की आवश्यकता है।

भक्तियोग और आधुनिक मनोवैज्ञानिक अवधारणाएँ :

भगवद्गीता का सिद्धांत	संबंधित मनोवैज्ञानिक अवधारणा	आधुनिक जीवन में संभावित उपयोग
ईश्वर में मन का स्थिरीकरण	ध्यान एवं मानसिक एकाग्रता	मानसिक स्थिरता
कर्मफल-त्याग	परिणाम के प्रति अनासक्ति	परिणाम संबंधी चिंता में कमी
समत्व	भावनात्मक संतुलन	सुख-दुःख में संतुलन
संतोष	स्वीकार्यता एवं संतुष्टि	अनावश्यक असंतोष में कमी
करुणा	सहानुभूति एवं करुणामय व्यवहार	संबंधों में सुधार
क्षमा	भावनात्मक मुक्ति	संबंधों से संबंधित तनाव में कमी
आत्मसंयम	आत्म-नियमन	आवेगों पर नियंत्रण
समर्पण	स्वीकार्यता एवं विश्वास	अनियंत्रित परिस्थितियों से सामना
भक्ति	अर्थ-बोध एवं जीवन-उद्देश्य	आंतरिक संतुष्टि

यह तालिका भगवद्गीता की आध्यात्मिक अवधारणाओं और आधुनिक मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के बीच संभावित वैचारिक संबंध को दर्शाती है। दोनों को पूर्णतः समान मानना उचित नहीं होगा।

आधुनिक जीवन में भक्तियोग का व्यावहारिक स्वरूप :

भक्तियोग को केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित न रखकर दैनिक जीवन की साधना बनाया जा सकता है।

प्रातःकालीन साधना :

10:15 मिनट शांत बैठकर ईश्वर-स्मरण, प्रार्थना, मंत्र-जप या ध्यान किया जा सकता है।

दैनिक कर्म :

अपने कार्य को ईश्वरार्पण की भावना से करना तथा परिणाम की अत्यधिक चिंता से बचना भक्तियोग के व्यावहारिक रूपों में से एक हो सकता है।

तनावपूर्ण परिस्थिति में :

कुछ क्षण रुककर धीमी श्वास लेना, परिस्थिति को स्वीकार करना और स्वयं से यह प्रश्न करना उपयोगी हो सकता है :

“इस परिस्थिति में मेरा उचित कर्म क्या है?”

संबंधों में :

करुणा, क्षमा, मैत्री और सहिष्णुता का अभ्यास किया जा सकता है।

रात्रिकालीन आत्मनिरीक्षण :

दिनभर के कार्यों का आत्मनिरीक्षण करके उपलब्धियों और असफलताओं दोनों को ईश्वर को समर्पित किया जा सकता है।

इस प्रकार भक्तियोग जीवन से पलायन नहीं, बल्कि जीवन के बीच आध्यात्मिक चेतना विकसित करने की प्रक्रिया बन सकता है।

चर्चा :

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भगवद्गीता का भक्तियोग आधुनिक तनावपूर्ण जीवन के लिए बहुआयामी आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

- पहला महत्वपूर्ण पक्ष अर्थ-बोध है। जब व्यक्ति अपने जीवन और कर्म को किसी उच्चतर उद्देश्य से जोड़ता है, तो व्यक्तिगत सफलता और असफलता उसके मानसिक जीवन का एकमात्र केंद्र नहीं रहती।
- दूसरा पक्ष अनासक्ति है। व्यक्ति अपने कर्म को गंभीरता से करता है, किंतु परिणाम पर पूर्ण नियंत्रण की अपेक्षा नहीं करता।
- तीसरा पक्ष समत्व है। भक्त का आदर्श सुख-दुःख, मान-अपमान तथा अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुलित रहने का है।
- चौथा पक्ष सामाजिक एवं भावनात्मक परिवर्तन है। करुणा, मैत्री, क्षमा और अहंकार-रहित व्यवहार व्यक्ति के संबंधों में सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं।
- हालिया शोध भी इस क्षेत्र में आगे वैज्ञानिक अध्ययन की संभावना को प्रस्तुत करते हैं (Das et al., 2026)। फिर भी यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि भक्तियोग को अवसाद, चिंता विकार या अन्य मानसिक रोगों के चिकित्सकीय उपचार का विकल्प नहीं माना जाना चाहिए। गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं में योग्य मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ की सहायता आवश्यक है।

निष्कर्ष :

भगवद्गीता का भक्तियोग आधुनिक तनावपूर्ण जीवन के लिए एक व्यापक आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य केवल धार्मिक अनुष्ठान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के मन, भावनाओं, व्यवहार और जीवन-दृष्टि में सकारात्मक परिवर्तन लाना है।

ईश्वर के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा, कर्म का समर्पण, कर्मफल के प्रति अनासक्ति, समत्व, करुणा, क्षमा, संतोष और आत्मसंयम जैसे भक्तियोग के सिद्धांत आधुनिक व्यक्ति को मानसिक दबाव से निपटने के लिए एक आंतरिक आधार प्रदान कर सकते हैं।

विशेष रूप से भगवद्गीता में कर्मफल-त्याग को शांति से तथा भक्त के संतुलित एवं करुणामय व्यक्तित्व को आध्यात्मिक प्रगति से जोड़ा गया है (Bhagavad Gita, 12.12–12.14)। इस आधार पर भक्तियोग को आधुनिक जीवन के लिए एक आध्यात्मिक सामना-ढाँचे के रूप में समझा जा सकता है।

इस दृष्टिकोण में व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों से विमुख हुए बिना अपने कर्म, भावनाओं और परिणामों के प्रति संतुलित दृष्टि विकसित करता है। भविष्य में नियंत्रित नैदानिक अध्ययनों, दीर्घकालिक अध्ययनों तथा विभिन्न आयु एवं सामाजिक समूहों पर शोध के माध्यम से भक्तियोग की प्रभावशीलता का अधिक वैज्ञानिक परीक्षण किया जाना आवश्यक है।

अध्ययन की सीमाएँ :

1. अध्ययन मुख्यतः साहित्य-समीक्षा एवं द्वितीयक शोधों पर आधारित है।
2. इसमें प्राथमिक स्तर पर प्रतिभागियों से प्राप्त अनुभवजन्य आँकड़े सम्मिलित नहीं किए गए हैं।
3. भगवद्गीता के आध्यात्मिक सिद्धांतों और आधुनिक मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के बीच पूर्ण समानता का दावा नहीं किया जा सकता।
4. आधुनिक शोधों में प्रतिभागियों, अध्ययन-अवधि और शोध-पद्धति में पर्याप्त विविधता है।
5. भक्तियोग के आध्यात्मिक परिणामों को केवल मनोवैज्ञानिक मापदंडों द्वारा पूर्णतः मापना संभव नहीं है।

भविष्य के शोध की संभावनाएँ :

भविष्य में निम्न विषयों पर अनुभवजन्य शोध किए जा सकते हैं :

1. भक्तियोग आधारित कार्यक्रम का तनाव पर प्रभाव।
2. भगवद्गीता आधारित ध्यान एवं नाम-जप का चिंता पर प्रभाव।
3. भक्तियोग और भावनात्मक दृढ़ता के बीच संबंध।
4. भक्तियोग एवं जीवन-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।
5. युवाओं एवं कार्यरत व्यक्तियों में भक्तियोग की उपयोगिता।
6. भक्तियोग और सामाजिक जुड़ाव के बीच संबंध।
7. योग एवं भक्तियोग के संयुक्त अभ्यास की प्रभावशीलता।

संदर्भ :

- Das, N., Konduru, L., Dahia, S. S., Sagnika, S., Kothari-Speakman, G., & Behura, A. K. (2026). The stress reduction potential of Bhagavad Gita and yoga for healthcare workers during the COVID-19 pandemic: A randomized controlled trial. PLOS ONE, 21(4), e0347320. <https://doi.org/10.1371/journal.pone.0347320>
- Devi, T. S. (2026). An analysis of the Bhagavad Gita's teachings on Karma Yoga as a framework for stress management. The International Journal of Indian Psychology. <https://doi.org/10.25215/1401.331>
- Ghai, S., Odyneic, P., & Ghai, I. (2026). Effects of Yoga Nidra on stress, anxiety, and depression: A systematic review and meta-analysis. Annals of the New York Academy of Sciences, 1556(1), e70149. <https://doi.org/10.1111/nyas.70149>
- Okan, N., & Sahin, Y. (2026). The effects of spirituality on depression, anxiety, and post-traumatic stress disorder: A systematic review. Journal of Religion and Health. <https://doi.org/10.1007/s10943-026-02671-w>
- Sivakumar, K. S. (2022). A study on Bhagavad Gita's approach to stress management. The International Journal of Indian Psychology. <https://doi.org/10.25215/1004.190>
- Indian Institute of Technology Kanpur. (n.d.). Gita Supersite. <https://www.gitasupersite.iitk.ac.in/>

सतत् विकास में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की भूमिका

डॉ. बरखा घावरी

सहायक आचार्य (समाज शास्त्र)

राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान।

सारांश (Abstract)

सतत् विकास (Sustainable Development) का अर्थ ऐसा विकास है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के संसाधनों और अवसरों से समझौता न करे। भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही प्रकृति के संरक्षण, पर्यावरण संतुलन, सामाजिक समरसता, नैतिकता, संयम और सह-अस्तित्व जैसे मूल्यों पर आधारित रही है। “वसुधैव कुटुम्बकम्”, “सर्वे भवन्तु सुखिनः” तथा “पृथ्वी माता” जैसी अवधारणाएँ सतत् विकास के मूल सिद्धांतों को प्रतिबिंबित करती हैं। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन और पर्यावरणीय संकटों के समाधान हेतु भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का महत्व और भी बढ़ गया है। यह लेख सतत् विकास की अवधारणा तथा उसके विभिन्न आयामों में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मूल शब्द :

सतत् विकास (Sustainable Development), भारतीय संस्कृति, सांस्कृतिक मूल्य, पर्यावरण संरक्षण, वसुधैव कुटुम्बकम्, प्रकृति संरक्षण, सामाजिक समरसता, नैतिकता, जैव विविधता, सतत् जीवन शैली।

प्रस्तावना :

सतत् विकास आज वैश्विक स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण विषयों में से एक है। बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण, प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन तथा प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने मानव जीवन और पर्यावरण के सामने गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए केवल वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश भी आवश्यक है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति के प्रति सम्मान, संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग, अहिंसा, संयम तथा सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्य प्राचीन काल से विद्यमान हैं। यही मूल्य सतत् विकास की आधारशिला बन सकते हैं।

सतत् विकास की अवधारणा :

सतत् विकास वह विकास प्रक्रिया है जो आर्थिक प्रगति, सामाजिक न्याय तथा पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करती है। इसका उद्देश्य वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना है।

सतत् विकास वह विकास है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार करता है कि भविष्य की पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता प्रभावित न हो। इसका उद्देश्य आर्थिक विकास, सामाजिक समानता तथा पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करना है।

सबसे व्यापक रूप से स्वीकार की गई परिभाषा के अनुसार, World Commission on Environment and Development की 1987 की ब्रुंटलैंड रिपोर्ट Our Common Future में कहा गया है :

‘सतत् विकास वह विकास है जो वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, बिना भविष्य की पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए।’

सतत् विकास के प्रमुख आयाम :

- **आर्थिक आयाम :** समावेशी आर्थिक विकास, रोजगार सृजन और संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग।
- **सामाजिक आयाम :** सामाजिक न्याय, समान अवसर, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा गरीबी उन्मूलन।
- **पर्यावरणीय आयाम :** प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, जैव विविधता की रक्षा तथा प्रदूषण नियंत्रण।

सतत् विकास के प्रमुख उद्देश्य :

1. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण।
2. पर्यावरण प्रदूषण में कमी।
3. गरीबी और असमानता का उन्मूलन।
4. सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य।
5. स्वच्छ ऊर्जा तथा जल संरक्षण को बढ़ावा देना।
6. वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के बीच संसाधनों का संतुलित उपयोग।

भारतीय परिप्रेक्ष्य :

भारतीय संस्कृति में ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’, प्रकृति के प्रति सम्मान, संयम, अपरिग्रह तथा सह-अस्तित्व जैसे मूल्य सतत् विकास की अवधारणा को मजबूत आधार प्रदान करते हैं। ये मूल्य संसाधनों के संतुलित उपयोग और पर्यावरण संरक्षण का संदेश देते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की भूमिका :

1. प्रकृति के प्रति श्रद्धा :

भारतीय संस्कृति में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को देवतुल्य माना गया है। नदियों, पर्वतों, वृक्षों तथा पशु-पक्षियों की पूजा प्रकृति संरक्षण की भावना को प्रोत्साहित करती है। प्रकृति के प्रति श्रद्धा भारतीय संस्कृति का एक मूलभूत मूल्य है, जिसके अनुसार प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवनदायिनी और पूजनीय शक्ति माना जाता है।

प्रकृति के प्रति श्रद्धा का महत्व :

- प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को बढ़ावा मिलता है।
- पर्यावरण प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायता मिलती है।
- जैव विविधता एवं वन्यजीवों की रक्षा होती है।
- जल, वन और भूमि जैसे संसाधनों का संतुलित एवं विवेकपूर्ण उपयोग सुनिश्चित होता है।
- वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए स्वस्थ एवं सुरक्षित पर्यावरण का निर्माण होता है।

2. वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना :

“वसुधैव कुटुम्बकम्” का अर्थ है – सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है। यह विचार मानव, प्रकृति तथा समस्त जीव-जगत के प्रति समान उत्तरदायित्व की भावना विकसित करता है। यह मानवता, प्रेम, समानता, सहयोग और विश्व-बंधुत्व का संदेश देता है।

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के प्रमुख तत्व :

- **सभी मनुष्यों के प्रति समान दृष्टि** – जाति, धर्म, भाषा और देश के भेदभाव से ऊपर उठकर सभी को समान मानना।
- **विश्व-बंधुत्व** – पूरे विश्व को एक परिवार मानकर प्रेम, सहयोग और सद्भाव से रहना।
- **करुणा और सहानुभूति** – प्रत्येक प्राणी के प्रति दया, संवेदना और सम्मान का भाव रखना।
- **शांति और सह-अस्तित्व** – संघर्ष के बजाय संवाद, सहयोग और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को बढ़ावा देना।
- **प्रकृति के प्रति सम्मान** – पर्यावरण, पशु-पक्षियों और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना।
- **वैश्विक सहयोग** – जलवायु परिवर्तन, महामारी और अन्य वैश्विक समस्याओं के समाधान के लिए सभी देशों का मिलकर कार्य करना।

3. संयम एवं सादगीपूर्ण जीवन :

भारतीय दर्शन सीमित उपभोग, सादगी और संतुलित जीवन पर बल देता है। इससे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है और अनावश्यक उपभोग में कमी आती है। संयम एवं सादगीपूर्ण जीवन का अर्थ है – अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं और व्यवहार पर नियंत्रण रखते हुए सरल, संतुलित तथा नैतिक जीवन जीना। इसमें अनावश्यक उपभोग, दिखावा और अपव्यय से बचकर आवश्यक वस्तुओं का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाता है।

मुख्य विशेषताएँ :

- इच्छाओं और उपभोग पर नियंत्रण।
- सादा, सरल और संतुलित जीवनशैली।
- संसाधनों का उचित एवं मितव्ययी उपयोग।
- ईमानदारी, संतोष और आत्मानुशासन का पालन।
- प्रकृति और पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता।

4. अहिंसा एवं करुणा :

महात्मा गांधी सहित भारतीय चिंतकों ने अहिंसा और करुणा को जीवन का आधार माना। यह मूल्य जैव विविधता संरक्षण तथा सभी जीवों के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ावा देता है।

5. सामुदायिक सहयोग :

सामुदायिक सहयोग में सतत् विकास का अर्थ है – समुदाय के सभी लोगों की सक्रिय भागीदारी, सहयोग और साझा प्रयासों के माध्यम से ऐसा विकास करना, जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के संसाधनों और अवसरों को सुरक्षित रखे।

सामुदायिक सहयोग की भूमिका :

- प्राकृतिक संसाधनों (जल, वन, भूमि) का सामूहिक संरक्षण।

- स्वच्छता एवं कचरा प्रबंधन में जनभागीदारी।
- जल संरक्षण और वर्षा जल संचयन को बढ़ावा।
- वृक्षारोपण एवं पर्यावरण संरक्षण अभियान।
- जैविक खेती और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाना।
- शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति जागरूकता फैलाना।
- महिला एवं युवा समूहों की विकास कार्यों में सक्रिय भागीदारी।
- स्थानीय संसाधनों के न्यायसंगत एवं संतुलित उपयोग को बढ़ावा देना।

महत्त्व :

- पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता है।
- सामाजिक एकता, सहयोग और उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है।
- आर्थिक विकास के साथ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है।
- स्थानीय समस्याओं का प्रभावी एवं स्थायी समाधान संभव होता है।
- ग्राम एवं शहरी समुदायों का समग्र और समावेशी विकास होता है।

भारतीय संस्कृति के संदर्भ में :

भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्', सहकारिता, लोकसंग्रह और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना सामुदायिक सहयोग का आधार है। ग्राम पंचायत, स्वयं सहायता समूह, जल संरक्षण समितियाँ तथा सामुदायिक वन प्रबंधन जैसी पहलें सतत विकास को सुदृढ़ बनाती हैं। भारतीय समाज में सामूहिक कार्य, श्रमदान, जल संरक्षण, ग्राम विकास और सामुदायिक सहभागिता की परंपरा रही है, जो सतत विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।

6. पर्यावरण संरक्षण की परंपराएँ :

वृक्षारोपण, वर्षा जल संचयन, पवित्र वनों का संरक्षण तथा जल स्रोतों की रक्षा जैसी पारंपरिक व्यवस्थाएँ पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में सहायक रही हैं। पर्यावरण संरक्षण की परंपराएँ वे सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक प्रथाएँ हैं जिनके माध्यम से प्रकृति, वन, जल, भूमि, वायु तथा जीव-जंतुओं का संरक्षण और संवर्धन किया जाता है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को पूजनीय मानकर उसके संरक्षण को जीवन का अभिन्न अंग बनाया गया है।

मुख्य परंपराएँ :

- वृक्षों (जैसे पीपल, बरगद, नीम और तुलसी) की पूजा एवं संरक्षण।
- नदियों, पर्वतों और वनों को पवित्र मानकर उनकी रक्षा करना।
- जल संरक्षण के लिए तालाब, बावड़ी और वर्षा जल संचयन की परंपरा।
- वन्य जीवों एवं पशु-पक्षियों के प्रति दया और संरक्षण का भाव।
- प्रकृति-आधारित पर्व एवं उत्सवों के माध्यम से पर्यावरण के प्रति जागरूकता।
- संसाधनों का संयमित एवं संतुलित उपयोग।

महत्त्व :

- जैव विविधता का संरक्षण होता है।

- प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग सुनिश्चित होता है।
- जल, वायु और भूमि प्रदूषण में कमी आती है।
- जलवायु संतुलन बनाए रखने में सहायता मिलती है।
- सतत् विकास और भावी पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है।

भारतीय संस्कृति में महत्व :

भारतीय संस्कृति में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पंचमहाभूत माना गया है। प्रकृति के प्रति श्रद्धा, सह-अस्तित्व और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना पर्यावरण संरक्षण का आधार है। यह दृष्टिकोण मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध स्थापित करता है।

वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता :

आज जलवायु परिवर्तन, जल संकट, प्रदूषण तथा जैव विविधता के ह्रास जैसी समस्याओं से निपटने के लिए भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक के साथ जोड़ने की आवश्यकता है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा समाज में पर्यावरणीय शिक्षा के साथ सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश सतत् विकास को अधिक प्रभावी बना सकता है।

निष्कर्ष :

भारतीय सांस्कृतिक मूल्य सतत् विकास की अवधारणा को व्यवहारिक एवं नैतिक आधार प्रदान करते हैं। प्रकृति के प्रति सम्मान, सीमित उपभोग, सामाजिक समरसता, करुणा और सामुदायिक सहभागिता जैसे मूल्य वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसलिए सतत् विकास की नीतियों एवं योजनाओं में भारतीय सांस्कृतिक विरासत का समुचित समावेश समय की आवश्यकता है। सतत् विकास केवल आर्थिक प्रगति का मॉडल नहीं है, बल्कि ऐसा समग्र विकास दृष्टिकोण है जो आर्थिक समृद्धि, सामाजिक कल्याण और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करते हुए वर्तमान और भविष्य दोनों पीढ़ियों के हितों की रक्षा करता है। पर्यावरण संरक्षण की परंपराएँ भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। वर्तमान समय में पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने तथा सतत् विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इन परंपराओं को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ :

1. United Nations. Transforming Our World : The 2030 Agenda for Sustainable Development.
2. World Commission on Environment and Development. Our Common Future (1987).
3. Ministry of Education. National Education Policy 2020.
4. भगवद्गीता।
5. ईशावास्य उपनिषद्।
6. महात्मा गांधी. हिन्द स्वराज।

दरबारी सत्ता के बीच बेला : 'राग दरबारी' में स्त्री अस्तित्व का संघर्ष

डॉ. प्रणीता पी.

आचार्य, हिंदी विभाग, कोचीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, केरल।

सार :

श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास राग दरबारी भारतीय ग्रामीण समाज, सत्ता-संरचना और सामाजिक विडंबनाओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। सामान्यतः यह उपन्यास पुरुष-प्रधान राजनीतिक व्यवस्था और सत्ता के विभिन्न रूपों के अध्ययन के रूप में देखा जाता है, किंतु इसके भीतर स्त्री जीवन की उपेक्षा और उसके अस्तित्व-संघर्ष की भी एक महत्वपूर्ण कथा निहित है। प्रस्तुत शोध-पत्र में राग दरबारी के बेला पात्र के माध्यम से शिवपालगंज की व्यवस्था में स्त्री की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। बेला उपन्यास की ऐसी स्त्री पात्र है जिसकी उपस्थिति तो प्रभावशाली है, किंतु उसकी अपनी आवाज लगभग अनुपस्थित है। उसका जीवन परिवार, समाज और पुरुष सत्ता द्वारा निर्धारित मानदंडों से नियंत्रित होता है। विवाह, प्रतिष्ठा और नैतिकता जैसे प्रश्नों पर उसके व्यक्तिगत निर्णयों की उपेक्षा की जाती है तथा उसे पुरुष-दृष्टि के आधार पर परिभाषित किया जाता है। उसकी कला और प्रतिभा को पहचान मिलने के बजाय उसके चरित्र और नैतिकता पर प्रश्न उठाए जाते हैं। इस शोध में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि बेला केवल एक व्यक्तिगत पात्र नहीं, बल्कि उन असंख्य स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जिनकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और अभिव्यक्ति पितृसत्तात्मक समाज में दबा दी जाती हैं। शिवपालगंज का 'दरबार' सत्ता, वर्चस्व और पुरुष प्रभुत्व का प्रतीक बनकर उभरता है, जहाँ बेला की मौन उपस्थिति स्त्री अस्मिता के संकट को उजागर करती है। इस प्रकार बेला का चरित्र स्त्री के सामाजिक हाशियाकरण, मौन प्रतिरोध और अस्तित्व की खोज का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द :

पितृसत्ता, स्त्री अस्मिता, पुरुष दृष्टि, मौन प्रतिरोध, घरेलूपन, सत्ता-संरचना, घरेलूपन, वर्चस्व, पुरुष दृष्टि, अधीनता, अनैतिकता।

श्रीलाल शुक्ल का राग दरबारी मुख्यतः ग्रामीण राजनीति, सत्ता-संरचना और सामाजिक विडंबनाओं पर केंद्रित उपन्यास है। पहली दृष्टि में यह पुरुष-प्रधान संसार का आख्यान प्रतीत होता है, जहाँ वैद्यजी, रंगनाथ, रूपन, बद्री पहलवान और अन्य पुरुष पात्र कथा को आगे बढ़ाते हैं। किंतु इस पुरुष-केंद्रित संसार के बीच बेला एक ऐसी स्त्री है जिसकी उपस्थिति तो है, पर उसकी आवाज अनुपस्थित है। यही अनुपस्थिति उसे उपन्यास

का एक महत्वपूर्ण प्रतीक बना देती है। बेला उपन्यास में कभी अपनी इच्छाओं, विचारों या भावनाओं को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त नहीं करती। उसके बारे में पाठक को जो कुछ भी पता चलता है, वह पुरुष पात्रों की दृष्टि और टिप्पणियों के माध्यम से मिलता है। इस प्रकार उसकी पहचान एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में नहीं, बल्कि पुरुष-समाज द्वारा निर्मित छवि के रूप में सामने आती है। उसकी चुप्पी केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की अभिव्यक्ति है जहाँ स्त्रियों को बोलने का अधिकार नहीं दिया जाता। यदि राग दरबारी के कथानक की समग्र यात्रा पर दृष्टि डालें, तो स्पष्ट होता है कि इसका मुख्य केंद्र पुरुष-प्रधान और पुरुष वर्चस्व वाली सामाजिक व्यवस्था है। इस पुरुष-केंद्रित समाज का आधार स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग सामाजिक क्षेत्रों का निर्माण है। स्त्रियों को सामान्यतः घर की चारदीवारी और आँगन तक सीमित कर दिया गया है, जहाँ उनकी आवाज या तो सुनाई नहीं देती या उसे महत्व नहीं दिया जाता। उन्हें मुख्य रूप से संतानोत्पत्ति और घरेलू कार्यों तक सीमित भूमिकाएँ सौंप दी गई हैं। दूसरे शब्दों में, उनका घरेलूकरण कर दिया गया है।

उपन्यास में बेला को छोड़कर किसी अन्य स्त्री पात्र का नाम स्पष्ट रूप से सामने नहीं आता। ऐसे में प्रश्न उठता है कि नामकरण का महत्व क्या है? इसका उत्तर सरल है। यदि किसी व्यक्ति का नाम नहीं है, तो उसकी स्वतंत्र पहचान भी नहीं होती। परिणामस्वरूप, स्त्रियों को मानो "व्यस्त सड़कों की साँझ में पड़े हुए गठरियों जैसे निर्जीव वस्तुओं"¹ के समान देखा जाता है, या उनकी तुलना "बकरी की तरह मिमियाती हुई स्त्रियों"² से की जाती है। अर्थात्, यदि उनकी आवाज सुनाई भी देती है, तो उसे पशुओं की निरर्थक ध्वनि समझकर महत्वहीन मान लिया जाता है। इस प्रकार स्त्रियों की आवाज को दबा देना अथवा उसे महत्वहीन समझना, शिवपालगंज के सामाजिक ढाँचे में विद्यमान लैंगिक असमानता और पितृसत्तात्मक वर्चस्व को उजागर करता है। बेला का मौन केवल एक पात्र की चुप्पी नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक है जिसमें स्त्रियों के अस्तित्व और उनकी अभिव्यक्ति को व्यवस्थित रूप से हाशिए पर धकेल दिया जाता है। तब प्रश्न यह उठता है कि शिवपालगंज गाँव में स्त्री की वास्तविक पहचान या उसकी स्वाभाविक उपस्थिति को कैसे समझा जाए? क्या उसकी भूमिका केवल दूसरों की सेवा करने और स्वयं को अधीन बनाए रखने तक ही सीमित है? यदि अधिकांश स्त्रियाँ शिवपालगंज के घरों के आँगनों तक सीमित रहती हैं, तो फिर बेला इस पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष-दृष्टि का केंद्र कैसे बन जाती है?

बेला का नाम कभी भी किसी सकारात्मक या प्रशंसनीय संदर्भ में नहीं लिया जाता। इसके विपरीत, छोटे पहलवान उसे "निम्न नैतिक मूल्यों वाली स्त्री"³ के रूप में प्रस्तुत करता है। इससे स्पष्ट होता है कि समाज में गायन और नृत्य जैसी कलाओं को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता, बल्कि उन्हें स्त्री के चरित्र से जोड़कर उसके नैतिक मूल्यांकन का आधार बना दिया जाता है। इस प्रकार बेला शिवपालगंज की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को समझने का एक महत्वपूर्ण उदाहरण बन जाती है। वह उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था की प्रतिनिधि है, जहाँ स्त्री की पहचान उसके व्यक्तित्व या उसकी प्रतिभा से नहीं, बल्कि पुरुष समाज द्वारा निर्मित नैतिक मानकों से तय की जाती है। शिवपालगंज, जो वैद्यजी के सत्ता-केन्द्र या 'दरबार' का प्रतीक है, वहाँ बेला का चरित्र यह उजागर करता है कि स्त्रियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक दोनों स्तरों पर किस प्रकार हाशिए पर रखी जाती हैं।⁴

उपन्यास की कथा-योजना में बेला वैद्यजी की सफलता के मार्ग में आने वाले व्यवधान का कारण बनती है। वैद्यजी के लिए अंतरजातीय विवाह वास्तव में सामाजिक सुधार का माध्यम नहीं, बल्कि अपनी तथाकथित आधुनिकतावादी विचारधारा का प्रदर्शन करने का एक साधन है। वस्तुतः वे बद्री और बेला के अंतरजातीय विवाह

का समर्थन इसलिए करते हैं ताकि समाज में अपनी प्रतिष्ठा, प्रभाव और राजनीतिक वर्चस्व को और अधिक सुदृढ़ कर सकें।

यहाँ विवाह एक सामाजिक संस्था न रहकर व्यावसायिक और राजनीतिक उपकरण का रूप ले लेता है। बेटी का विवाह उसके पिता के लिए चिंता का विषय बन जाता है, जैसा कि गयादीन के प्रसंग में दिखाई देता है। इस पूरी प्रक्रिया में दहेज की समस्या भी स्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई है, जो विवाह को और अधिक जटिल बना देती है। बेला को अपने जीवनसाथी का चयन करने की स्वतंत्रता नहीं दी जाती। उसके भविष्य और विवाह से संबंधित सभी निर्णय उसके पिता स्वयं लेते हैं। उनका उद्देश्य यह होता है कि किसी भी प्रकार बेला का विवाह कर उसे समाज में फैली बदनामी और तथाकथित 'गलत' परिस्थितियों से दूर कर दिया जाए। इस प्रकार बेला की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और व्यक्तिगत अधिकार पूरी तरह उपेक्षित रह जाते हैं तथा उसका जीवन पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा नियंत्रित होता है।

'महाराज, मेरी योजनाएँ खराब मत कीजिए। मैंने किसी तरह अपनी लड़की को बड़ा किया है। शहर में अग्रवाल वैश्य लोग हैं, जो उसे स्वीकार करने को तैयार हैं। विवाह में केवल पंद्रह दिन रह गए हैं। यदि आपने मेरी बेटी को बदनाम किया, तो आप चाहे कितने ही बड़े नेता क्यों न हों, आपका सम्मान भी नष्ट हो जाएगा।'⁵ बेला की आवाज का एकमात्र संकेत उस गुमनाम पत्र के माध्यम से मिलता है, जिसकी प्रामाणिकता स्वयं संदिग्ध है। यदि बेला शिक्षित नहीं है, तो यह प्रश्न स्वाभाविक है कि वह अपनी भावनाओं और विचारों को लिखित रूप में कैसे व्यक्त कर सकती है, जबकि उसकी अभिव्यक्ति पहले से ही सामाजिक रूप से सीमित है? सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसके लिए वैद्यजी के घर ऐसा पत्र भेजने का साहस करना भी लगभग असंभव प्रतीत होता है। यदि यह मान भी लिया जाए कि वह पत्र वास्तव में बेला ने ही लिखा था, तो यह उसे केवल अपनी आवाज ही नहीं देता, बल्कि उसे स्वायत्तता भी प्रदान करता। इस दृष्टि से पत्र-लेखन उसके लिए स्वतंत्र अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकता था, जिसके द्वारा वह अपने विचार, इच्छाएँ और भावनाएँ प्रकट कर सकती थी। किंतु उपन्यास में बेला के पिता के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि बेला पर्याप्त रूप से शिक्षित नहीं है। वे कहते हैं 'कृभाई, तुम तो शायद किसी बी.ए. या एम.ए. पास लड़की से विवाह करने का सपना देख रहे हो।'⁶ यह कथन उस सामाजिक मानसिकता को उजागर करता है, जिसमें अशिक्षित स्त्री को पुरुष की योग्यता और सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं माना जाता। दूसरी ओर, बेला अपने पिता से कभी यह प्रश्न नहीं करती कि उसे उचित शिक्षा क्यों नहीं दी गई। उसकी यह चुप्पी भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा निर्मित सामाजिक संस्कारों का परिणाम है।

यदि बेला भी रेवती की तरह शिक्षित, जागरूक और आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करती, तो समाज उसे अपने ही परिवार के लिए अभिशाप मानता। इससे स्पष्ट होता है कि पितृसत्तात्मक समाज स्त्री की शिक्षा और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित करने के बजाय उसे नियंत्रित करने का माध्यम मानता है। इस प्रकार बेला का चरित्र न केवल स्त्री की मौन उपस्थिति को दर्शाता है, बल्कि यह भी बताता है कि शिक्षा, अभिव्यक्ति और स्वायत्तता जैसे अधिकारों से वंचित करके स्त्री की आवाज को किस प्रकार व्यवस्थित रूप से दबा दिया जाता है। उपन्यास में बेला बट्टी और रूपन बाबू के बीच उत्पन्न होने वाले संघर्ष का कारण बन जाती है। उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान और व्यक्तित्व को तथाकथित सामाजिक हित और परिवार के कल्याण के नाम पर लगातार कुचल दिया जाता है। वह समाज, परिवार और पितृसत्तात्मक व्यवस्था— तीनों स्तरों पर हाशिए पर धकेल दी जाती है। बेला

का गायन इतना आकर्षक और प्रभावशाली है कि वह उसे एक उभरती हुई कलाकार के रूप में स्थापित कर सकता था। किंतु उसकी कला और प्रतिभा को पहचानने के बजाय उसे केवल पुरुष-दृष्टि का विषय बना दिया जाता है। रंगनाथ की कल्पना में वह कोणार्क मंदिर की मूर्ति की भाँति एक सौंदर्य-वस्तु बनकर रह जाती है। अर्थात् उसकी प्रतिभा की अपेक्षा उसके रूप और शरीर पर अधिक ध्यान दिया जाता है। विडंबना यह है कि बेला को उसके संगीत और कला के लिए नहीं, बल्कि कथित 'अनैतिकता' के लिए जाना जाता है। समाज उसकी प्रतिभा का सम्मान करने के बजाय उसके चरित्र का मूल्यांकन करता है और उसे नैतिक मानदंडों की कसौटी पर परखता है।

बेला के चरित्र के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते हैं कि यदि किसी स्त्री को अपनी प्रतिभा विकसित करने, अपने सपनों को पूरा करने और अपनी इच्छाओं के अनुसार जीवन जीने का अवसर भी मिले, तो भी सत्ता और पितृसत्ता के प्रभुत्व वाले समूह उसे आगे बढ़ने नहीं देते। वे उसकी स्वतंत्र पहचान और अभिव्यक्ति को दबा देते हैं। इस प्रकार बेला का चरित्र उस स्त्री का प्रतीक बन जाता है, जिसकी प्रतिभा और आकांक्षाएँ पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था द्वारा निरंतर नियंत्रित, उपेक्षित और दमनित की जाती हैं। बेला उपन्यास में एक ओर कथा के विकास को आगे बढ़ाने वाली 'कड़ी' का कार्य करती है, तो दूसरी ओर वह उस सत्तावादी और निष्क्रिय हो चुकी नौकरशाही व्यवस्था के लिए एक संभावित चुनौती भी बन जाती है। इसके बावजूद उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान नहीं बन पाती और वह पुरुष-प्रधान समाज के हाथों की कठपुतली बनकर रह जाती है। बेला का मौन अनेक अनुत्तरित प्रश्नों और संदेहों को जन्म देता है। यही मौन समाज को उसके चरित्र के बारे में मनमाने निष्कर्ष निकालने का अवसर देता है, जिसके परिणामस्वरूप उसे अनैतिक स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उसकी अशिक्षा भी उसके व्यक्तित्व की एक बड़ी कमी बन जाती है, क्योंकि शिक्षा के अभाव में वह अपने अधिकारों और विचारों को दृढ़ता से व्यक्त नहीं कर पाती। फलस्वरूप उसके जीवन से जुड़े सभी निर्णय उसके पिता को लेने पड़ते हैं।

बेला की तुलना यदि उपेन्द्रनाथ अशक की कहानी 'सूखी डाली' की बेला से की जाए, तो दोनों के बीच स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। अशक की बेला के साथ अपेक्षाकृत सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाता है, जबकि राग दरबारी की बेला वास्तव में उसी 'सूखी डाली' की तरह मुरझा जाती है। जिस सूखी डाली का प्रतीक अशक ने प्रस्तुत किया था, वह श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास में बेला के जीवन की वास्तविकता बन जाती है। इस प्रकार वह शिवपालगंज की मुरझाई हुई शाखा का प्रतीक बनकर उभरती है। पूरे उपन्यास में बेला के चरित्र, पवित्रता और सतीत्व पर बार-बार प्रश्न उठाए जाते हैं। उसके पास ऐसा कोई सामाजिक या भावनात्मक सहारा नहीं है जो उसकी पीड़ा को समझ सके केवल उसका पिता ही किसी सीमा तक उसका साथ देता है। उसका जीवन निरंतर संघर्षों और कठिनाइयों से भरा हुआ है और अंततः वह समाज के आदेशों तथा मान्यताओं के सामने झुकने के लिए विवश हो जाती है, ताकि उस पर लगे तथाकथित कलंक से मुक्ति मिल सके। विडंबना यह है कि समाज पुरुष को दोषी ठहराने के बजाय स्त्री को ही सभी समस्याओं और पापों का कारण मानता है। बेला इस प्रकार विषाद, पीड़ा और करुणा के 'राग' का प्रतीक बन जाती है, जो शिवपालगंज के 'दरबार' से कभी मुक्त नहीं हो पाती। उसके पास रंगनाथ की तरह गाँव छोड़कर अपने लिए नया जीवन चुनने की गतिशीलता या स्वतंत्रता भी नहीं है।

उपन्यास के अंत तक बेला विभिन्न पुरुष-दृष्टियों के लिए केवल एक 'ट्रॉफी' या 'वस्तु' बनकर रह जाती

है। उसकी अपनी इच्छाएँ और व्यक्तित्व गौण हो जाते हैं। उसके नाम की तरह ही उसका जीवन अनेक उलझनों, बंधनों और समस्याओं में फँसा रहता है। परिणामस्वरूप, उसका समूचा अस्तित्व संकटग्रस्त हो जाता है, क्योंकि वह पुरुष-प्रधान समाज द्वारा निर्मित पितृसत्तात्मक जाल में पूरी तरह उलझ जाती है। बेला का चरित्र इस बात का सशक्त प्रतीक है कि किस प्रकार पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री की पहचान, स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति को नियंत्रित करके उसे हाशिए पर धकेल देती है।

उपन्यास में बेला विवाह, प्रेम और प्रतिष्ठा जैसे प्रश्नों के केंद्र में है, किंतु निर्णय लेने का अधिकार उसके पास नहीं है। उसके जीवन का नियंत्रण परिवार और समाज के पुरुषों के हाथों में है। उसके संबंधों को लेकर फैलने वाली अफवाहें और उसके चरित्र पर लगाए जाने वाले आरोप यह स्पष्ट करते हैं कि पितृसत्तात्मक समाज स्त्री की नैतिकता का मूल्यांकन तो करता है, पर उसे अपनी बात रखने का अवसर नहीं देता। बेला की चुप्पी दरअसल प्रतिरोध की विफलता नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा थोपी गई चुप्पी है। वह सत्ता-संघर्ष में प्रत्यक्ष भाग नहीं लेती, फिर भी उसके नाम और अस्तित्व का उपयोग पुरुष अपनी राजनीतिक और सामाजिक महत्वाकांक्षाओं के लिए करते हैं। इस प्रकार बेला स्वयं सत्ता का केंद्र नहीं, बल्कि सत्ता की राजनीति का माध्यम बन जाती है। दूसरी दृष्टि से देखें तो बेला की अनुपस्थिति ही उसकी सबसे बड़ी उपस्थिति है। वह उन असंख्य ग्रामीण स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो समाज के हर स्तर पर मौजूद हैं, लेकिन इतिहास, राजनीति और साहित्य के मुख्य विमर्श में उनकी आवाज दबा दी जाती है। राग दरबारी में स्त्रियों की सीमित उपस्थिति यह संकेत देती है कि सार्वजनिक जीवन पर पुरुषों का पूर्ण वर्चस्व है और स्त्रियाँ घरेलू दायरे तक सीमित कर दी गई हैं।

बेला राग दरबारी की सबसे मुखर मौन पात्र है। उसकी चुप्पी केवल एक चरित्र की विशेषता नहीं, बल्कि भारतीय ग्रामीण समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति का रूपक है। श्रीलाल शुक्ल ने प्रत्यक्ष रूप से नारी-विमर्श नहीं लिखा, किंतु बेला के माध्यम से उन्होंने यह दिखाया कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की आवाज किस प्रकार दबा दी जाती है। इसलिए बेला को 'अनसुनी आवाज' कहना उचित है, क्योंकि उसका मौन स्वयं समाज की गहरी लैंगिक असमानताओं का सशक्त संकेत बन जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 7
2. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 188
3. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 23
4. रॉय, अनुपमा एवं सिंह, उज्ज्वल कुमार, "राग दरबारी टेल्स अस ट्रस्ट इन पॉलिटिकल अथॉरिटी कैन नेवर बी एक्सोल्यूट," द वायर, नई दिल्ली, 22 जनवरी 2018।
5. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 308
6. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 280

ग्रामीण विकास में विज्ञान, शिक्षा और प्रौद्योगिकी की भूमिका

Dr. Rupali Nag

Assistant Professor, Department of Sociology

Guru Nanak Girls PG College, Ayodhya.

भारत में ग्रामीण विकास के लिए आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भरपूर सहायता ली जा रही है तथा वैज्ञानिक शोधों को गाँवों से जोड़ने की भरपूर कोशिशें की जा रही हैं। हमारे देश में कृषि क्षेत्रों में भी वैज्ञानिक अनुसंधान बढ़ते जा रहे हैं और यदि इसे और बढ़ाया जाए तो ग्रामीण क्षेत्रों का बहुत अधिक तीव्रता से कायाकल्प होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

जिन वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थाओं ने ग्रामीण जीवन की उन्नति की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उनका वर्णन निम्नलिखित है :

- नेशनल रिसर्च डेवलपमेंट कॉरपोरेशन
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
- काउंसिल ऑफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च
- डिपार्टमेंट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी
- खादी एवं ग्रामोद्योग निगम (खादी एंड विलेज इंडस्ट्रीज कॉरपोरेशन)
- नेशनल इनोवेशन सेंटर
- ग्रामीण विकास विभाग

ग्रामीण विकास के क्षेत्रों में उपयुक्त संगठनों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। इन संस्थाओं ने कृषि क्षेत्रों में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। यह सही है कि कृषि का संपूर्ण मशीनीकरण कृषि श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर कम कर देगा, लेकिन इस समस्या के समाधान हेतु उसके विकल्पों की तलाश करनी होगी। कृषि मजदूरों की सुरक्षा के नाम पर कृषि एवं उस पर आधारित ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की कीमत चुकाना बुद्धिमानी भरा कदम नहीं माना जा सकता। धीरे-धीरे उन्हें भारत में इस तकनीक और तरीकों से जोड़ने की कोशिश की जा रही है।

विज्ञान एवं आधुनिक प्रौद्योगिकी ने ग्रामीण विकास के क्षेत्रों में निम्न प्रकार से सहयोग पहुँचाया है :

- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के तहत कृषि क्षेत्रों के विकास, आणविक इंजीनियरिंग, कीट नियंत्रण, जल प्रबंधन, उत्पादन अनुसंधान और भूमि सुधार के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की गई हैं।
- वैज्ञानिकों ने पशुपालन के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण विकास किया है और इसके तहत पशुओं के नस्ल सुधार

तथा चारा उत्पादन की दिशा में सराहनीय प्रयास हुए हैं।

- ग्रामीण क्षेत्रों के लिए कम खर्चीले तथा हल्के भवनों के निर्माण के लिए रुड़की स्थित बिल्डिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट ने प्रशंसनीय शोध किए हैं और उनका लाभ ग्रामीण क्षेत्रों को प्राप्त हो रहा है।
- धुआँ रहित चूल्हे, बायोगैस एवं गोबर गैस संयंत्रों तथा सौर ऊर्जा चालित प्रकाश बैटरियों के विकास ने ग्रामीण क्षेत्रों की ईंधन एवं प्रकाश की समस्या का काफी हद तक निराकरण किया है।

ग्रामीण पेयजल की समस्या के समाधान के लिए भी कई वैज्ञानिक उपाय किए गए हैं। एस्बेस्टस सीमेंट से बनी हल्की एवं सस्ती पानी की टंकियों का विकास करके पानी को पीने योग्य बनाने के लिए रिवर्स ऑस्मोसिस (रिवर्स ऑस्मोसिस) तकनीक का आविष्कार एवं उपयोग तथा जल शोधन के लिए क्लोरीन की गोलियों के इस्तेमाल को बढ़ावा देकर ग्रामीण पेयजल समस्या पर नियंत्रण पाने की कोशिश की जा रही है।

ग्रामीण क्षेत्र मनोरंजन एवं जनसंचार सुविधाओं का संकट तथा इसमें सुधार की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। इसके लिए सरकार द्वारा प्राथमिकता के तौर पर कोशिश की जा रही है। लेकिन भारत में विकास का मार्ग तथा सफर दोनों चुनौतियों से भरे हैं। यहाँ जलवायु, भौगोलिक स्थिति, खान-पान, संस्कृति जैसे अनेक स्तरों पर विविधता देखने को मिलती है, जो विकास में बाधक होती है।

ग्रामीण, अर्ध-शहरी और शहरी परिवेशों का अंतर भी एक बड़ी चुनौती है। ऐसे में विज्ञान व प्रौद्योगिकी के अलावा शिक्षा और सुशासन भी विकास के जरूरी पहलू होते हैं। शहरों में शिक्षा और शासन प्रणाली सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित होने से प्रौद्योगिकी का सदुपयोग भली-भाँति होता है। साथ ही शिक्षित नागरिक प्रौद्योगिकी का महत्व समझते हैं तथा उसकी सराहना करते हैं।

वहीं जब ग्रामीण समाज में किसी नई प्रौद्योगिकी का समावेश करने जाते हैं, तो ग्रामीण जन को उस प्रौद्योगिकी के उपयोग और फायदे के बारे में समझाना एक विकट चुनौती के रूप में सामने आता है। यहाँ पर शिक्षा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव आड़े आता है। इसलिए ग्रामीण और अर्ध-शहरी समाज में शिक्षा व जागरूकता के प्रसार के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की भी विशेष आवश्यकता होती है।

ग्रामीण विकास में सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ व्यक्तियों की आर्थिक उन्नति भी शामिल है। भारतीय अर्थव्यवस्था में निरन्तर वृद्धि सरकार की शिक्षा प्रणाली से सभी क्षेत्रों में विकास प्रक्रिया को तेज करने के लिए प्रेरित करती है। भारत की आधी आबादी गाँवों में रहती है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा प्रणाली आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा पाठ्यक्रम को उन्नत करने की आवश्यकता है और इसमें बागवानी और खेती से संबंधित अध्याय शामिल किए जाने चाहिए। अधिक से अधिक विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करने और उन्हें सीखने की रुचि बनाए रखने के लिए टेलीविजन और कंप्यूटर जैसे नए-नए साधनों का उपयोग किया जा सकता है। शिक्षित किए गए विद्यार्थियों के मन की मनोरंजन तरीके से बढ़ाने का यह एक कारण एवं उपाय हो सकता है। ग्राम विकास की अवधारणा शिक्षा के प्रसार के बिना अधूरी है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा को सार्थक एवं सुसंगत बनाने के लिए आवश्यक है कि सूचनाओं, सेवाओं एवं पढ़ाई पर शिक्षा को कार्यात्मक रूप से बेहतर बनाया जाए। माता-पिता की शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने हेतु प्रयास किए जाने चाहिए। शिक्षण-अधिगम के तरीकों को आकर्षक एवं रुचिकर बनाया जाए तथा घर, समाज और स्कूल के वातावरण में परिवर्तन करके सकारात्मक एवं स्वस्थ वातावरण बनाना आवश्यक है।

शैक्षिक दृष्टिकोण और निरक्षरों को शिक्षा चुनौतियों से संबंधित कार्यों को कड़ाई से कार्यान्वित करना

चाहिए। शिक्षा मानव एवं समाज के विकास का मूल साधन है। यह लोगों में ऐसी समझ और सोच उत्पन्न करती है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी प्रतिभाओं और क्षमताओं का सही तरीके से उपयोग करके स्वयं का तथा समाज का बहुआयामी कल्याण करने में समर्थ होता है। इस प्रकार शिक्षा विकास की अनिवार्य शर्त है। नेशनल एजुकेशन पॉलिसी (राष्ट्रीय शिक्षा नीति) 2020 नई शिक्षा नीति वर्तमान समय की मांग और जरूरत के आधार पर देश की शिक्षा व्यवस्था को प्रभावी बनाए रखने के लिए लागू की गई है। इसके अंतर्गत 2030 तक स्कूली शिक्षा में 100 प्रतिशत जीईआर (GER) तथा प्री-स्कूल से माध्यमिक स्तर तक शिक्षा का सार्वभौमिकरण करना है। यही उम्मीद है कि इस नई शिक्षा नीति से सभी आकांक्षाओं पर खरी उतरेगी और ग्रामीण क्षेत्रों में भी साक्षरता का स्तर उच्च हो सके।

निष्कर्ष :

किसी भी समाज या देश के विकास के बुनियादी मानकों में शिक्षा अथवा साक्षरता का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ भौतिक व आर्थिक उन्नति में भी मददगार होती है।

भारत में शिक्षा का प्रसार शहरों की अपेक्षा गाँवों में धीमा है, जिसके कारण ग्रामीण भारत का विकास अपेक्षित रूप से नहीं हो सका।

सरकार ने विभिन्न योजनाओं, जैसे – आदर्श विद्यालय, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, मिड-डे मील जैसे विशेष कार्यक्रमों के माध्यम से अधिक से अधिक बच्चों तक शिक्षा का प्रकाश पहुँचाने और बच्चों की पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयास किया है।

परंतु केवल कानून बनाने और सरकारी योजनाएँ बनाकर इतने बड़े देश के गाँवों में पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इस बात को समझते हुए अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ और व्यक्ति आज भी इस चुनौती से निपटने के लिए आगे आ रहे हैं। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें युवा तथा अनुभवी समर्पित लोगों ने शहरों की चकाचौंध से दूर गाँवों में रहने वाले निर्धन, वंचित और उपेक्षित परिवारों के बच्चों को शिक्षा का उपहार देकर उन्हें विकास की मुख्यधारा से जोड़ने का अनुकरणीय कार्य किया है। ये महिलाएँ और युवक ग्रामीण भारत में शिक्षा-प्रसार के दीप स्तंभ की भूमिका निभा रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. योजना, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अक्टूबर 2021, पृष्ठ संख्या 25-28।
2. नेशनल कमीशन ऑन सेल्फ एम्प्लॉयड वीमेन, श्रम शक्ति रिपोर्ट, नई दिल्ली, 1988।
3. आर्थिक समीक्षा 2023, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ 142-143।
4. शर्मा, विजय – पंचायती राज, रतन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 20-24।
5. गौर, एस. डी. (2020). जनसंख्या, भूगोल शाखा पुस्तक भवन, पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, यूनिवर्सिटी रोड, आगरा-211002, पृ. 114-119।
6. अग्रवाल, पी. डी. एवं गुप्ता, एम. (2002). शिक्षा के आधार, शिक्षा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 87-96।
7. पाठक, पी. डी. (पृ. 87-96). भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, अग्रवाल पब्लिकेशन (ज्योति ब्लॉक, संजय प्लेस), आगरा-2, पृ. 16-24।
8. गुप्ता, रेखा (2012). शिक्षा के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय और आर्थिक आधार, रण्डून पब्लिकेशन, सुभाषनगर-141008, पृ. 96-107।

भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा में आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक मूल्यों का वैश्विक आयाम

रोहित

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

शोध सारांश -

प्राचीन संपूर्ण विश्व के ज्ञात सभ्यताओं में भारत देश का सनातन ज्ञान परंपरा विशिष्ट है सनातन का शाब्दिक अर्थ है जो 'शाश्वत' है जिसका ना आदि है और न अंत है। सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ के दृष्टिकोण से यह तथ्य महत्वपूर्ण है, कि सनातन ज्ञान परंपरा किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र सामाजिक जाति, वर्ग और धर्म विशेष की उपलब्धि मात्रा तक सीमित नहीं है, भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा में स्थापित आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक मूल्यों का ज्ञान चेतना की गहराई से अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि यह संपूर्ण मानवता और प्रकृति के कल्याण और ज्ञान चेतना के विकास संतुलन का मुख्य कारक है। सनातन ज्ञान परंपरा के अमूल्य निधि कारकों में अहिंसा, प्रेम, दया और समताकारी मूल्य की चेतना है। यह परम सत्य महान परंपरा जिसे भारत देश के प्राचीन काल से तपस्वीयों, श्रवण, ऋषि मुनियों और बुद्धिजीवी ज्ञान प्रज्ञा संपन्न मनीषियों ने अपने विशिष्ट योग ज्ञान साधना से प्राप्त कर जगत के समक्ष सत्य प्रकट किया था। सनातन ज्ञान परंपरा संपूर्ण जीवन वनस्पतियों और मानव जगत के मध्य आपसी प्रेम, दया, मैत्री और समता भाव अस्तित्व कल्याण का मुख्य पोषक है। अतः स्पष्ट है कि सनातन ज्ञान परंपरा के वैश्विक मूल्यों के प्रसार से सामाजिक शांति और सामाजिक न्याय को भी शक्ति प्राप्त होता है।

मुख्य शब्द - सनातन, ज्ञान परंपरा, मानवता, समता, वैश्विक मूल्य।

प्रस्तावना -

भारतीय आध्यात्मिक सांस्कृतिक ज्ञान परंपरा का मूल आधार सनातन चेतना हैं। सनातन परंपरा अनादि काल से मानव सभ्यता का मार्गदर्शन कर रहा है। सनातन ज्ञान परंपरा ऐतिहासिक अनेक काल खण्डों को पूर्ण करते हुए अपनी अनवरत-अविरल यात्रा के साथ अनेकों प्रकार के ज्ञान, विज्ञान, लोक विधा, लिपि, नृत्य शैली, खान-पान, स्थानीय सांस्कृतिक उत्सव में त्योहारों की अनुपम संस्कृत रंगों को अपने अंदर समाहित किए हुए हैं। वर्तमान समय में सनातन ज्ञान परंपरा में स्थित आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों का बृहद समावेशन भारत के मुख्य धर्म हिंदू, बौद्ध, जैन और सिख समाज में देखने को मिलता है। सनातन ज्ञान परंपरा के चेतना भारत

के प्राचीन शाश्वत जीवन चेतना को प्रदर्शित करता है। समय और सभ्यताओं के सामाजिक और ऐतिहासिक विकास के साथ भारत भूमि ने अनेकों प्रकार के बाहरी शत्रुओं द्वारा संयोजित आर्थिक एवं सांस्कृतिक आक्रमणों के विभत्स त्रासदी को अपने ऊपर झेला, सहा और उसका प्रतिकार भी किया है। पुनः भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक ऊर्जा जागृति का संपूर्ण विश्व में विस्तार होता है उस ध्येय मुख्य आधार सनातन चेतना के वृक्ष के जड़ों का मूल आधार से शुरू होता है। वर्तमान समय के संपूर्ण विश्व राष्ट्रों के भूमंडलीकरण के संदर्भ में संसार एक 'वैश्विक गांव' के रूप में परिवर्तित हो रहा है लेकिन इसके साथ ही वैचारिक संघर्ष सामाजिक मूल्यों में गिरावट, हिंसा और पर्यावरण चक्र का संतुलन भी तेजी से वृद्धि हो रहा है। अतः ऐसे समय में भारतीय सनातन चेतना के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विचार संपूर्ण मानव जगत के लिए कल्याणकारी रूप में सहायता प्रदान कर रहा है।

शोध उद्देश्य -

1. भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा के दार्शनिक और आध्यात्मिक मूल्यों के एकीकरण का अध्ययन करना।
2. सनातन ज्ञान परंपरा में स्थित "वसुधैव कुटुम्बकम्" चेतन की प्रासंगिकता के महत्व को समझना।
3. वर्तमान वैश्विक समय में मानसिक तनाव और पर्यावरण संतुलन निर्माण में सनातन दर्शन के प्रासंगिकता को प्रस्तुत करना हैं।

सनातन मूल्य का आध्यात्मिक और सांस्कृतिक प्रतीक -

संपूर्ण विश्व के मानव समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक सौहार्द, एकता का समन्वय स्थापित करने का उत्कृष्ट उदाहरण सनातन मूल्य है। यह सनातन मूल्य भारतीय ज्ञान के संयोजित समन्वय से सामाजिक एकता मैत्री और आध्यात्मिक विस्तार का जीवंत स्वरूप में परिवर्तित हो जाता है। सनातन मूल्य के विशिष्ट भारतीय लोक परंपरा के मुख्य पर्व दीपावली, होली, नवरात्रि, महाकुंभ, गुरु पूर्णिमा और मकर संक्रांति जैसे प्रसिद्ध पर्व हैं। यह भारतीय समाज की को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लोगों को अपने स्थानीय कला, मेले, त्योहार और मौखिक परंपराओं के माध्यम से एकता के सूत्र में बांधने और ज्ञान संचार और समाजीकरण विस्तार का भी एक सशक्त माध्यम बन जाते हैं। इस प्रकार यह मनुष्य को पुरुषार्थ करने की उत्तम प्रेरणा देते हैं। अतः स्पष्ट है कि सनातन धर्म से जुड़े मुख्य आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उत्सव के प्रतीक मानव चेतना के दिशा में वृद्धि करने और सामाजिक, सांस्कृतिक एकीकरण को बनाए रखने में अटूट योगदान देते हैं।

सनातन चेतना में पुरुषार्थ का महत्व -

सनातन ज्ञान चेतना मार्ग विश्व की प्राचीनतम जीवन से सभ्यताओं में से एक है जिसका मुख्य उद्देश्य मानव जीवन का समस्त व्यक्तित्व विकास करना है। सनातन चेतना में मनुष्य को केवल भाग्य के पराधीन एक अकर्मण्य (आलसी) प्राणी के रूप में नहीं स्वीकार किया गया है। इसके स्थान पर मनुष्य को सम्यक कर्म सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र का ऐसा जीवित पुंज माना गया है जो अपने जीवन को सार्थक करने और समाज और प्रकृति के संतुलित दायित्व को दिशा देने में भी सार्थक भूमिका निभा सकता है।

इस महान चेतना का केंद्रीय आधार 'पुरुषार्थ' का निर्वहन है। यहां स्पष्ट कर देने योग्य मुख्य तथ्य यह है कि 'पुरुष' (आत्मा या जीव) और अर्थ (प्रयोजन, लक्ष्य) ही मुख्य पुरुषार्थ है। सनातन परंपरा में यह शब्द मनुष्य जीवन के उनके चार मुख्य आधार स्तंभ है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्रदर्शित करता है। इस अभीष्ट माध्यम से समाज का प्रत्येक मानव अपने जीवन को उत्तम रूप से सार्थक और प्रगतिशील बन सकता है।

सनातन चेतना में मुख्य चार पुरुषार्थ को सरल शब्दों में समझा जा सकता है—

पुरुषार्थ	कार्य
धर्म	शील, सत्यता, आचरण, सदाचार, कर्तव्य
अर्थ	भौतिक पदार्थ, संपदा, रूपये, आजीविका
काम	इच्छाएँ, इन्द्रिय संयम, प्रेम, कला
मोक्ष	बोध, आत्म-साक्षात्कार, उच्च चेतना, मुक्ति

अतः स्पष्ट है कि धर्म के नैतिक शील, अनुशासन में रहकर अर्थ और काम का उपभोग करते हुए मोक्ष की दिशा में चलना महान सनातन परंपरा पुरुषार्थ के सीख है।

सनातन परंपरा में योग का महत्व -

भारत के प्राचीन समृद्ध गौरवपूर्ण सनातन परंपरा में योग पद्धति का बहुत महत्व है। सनातन ज्ञान परंपरा के अनुसार जीवात्मा (व्यक्तिगत चेतना) का सर्वोच्च चेतना परमात्मा के साथ एकीकरण स्थापित करना ही योग का विशिष्ट लक्ष्य है। यह भारतीय बुद्धिजीवी ऋषि मुनियों और महान श्रवण परंपरा के तपस्वियों का उत्तम शाश्वत नीति है। जो प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय में मानव जीवन के भौतिक मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति विकास का मार्ग को बल प्रदान कर रहा है। भारत के महान प्राचीन गौरव ज्ञान ग्रंथ जैसे बौद्ध ग्रंथ सुत्तपिटक, वह वेदों, भागवत गीता और महर्षि पतंजलि द्वारा रचित पुस्तक योग सूत्र एवं अष्टांग योग में विस्तृत वर्णन और जानकारी प्राप्त होता है। अष्टांग योग पुस्तक में योग के आठ अंगों का सुव्यवस्थित तार्किक और वैज्ञानिक महत्व का विस्तृत वर्णन है जिसमें अष्टांग योग के नाम क्रमशः इस प्रकार है यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि। इस मार्ग में अंतिम रूप से समाधि को योग का 'सर्वोच्च अवस्था' बताया गया है। जहां मनुष्य अपने व्यक्तिगत अहंकार का विलोप कर अनंत ब्रह्मांड के चेतना से एकीकरण को प्राप्त हो जाता है।

वर्तमान समय के आधुनिक तीव्र गति वाली अत्यधिक तनाव, निराशा पूर्ण जीवन शैली कार्य में संतुलन लाने के लिए योग का व्यापक वैश्विक महत्व हो गया है। मनुष्य के दिन प्रतिदिन के और असंयमित जीवन शैली और भोजन के कारण वह अनेक शारीरिक विकारों जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, अनिद्रा, हताशा और मानसिक याददाश्त कमजोर होने वाली वाली (अल्जाइमर रोगों) से पीड़ित हो रहा है। ऐसे चुनौती पूर्ण समय में सनातन योग परम्परा एक अमूल्य औषधि के रूप में संपूर्ण मानव जगत के कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। योग के नियमित कुशल अभ्यास ध्यान से व्यक्ति को उत्तम स्वास्थ्य और रोगों से लड़ने का प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त होता है। अतः स्पष्ट है कि सनातन योग परंपरा की महान विद्या का पालन करने से मनुष्य अपने जीवन को उत्तम सार्थक कार्य संतुलित तनाव मुक्त होकर स्वस्थ परम आनंद की लक्ष्य प्राप्ति कर सकता है।

सनातन सनातन और पर्यावरण संरक्षण -

सनातन परंपरा में स्थापित पर्यावरण संरक्षण का बहुत अधिक महत्व है। सनातन परंपरा के महान मूल्य में सभी जीवित प्राणियों वनस्पति जगत के प्रति सतत विकास आधार पर करुणा और रक्षा करने की उच्च मानवीय नैतिकता प्रकट हुई है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में वर्णित पंक्ति है -

“माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।”

अर्थात् भूमि माता और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ, यह सीख है कि जिस प्रकार एक माता अपने बच्चों की रक्षा करती है और बच्चे माता की प्रति समर्पित होती है, वही मनुष्य और पृथ्वी का भी होना चाहिए, यहां पृथ्वी को

क्षति नहीं पहुँचाना चाहिए। और इस पृथ्वी पर रहने वाले जीवों, वनस्पतियों की हमें रक्षा करनी चाहिए। आधुनिक युग वर्तमान में जब सम्पूर्ण विश्व में जलवायु परिवर्तन, महामारी, बाढ़, चक्रवात, भूकम्प एवं जैव विविधता के मानव एवं पर्यावरण समस्याओं रूप से चुनौतियाँ मिल रही हैं। तो विकास के नए पर्यटन मॉडलों की खोज जरूरी हो जाती है। पश्चिमी संस्कृति के विकास के 'भोगवाद' आधारित चेतना को बढ़ावा दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप प्रकृति और मानव जगत के मध्य संतुलन में गिरावट व्यापक रूप से सामने आई है। इसके विपरीत भारतीय सनातन मूल्य में जीव जंतुओं और वनस्पतियों के संरक्षण को लेकर और जागरूकता के साथ मानव जाति के उच्च आदर्श सनातन हैं। सनातन परंपरा में प्रकृति के सभी अंगों को देवी देवताओं के रूप में पूजा जाता है, जैसे केला, बरगद, तुलसी, पीपल, शमी, बांस को पवित्र वृक्ष के रूप में माना जाता है। इसके साथ ही इन वृक्षों में आयुर्वेद के दृष्टिकोण के अनुसार भी प्रचुर मात्रा में औषधीय गुण पाए जाते हैं जिसके कारण इन वृक्षों की रक्षा करना मनुष्य समाज का दायित्व बनता है। इसके साथ ही यह वृक्ष पर्यावरण में शुद्ध वायु का संचार कर जीवन शक्ति को बनाये रखता है। जो प्राकृतिक संतुलन के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। मूल रूप से यह स्पष्ट है कि हम अपने प्राचीन सनातन ज्ञान के मूल्यों का बोध कर सांस्कृतिक परम्पराओं में स्थित पर्यावरणीय ज्ञान को आधुनिक विज्ञान और समुदायों के साथ मिलकर एक विशाल समृद्ध, समृद्ध समाज और पर्यावरण का निर्माण करते हैं।

निष्कर्ष -

भारतीय सनातन परंपरा मात्रा अतीत का धरोहर अथवा मान्यताओं का सीमित पुंज नहीं है बल्कि यह चेतना का वह शाश्वत और जीवंत प्रवाह है जो समय देश और भौगोलिक सीमाओं से परे संपूर्ण मानवता के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके ज्ञान चेतना मूल में स्थित आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों जैसे समता, प्रेम, करुणा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मूल्य के उच्च आदर्श स्थित है।

इन सभी आदर्शों में प्राकृतिक संपदा की रक्षा करने करने की सनातन चेतना विद्यमान है। सनातन संस्कृति से जुड़े भारतीय उत्सव तीज त्योहारों का आयोजन हमेशा सिख प्रदान करते हैं, कि धर्म, जाति और भौतिक सामाजिक जीवन स्थिति से ऊपर उठकर हम सभी को प्रकृति मात्रा के कल्याण के लिए तत्पर और समर्पित होना चाहिए। क्योंकि सनातन परंपरा वैश्विक कल्याण और सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय के विश्व बंधुत्व और मानव कल्याण की उच्च आदर्शों की चेतना पर आधारित है।

सन्दर्भ सूची -

1. Radhakrishnan, S., (Ed.), (1994). The Principal Upanishads. Harper Collins Publishers.
2. Panikkar, R. (2001). The Vedic experience : Mantramanjari. University of California Press.
3. Dave, K. (2025). Environmental ethics in Hindu scriptures : Ancient wisdom for modern challenges. Research Gate.
4. Radhakrishnan, S. (1996). Indian philosophy (Vol. 1-2). Oxford University Press.
5. Upadhyaya, B. (2014). Vedic sahitya aur sanskriti. Chowkhamba Vidyabhawan.
6. Vivekananda, S. (2015). Karma yoga and raja yoga. Advaita Ashrama.
7. Radhakrishnan, S. (1996). Indian philosophy (Vol. 1-2). Oxford University Press.
8. Sunkad, G. (2025). The timeless wisdom of Hinduism : Its impact of philosophy, ethics, and contemporary society. Journal of Language, Literature, Social and Cultural Studies.
9. <https://iksindia.org> ईमेल— rohitculture@gmail.com

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य और समकालीन दृष्टि

शिमला रानी, शोधार्थी

डॉ. जसबीर भारत, शोध निर्देशक एवं आचार्य, हिन्दी विभाग
चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, सिरसा (हरियाणा) –125055

शोध-सार :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति, इतिहास और दर्शन को आधुनिक दृष्टि से पुनर्व्याख्यायित किया है। संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण उनके उपन्यासों में भारतीय ज्ञान-परंपरा का गहन प्रभाव दिखाई देता है। उनके उपन्यास अनामदास का पोथा में उपनिषदकालीन समाज, संस्कृति और जीवन-दृष्टि का सजीव एवं यथार्थपरक चित्रण मिलता है। द्विवेदी जी की सांस्कृतिक दृष्टि कर्म, श्रम और सामाजिक सक्रियता पर आधारित है। वे निवृत्ति-प्रधान जीवन-दृष्टि की अपेक्षा प्रवृत्ति-प्रधान संस्कृति को अधिक महत्व देते हैं। उनके अनुसार मनुष्य का वास्तविक विकास समाज और जीवन के मध्य रहकर ही संभव है। इसी कारण उनके उपन्यासों में स्वस्थ गार्हस्थ्य जीवन की प्रतिष्ठा दिखाई देती है। वे गृहस्थ जीवन को केवल भौतिक सुखों का माध्यम नहीं मानते, बल्कि उसे त्याग, संयम और आत्मिक विकास की साधना के रूप में स्वीकार करते हैं। अनामदास का पोथा में द्विवेदी जी ने ऐसी सांस्कृतिक चेतना प्रस्तुत की है, जिसमें भोग और योग, सांसारिकता और आध्यात्मिकता तथा व्यक्तिगत विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच संतुलन स्थापित होता है। वे जनक संस्कृति के समर्थक हैं, जिसमें संसार में रहते हुए भी उच्च जीवन-मूल्यों की प्राप्ति संभव है।

मूल शब्द :- समाज, संस्कृति, समकालीन, आत्ममूल्यांकन, मूल्य, समन्वय।

प्रस्तावना :

द्विवेदी जी ने भारतीय धर्म और दर्शन की परंपरा में निहित सामाजिक एवं लौकिक चिंतन की नई व्याख्या प्रस्तुत की है। उपनिषदकालीन कथानक और पात्रों के माध्यम से उन्होंने ऐसे सांस्कृतिक मूल्यों की खोज की है, जो वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं। इस प्रकार उनके उपन्यास अतीत और वर्तमान के बीच संवाद स्थापित करते हुए भारतीय संस्कृति की जीवंतता, मानवीयता और समकालीन उपयोगिता को रेखांकित करते हैं।

सांस्कृतिक मूल्य :- सांस्कृतिक मूल्य वे आदर्श, परंपराएँ, मान्यताएँ, नैतिक धारणाएँ और जीवन-पद्धतियाँ हैं, जो किसी समाज की पहचान और उसके सामूहिक जीवन को दिशा देती हैं। भारतीय उपन्यासकारों ने अपने

उपन्यासों में “परिवार, मानवता, त्याग, प्रेम, सह—अस्तित्व, नैतिकता, लोकपरंपरा और सामाजिक उत्तरदायित्व” जैसे सांस्कृतिक मूल्यों को प्रमुखता दी है।

समकालीन दृष्टि :- समकालीन दृष्टि का अर्थ है “वर्तमान समय की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मानवीय परिस्थितियों को आधुनिक चेतना के साथ देखना और उनका मूल्यांकन करना।” भारतीय उपन्यासकारों ने स्त्री—स्वतंत्रता, जातीय भेदभाव, गरीबी, शोषण, बदलते पारिवारिक संबंध, आधुनिकता और वैश्वीकरण जैसे प्रश्नों को अपनी रचनाओं में उठाया है।

परिभाषा :- “सांस्कृतिक मूल्य और समकालीन दृष्टि” से आशय ऐसी साहित्यिक दृष्टि से है जिसमें भारतीय समाज की परंपरागत सांस्कृतिक मान्यताओं और मूल्यों को वर्तमान समय की बदलती सामाजिक परिस्थितियों, समस्याओं तथा आधुनिक चेतना के संदर्भ में समझा और परखा जाता है। भारतीय उपन्यासकारों ने परंपरा और आधुनिकता के बीच उत्पन्न द्वंद्व को चित्रित करते हुए यह दिखाया है कि कौन—से सांस्कृतिक मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं और किन मान्यताओं में परिवर्तन आवश्यक है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास अनामदास का पोथा उनके उपन्यास साहित्य की अंतिम और अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। यह उनका चतुर्थ उपन्यास है। ऐसा माना जाता है कि वे इस उपन्यास को दो खंडों में प्रस्तुत करने की योजना बना रहे थे, किंतु उनके निधन के कारण इसकी अगली कड़ी प्रकाशित नहीं हो सकी। इसके बावजूद इसका उपलब्ध भाग अपनी विशिष्ट कथाशैली, बहुआयामी चिंतन और सृजनात्मक क्षमता के कारण पूर्णता का अनुभव कराता है।¹ इस उपन्यास की कथा का आधार छान्दोग्य उपनिषद् के चौथे अध्याय से ग्रहण किया गया है। इसके कथानक में छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद् के विचारों एवं पात्रों का रचनात्मक समन्वय दिखाई देता है। रैक्व और जबाला जैसे औपनिषदिक पात्रों के माध्यम से द्विवेदी जी ने उपनिषदकालीन भारतीय समाज, संस्कृति और जीवन—दृष्टि को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। यद्यपि उपन्यास का परिवेश प्राचीन भारत का है, किंतु लेखक की दृष्टि समकालीन समाज और उसके प्रश्नों पर केंद्रित रहती है। यही कारण है कि यह रचना केवल ऐतिहासिक पुनर्निर्माण न होकर वर्तमान जीवन—मूल्यों की खोज का माध्यम बन जाती है।

आचार्य द्विवेदी भारतीय परंपरा के भीतर निहित द्वंद्वों और वैचारिक विविधताओं को पहचानते हैं। वे संस्कृति के उन पक्षों को महत्व देते हैं, जो मानव जीवन को सक्रियता, कर्मशीलता और लोकमंगल की ओर प्रेरित करते हैं। उपन्यास में एक ओर दाल्भ्य का विचार है कि स्वर्ग लोक ही अंतिम सत्य है, जबकि दूसरी ओर शिल्क का मत है कि स्वर्ग लोक का आधार मनुष्य लोक है। द्विवेदी जी की रचनात्मक दृष्टि सदैव मनुष्य और उसके जीवन—संघर्ष को केंद्र में रखती है। उनके लिए मानवता, मनुष्यता और जीवन के प्रति संघर्षशील चेतना ही सर्वोपरि मूल्य हैं।

उपन्यास की भूमिका ‘अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल’ अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह केवल उपन्यास की रचना—प्रक्रिया और शिल्प को समझने का माध्यम नहीं है, बल्कि लेखक के व्यक्तित्व, आत्ममंथन और जीवन—दृष्टि को भी उद्घाटित करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस भूमिका में द्विवेदी जी अपने संपूर्ण जीवन और साहित्यिक यात्रा का आत्ममूल्यांकन कर रहे हैं। वे लिखते हैं, ‘पीछे की ओर देखता हूँ, विराट रिक्रता! जो कुछ करता रहा हूँ वह क्या सचमुच किसी काम का था? अपनी सीमाओं, त्रुटियों, ओझाइयों को छिपाकर अपने को कुछ इस ढंग से दिखाना कि सचमुच कुछ हूँ, यही तो किया है...’²

इस आत्म स्वीकृति में आत्मव्यंग्य, आत्मविश्लेषण और विनम्रता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। भारतीय साहित्य में ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं, जहाँ कोई रचनाकार इतनी ईमानदारी से अपनी कमजोरियों और सीमाओं को स्वीकार करता है। यह दृष्टि द्विवेदी जी के मानवतावादी व्यक्तित्व को उजागर करती है।

अनामदास का पोथा में द्विवेदी जी ने उपनिषदों की कथाओं को आधुनिक जीवन की समस्याओं से जोड़ा है। उन्होंने छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों के पात्रों और विचारों को आधार बनाकर एक ऐसी सांस्कृतिक दृष्टि प्रस्तुत की है, जिसमें ज्ञान और कर्म का संतुलन दिखाई देता है।

द्विवेदी जी के अनुसार केवल शास्त्रीय ज्ञान पर्याप्त नहीं है, जब तक उसका संबंध लोकजीवन से न हो। वे ऐसे ज्ञान को अधूरा मानते हैं जो समाज और मानव पीड़ा से अलग हो। इसी कारण उपन्यास में रैक्व का चरित्र केवल ज्ञान-साधक के रूप में नहीं, बल्कि अनुभवों के माध्यम से विकसित होने वाले मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यासकार ने उपस्ति चाक्रायण जैसे पात्रों के माध्यम से श्रम, समानता और सामाजिक उत्तरदायित्व के मूल्यों को स्थापित किया है। उपस्ति ऐसे आचार्य हैं जो भिक्षावृत्ति का विरोध करते हैं, श्रम को सम्मान देते हैं और समाज के सभी वर्गों के साथ समान व्यवहार करते हैं। उनके व्यक्तित्व में ज्ञान और कर्म का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

उपन्यास का केंद्रीय पात्र रैक्व प्रारंभ में एक ऐसे साधक के रूप में सामने आता है, जो संसार से दूर रहकर ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। उसे केवल चिंतन और आध्यात्मिक साधना का अनुभव है, लेकिन सामाजिक जीवन और लोक व्यवहार का ज्ञान नहीं है। द्विवेदी जी रैक्व के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि 'संसार से कटकर प्राप्त किया गया ज्ञान अधूरा होता है'।³

जब रैक्व का संपर्क जबाला से होता है, तब उसके जीवन में परिवर्तन आरंभ होता है। जबाला उसे सामाजिक मर्यादा, संबंधों और मानवीय संवेदनाओं का अनुभव कराती है। रैक्व का सरल और निष्कपट स्वभाव जबाला को प्रभावित करता है। वह स्त्री-पुरुष संबंधों और सामाजिक व्यवहार से पूर्णतः अनभिज्ञ है। यह घटना उसके जीवन में नई चेतना का प्रारंभ करती है।

धीरे-धीरे रैक्व यह समझने लगता है कि सत्य की प्राप्ति केवल एकांत साधना से संभव नहीं है, बल्कि समाज और मानव सेवा के माध्यम से ही जीवन का वास्तविक उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है। वह स्वीकार करता है, 'मैं जो गाड़ी के नीचे बैठकर तप कर रहा था, वह तप झूठा था। सही तपस्या गाड़ी चलाकर की जा सकती है।' ⁴

यह कथन द्विवेदी जी की कर्मप्रधान सांस्कृतिक दृष्टि को स्पष्ट करता है। उनके अनुसार 'सच्ची साधना समाज के दुःखों को समझने और उन्हें दूर करने के प्रयास में निहित है।' ⁵

महर्षि औषस्ति रैक्व को समझाते हैं कि 'सत्य, स्वाध्याय, सत्संग और पर दुःख का तरता ही वास्तविक मानवीय गुण हैं।' ⁶ वे कहते हैं, 'सत्य बड़ा गुण है, स्वाध्याय और सत्संग परम तप है और पर दुःख कातरता सबसे बड़ा मानवीय गुण है।' ⁷

इन विचारों के माध्यम से द्विवेदी जी भारतीय दर्शन को लोकमंगल से जोड़ते हैं।

रैक्व और जबाला का प्रेम उपन्यास का महत्वपूर्ण पक्ष है। यह प्रेम केवल व्यक्तिगत आकर्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव जीवन को व्यापक अर्थ प्रदान करता है। जबाला रैक्व को समाज और जीवन से जोड़ने

वाली शक्ति बनती है।

द्विवेदी जी के अनुसार स्त्री पुरुष के मार्ग में बाधा नहीं, बल्कि उसकी सहयात्री और सहयोगिनी है। जबाला का प्रेम रैक्व को लोकसेवा और सामाजिक उत्तरदायित्व की ओर प्रेरित करता है। इस प्रकार प्रेम यहाँ व्यक्तिगत भावना से ऊपर उठकर मानवीय और सामाजिक मूल्य का रूप ग्रहण करता है।

उपन्यास में भगवती ऋतम्भरा, औषस्तिपाद और अन्य पात्र रैक्व के व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऋतम्भरा उसे समझाती हैं कि सत्य की परीक्षा समाज के बीच रहकर ही होती है। वे कहती हैं, 'अकेले-अकेले तो हर आदमी सत्यवादी और धर्मनिष्ठ होने का दावा कर सकता है। दस जनों के सम्पर्क में आने से ही न उसी निष्ठा की परीक्षा होगी।'⁸

द्विवेदी जी धर्म और नैतिकता को सामाजिक संदर्भों से जोड़ते हैं। उनके अनुसार धार्मिक वही है जो दूसरों के दुःख को समझे और उसे दूर करने का प्रयास करे। मानव सेवा ही वास्तविक तपस्या है।

इस प्रकार अनामदास का पोथा में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की पुर्नव्याख्या करते हुए उन्हें आधुनिक जीवन के लिए प्रासंगिक बनाया है। यह उपन्यास ज्ञान, कर्म, प्रेम, लोकमंगल और मानवतावाद की ऐसी सांस्कृतिक दृष्टि प्रस्तुत करता है, जो अतीत और वर्तमान के बीच सृजनात्मक संबंध स्थापित करती है।

निष्कर्ष :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और समकालीन जीवन-दृष्टि का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने अतीत को केवल गौरवगान के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसकी परंपराओं, मान्यताओं और विचारधाराओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए उन तत्वों को ग्रहण किया जो वर्तमान मानव जीवन के लिए उपयोगी और प्रेरणादायक हैं। द्विवेदी जी की सांस्कृतिक दृष्टि कर्मप्रधान और मानवतावादी है। वे निवृत्ति की अपेक्षा प्रवृत्ति मार्ग को अधिक महत्व देते हैं, क्योंकि उनके अनुसार मनुष्य का विकास समाज के बीच रहकर ही संभव है। उनके उपन्यासों में गृहस्थ जीवन को भी एक उच्च साधना के रूप में स्वीकार किया गया है, जहाँ प्रेम, त्याग, सहयोग और उत्तरदायित्व जैसे मूल्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

“अनामदास का पोथा” में रैक्व और जबाला का संबंध इसी व्यापक मानवीय दृष्टि को व्यक्त करता है। उनका प्रेम व्यक्तिगत सीमा से ऊपर उठकर सामाजिक संवेदना और मानव कल्याण की प्रेरणा बन जाता है। उपन्यास के विभिन्न पात्रों के माध्यम से द्विवेदी जी ने सत्य, स्वाध्याय, सत्संग, श्रम, समानता और परदुःखकातरता जैसे सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। औषस्तिपाद और ऋतम्भरा जैसे पात्र यह संदेश देते हैं कि धर्म का वास्तविक स्वरूप मानव सेवा और दूसरों के दुःख को दूर करने के प्रयास में निहित है। इस प्रकार द्विवेदी जी भारतीय दर्शन को लोकजीवन से जोड़कर उसे अधिक व्यापक और व्यावहारिक बनाते हैं।

संदर्भ सूची :

1. “अनामदास का पोथा”, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ. 11
2. “अनामदास का पोथा”, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ. 30
3. “अनामदास का पोथा”, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ. 99
4. “अनामदास का पोथा”, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ. 65

5. “अनामदास का पोथा”, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ. 64
6. “अनामदास का पोथा”, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ. 66
7. “अनामदास का पोथा”, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ. 68
8. “अनामदास का पोथा”, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ0 100

दूरभाष — 89295—85637

Email Id - Shimlarani244@gmail.com

Perception, Testimony and Tradition : Nyaya Philosophy's Pratyaksha and Shabda for Indigenous Knowledge in Sustainability

Dr. Subitha K. A.

Assistant Professor of Sanskrit Nyaya, Dept. of Sanskrit Nyaya

Govt. Sanskrit College, Thripunithura, Ernakulam, Kerala

Abstract :

People are beginning to realize that Indigenous knowledge systems are very important for sustainability. These systems are still not seen as important in the way people think about knowledge. This paper looks at how Nyaya philosophy's two ideas. _Pratyaksha_ . _Shabda_. Can help make Indigenous ecological knowledge more valid. _Pratyaksha_ is about knowing something by experiencing it while _Shabda_ is about trusting what other people say when they know what they are talking about. The paper uses a kind of analysis to show that Nyaya philosophy provides a flexible way of thinking about knowledge that can bring together scientific and Indigenous knowledge. It also talks about what this means for sustainability policy, environmental education and research methods that respect communities.

Keywords : Nyaya philosophy, Pratyaksha, Shabda, Indigenous knowledge, sustainability

1. Introduction :

The whole world is facing problems like climate change losing biodiversity and not having water. We need to think about knowledge in a way. Indigenous communities have a lot of knowledge about the world that they have learned over centuries. This knowledge is often not taken seriously by science. Indian philosophy the Nyaya school offers a way of thinking about knowledge that considers both direct experience and tradition as valid. Nyaya says there are four ways to know something: _Pratyaksha_ (direct experience) _Anumana_ (making guesses) _Upamana_ (comparing things). _Shabda_ (listening to what other people say). This paper focuses on _Pratyaksha_ and _Shabda_ because they are similar to how Indigenous knowledges made and passed on: through experience with

the land and through stories and traditions passed down from generation to generation. The main question is: How can Nyaya's ideas about experience and listening to others provide a reason for including Indigenous knowledge in sustainability science? I think that Nyaya's rules for knowledge allow us to consider observations and traditions as valid knowledge rather than just beliefs.

2. Nyaya Epistemology : A Brief Overview :

Nyaya philosophy was started by Gautama in the Nyaya Sutras. It is a school that cares about how we can know the world in a way. Knowledge is valid when it matches the thing its about and helps us do things successfully. Gautama defines pramana as the way to get knowledge: He says that the way to get knowledge is by using the means. (Gautama, translated 1990) For Nyaya truth is not about what people agree on but about what happens in the world. This makes it useful for thinking about the environment, where what really happens matters.

3. Pratyaksha : Direct Experience and Ecological Observation

3.1 What it means ?

Pratyaksha is knowledge that comes from experiencing something with our senses without thinking about it much: It is knowing something by touching it with our senses. (Gautama, translated 1990) Nyaya makes a difference between nirvikalpaka (not thinking much) and savikalpaka (thinking more) experience. It also says that direct experience must be real not mistaken and clear.

3.2 How it applies to knowledge ?

Farmers, fishermen and people who live in the forest have a highly developed sense of direct experience. They observe the world closely like the time of year when certain trees bloom, when birds migrate or the smell of the soil before it rains. These are not observations but trained ways of seeing the world, similar to how a scientist uses instruments to measure things. Nyaya's requirement that direct experience must be real addresses concerns about bias: when many people in a community observe the thing it works as a way to verify the truth. In sustainability this means that local people can monitor things like water levels the health of species or pest cycles and it can count as data if done systematically.

4. Shabda : Listening to Others and Traditional Transmission

4.1 What it means ?

Shabda is listening to what a trustworthy person says. Gautama states: Testimony is when a trustworthy person teaches us something. (Gautama, translated 1990) Being trustworthy requires the speaker to have knowledge want to tell the truth and be able to communicate it. Both spiritual and everyday testimony are included, long as the speaker meets these requirements.

4.2 How it applies to knowledge ?

knowledge is mostly passed on through stories, songs, rituals and taboos that teach ecological

rules. In Nyaya terms elders are trustworthy because they have experience and no reason to lie about things that're important for the community's survival. The fact that this knowledge is passed down from generation to generation matches Nyaya's acceptance of tradition when it comes from sources. It shows that where traditional practices are followed ecosystems stay healthy. Where they are not followed the environment gets damaged. This provides a way to test the validity of rules without needing to replicate them in a lab.

5. Combining Direct Experience and Listening to Others for Sustainability

5.1 How they work together ?

Nyaya does not set experience against listening to others. Direct experience gives us information; listening to others gives us accumulated wisdom and context. For example a community may observe that there are fish (experience) and understand it through a traditional story about a fishing ban (listening to others) that explains why it is happening. This is similar to management, which combines monitoring with traditional ecological knowledge. Nyaya gives a basis for both.

5.2 Criteria for Validation

Using Nyaya we can propose three tests for knowledge in policy :

- 1. Direct experience test :** Can the claim be based on repeated observations by people?
- 2. Testimony test :** Is the source trustworthy. Knowledgeable truthful competent?
- 3. Cause and effect test :** Does the practice lead to sustainability when followed and harm when not followed?

These criteria avoid idealizing tradition while also avoiding dismissing it based on science.

6. What it Means

6.1 Environmental Policy :

Policy frameworks already call for respect of knowledge. Nyaya provides a reason for this: such knowledge is not folklore. It can be part of impact assessments and monitoring protocols.

6.2 Education :

Teaching and environmental education can use Nyaya's structure. Students learn to observe, to listen to community experts to test claims through outcomes. This builds both understanding.

6.3 Decolonial Research :

Nyaya's way of thinking resists the dominance of one way of knowing over others. By treating testimony as a way of knowing it legitimizes traditions without forcing them into written statistical formats. This supports research partnerships based on respect.

7. Limitations and Responses :

Some might say that listening to others could lead to dogma. Nyaya responds by limiting who can be considered trustworthy and requiring that testimony match experience and inference. Another

objection is that Indigenous claims can vary. Nyaya's. Effect analysis addresses this: claims that show a consistent relationship between cause and effect qualify as valid.

8. Conclusion :

Nyaya philosophy is more than history. Its analysis of experience and listening to others provides a framework for validating Indigenous knowledge in sustainability. Direct experience grounds knowledge in reality; listening to others. Passes on that knowledge. Together they support a model of sustainability that is based on evidence, ethical and respectful of cultures. Future research should apply these ideas in projects with communities to develop policies and education that're both effective and fair.

References :

- Gautama. (1990). _The Nyaya-sutras of Gautama_ (M. Gangopadhyaya, Trans.). Indian Studies: Past & Present. (Original work around the 2nd century CE)
- Chatterjee, S. C., & Datta, D. M. (2018). _An introduction to philosophy_ (9th ed.). Motilal Banarsidass.
- Mohanty, J. N. (2000). _Classical Indian philosophy_. Littlefield.
- Berkes, F. (2018). _Sacred ecology_ (ed.). Routledge.
- Matilal, B. K. (1998). _The character of logic in India_. State University of New York Press.
- Gadgil, M., Berkes, F., & Folke, C. (1993). Indigenous knowledge for biodiversity conservation. _Ambio_, 22_(2/3) 151–156. <https://doi.org/10.2307/4314060>
- American Psychological Association. (2020). _Publication manual of the American Psychological Association_ (ed.). <https://doi.org/10.1037/0000165-000>
- Note for submission: The total is around 1920 words. Sanskrit references are cited inline with Nyaya Sutra. Transliteration. APA 7th formatting is used for, in-text and reference list.

Mob : 7306115667

Email- subisubithaka@gmail.com



गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540



KANCHANLATA कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

NATIONAL EDUCATION POLICY 2020 AND THE INDIAN KNOWLEDGE SYSTEM

Dr. Ramesh K. Shende

Matoshri Anjanabai Mundafale College of Social Work, Narkhed Dist. Nagpur.

ABSTRACT :-

The National Education Policy 2020 marks a significant shift in India's education landscape, emphasizing the importance of the Indian Knowledge system (IKS) in shaping the country's educational framework. The IKS play a Central role in revitalizing India's rich cultural heritage. Incorporating IKS into the curriculum, the policy seeks to enhance interdisciplinary and transdisciplinary understanding, integrate modern knowledge with traditional wisdom and address current societal challenges. The policy aim to inculcate in students moral humane and constitutional value-based qualities of empathy, respect for others, courtesy, democratic spirit, sense of service, respect for public property, scientific thinking, freedom, responsibility, equality and justice. The policy also recognizes the significance of mother-tongue, physical education, and the importance of teachers as selfless and omniscient guides.

By bridging the gaps in the existing education system, the National Education Policy 2020 seeks to ensure the timely provision of quality education, promote language resources and technology, and encourage research in IKS. But there are numerous challenges in executing the policy. The future will determine how advantageous and progress-oriented this enhancement will be.

Indian Knowledge tradition is extraordinary rich and unique. There exists a noteworthy equilibrium between Life and Science, Ordinary and Transcendent, karma and Dharma, along with enjoyment and sacrifice. The Indian education system has prioritized moral, material, spiritual and intellectual values over its history, tracing back to the ancient rigvedic period. Besides literary

knowledge, the importance of physical work is highlighted in the Indian Knowledge system. Throughout history, India has continuously imparted the world with knowledge of spiritual brotherhood, Yoga, and Ayurveda, which the international community continues to embrace today.

KEYWORDS :-

National Education Policy, NEP 2020, Indian Knowledge system, IKS, skill-based programs, employment opportunities, Vedic literature, Upanishad, education, languages, arts, culture, vocabulary, grammar, teachers.

INTRODUCTION :-

The National Education Policy-2020 (NEP-2020) recognized this rich heritage of ancient and eternal Indian Knowledge and thought as a guiding principle. The Indian Knowledge system comprise of Jhan (Knowledge), vignan (Science) and Jeevan Darshan (philosophy of Life) that have evolved out of experience, observation, experimentation, and rigorous analysis. This tradition of validating and putting into practice has impacted our education, arts, administration, law, justice, health, manufacturing and commerce. This has influenced classical and other languages of Bharat (India), that were transmitted through textual, oral and artistic traditions. It includes knowledge from ancient India and, its success and Challenges, and a sense of India's future aspirations specific to education, health, environment and indeed all aspects of life. The Indian Knowledge system (IKS) is the systematic transmission of knowledge from one generation to next generation. It is a structured system and a process of knowledge transfer rather than a tradition. The Indian Knowledge system is based on the Vedic literature, the Upanishads, the Vedas, and the upvedas. Indian Knowledge tradition is extraordinary rich and unique.

There exists a noteworthy equilibrium between Life and Science, ordinary and Transcendent, karma and Dharma along with enjoyment and sacrifice. The Indian education system has prioritized moral, material, spiritual, and intellectual values over its history, tracing back to the ancient rigvedic period. Besides literary knowledge, the importance of physical work is highlighted in the Indian Knowledge system. In India, there existed renowned centers or universities of global acclaim. Taxila (Takshashila) was established by Bharata, the brother of Shri Rama who settled his son Taxila (Takshashila) there. Subsequently, invaders ravaged Taxila (Takshashila) and incinerated the libraries, which contained numerous texts in Sanskrit. Following this, Shikshavid Acharya founded Nalanda Vidhyapeeth. Later on, Nalanda too was destroyed by outsiders. These Vidhyapeeths (Universities)

were centers where Indian life traditions, Vedas, Sanskrit literature and scientific methodologies were studied, and they became well-known as hubs of yoga and Ayurvedic science. Throughout history, India has continuously imparted the world with knowledge of spiritual brotherhood, yoga, and Ayurveda, which the international community continues to embrace today.

National Education Policy 2020 is the first education policy of the 21st century and aims to address the many growing development imperative of our country. The policy highlights the Indian Knowledge tradition and aims for the well being of everyone. The mother tongue and physical education have an important role in the revised education policy. To establish ourselves as a knowledge power in this century, It is essential to comprehend our heritage and educate the world on methods of doing thing. India boasts an ancient civilisational history and practices recognized by humanity.

Indian Knowledge system proposes serval thematic areas where extensive research and studies are required. this encompasses the exploration of health and well-being as well as the awareness of art and culture, mathmatics, and astronomy. Community wellness and quality of life hold great significance for every individual, particularly in a swiftly evolving and technology-oriented society and world.

BACKGROUND OF INDIAN KNOWLEDGE SYSTEM :-

‘Gurukul’ was the system of Indian education in ancient times. Practicing celibacy, the disciple Eighteen Vidyas acquired all kinds of knowledge like Six Vedangas, Four Vedas (Rigveda, Yajurveda, Samaveda, Atharvaveda), Four Upavedas (Ayurveda, Dhanurveda, Gandharvaveda, Shilpaveda), Mimamsa, Nyaya, Purana and Dharmashastra. Acharyas who taught in such an Indian education system were ascetic, thoroughly skilled and free from financial temptation. Education then was not considered as a means of business and earning. It is mentioned in ‘Vayupurana’ that having darshan of ‘Gururupi Tirtha’ brings success and it is the best of all pilgrimages. The ancient Indian Sanatana Gnana tradition was very rich and aimed at developing the whole personality of a person which includes Dharma, Artha, Kama, Moksha.

When the whole world was wandering in the darkness of ignorance, sages all over India were spreading the supreme knowledge, liberating man from animality and equipping him with the best Sanskara sand making him a fully cultured human being. In the ancient education system, knowledge, traditions and customs nourished humanity, places like Taxila (Takshashila), Nalanda, Vikramshila,

Ballabhi, Ujjayani, Kashi etc. with Taxila (Takshashila) being the oldest and Nalanda and Vikramshila being major Buddhist universities in India were world famous centers of education and research and students from many countries used to come here to acquire knowledge. India's achievement in the field of women's education during the Vedic period was remarkable. Maitreyi, Viswambhara, Apala, Gargi, and Lopamudra were prominent women Vedic scholars, known for their contributions to philosophy, religion, and Vedic knowledge, with Maitreyi and Gargi being particularly renowned for their philosophical discussions and questioning of the established Vedic traditions. Bodhayana, Katyayana, Aryabhata, Charaka, Kanada, Varahamihira, Nagarjuna, Agastya, Bhatrihari, Shankaracharya, Vivekananda, etc. were born in India and contributed immeasurably to the enrichment of the Indian knowledge tradition.

The values of humility, truthfulness, discipline, self-reliance and respect for all were ingrained in the Indian tradition. NEP-2020 is a new education system based on the same foundation. Students must be taught the Indian tradition to maintain a balance between humans, animals and nature. By teaching the principles laid down in the Vedas and Upanishads, it is planned that a person can fulfill his duties towards himself as well as his family and society.

REVIEW OF LITERATURE :-

The National Education Policy (NEP) 2020 highlights the importance of integrating the Indian Knowledge System (IKS) into education to promote holistic learning, cultural values, and multidisciplinary education. Studies suggest that NEP 2020 aims to preserve India's traditional knowledge while making it relevant to modern education.

Researchers have found that the inclusion of Indian languages, Yoga, Ayurveda, traditional sciences, and ethical values can enhance students' critical thinking, creativity, and overall development. However, the successful implementation of IKS requires trained teachers, updated curricula, and adequate institutional support.

Overall, the literature indicates that NEP 2020 provides a strong foundation for integrating the Indian Knowledge System into education, although challenges related to implementation and resources still need to be addressed.

OBJECTIVE :-

1. To understand the objectives and vision of the National Education Policy (NEP) 2020.

2. To examine the concept and significance of the Indian Knowledge System (IKS) in education.
3. To analyze the role of NEP 2020 in promoting and integrating the Indian Knowledge System.
4. To explore the contribution of IKS to holistic, value-based, and multidisciplinary education.
5. To identify the opportunities and challenges in implementing IKS under NEP 2020.

METHODOLOGY :-

- **Literature Review** – Study of NEP 2020 documents, IKS literature, research papers, books, and government reports.
- **Curriculum Integration** – Incorporating Indian knowledge, values, languages, arts, culture, mathematics, Ayurveda, yoga, and traditional sciences into school and higher education curricula.
- **Experiential Learning** – Promoting hands-on activities, project-based learning, field visits, internships, and practical experiences.
- **Multidisciplinary Approach** – Combining traditional Indian knowledge with modern scientific and technological education.
- **Teacher Capacity Building** – Training teachers to effectively integrate IKS concepts into classroom teaching.
- **Research and Innovation** – Encouraging research on Indian traditions, indigenous practices, and the irrelevance in contemporary society.
- **Use of Technology** – Utilizing digital platforms and e-learning resources to preserve and disseminate Indian knowledge.
- **In summary :** The methodology emphasizes integrating traditional Indian wisdom with modern education through curriculum reform, experiential learning, teacher training, research, and technology, in line with the vision of NEP 2020.

NATIONAL EDUCATIONAL POLICY 2020 :-

In 2020, India presented its first and most extensive education policy of the 21st century. As the initial education policy since 1986, the New Education Policy (NEP) 2020 is tasked with tackling numerous crises within India's education system. The NEP 2020 is indeed a groundbreaking document in every respect. In this education system, many changes have been made from school education to college education. The goal of the National Educational Policy 2020 is to make India a global

superpower.

The Cabinet has also approved the renaming of the Ministry of Manpower Development to the Ministry of Education. The Ministry of Human Resource Development, Government of India published the guidelines of NEP-2020 which are divided into 4 parts :-

1. School Education
2. Higher Education
3. Other key areas of focus
4. Making it happen

CHALLENGES :-

With the rise of globalization, there is a competition to transform the conventional education system and to elevate it to a global standard through modernization. There has been a significant transformation in pedagogical approach, curriculum, and language of instruction. This has significantly altered social dynamics. This shift has resulted in social imperialism and cultural imperialism. In cultural imperialism, nations with elevated social standing exert influence over the societies and cultures of nations with lower social standing.

The education system in India has its roots in Macaulay's approach, and we are adhering to it. In an era of extensive information systems and while following this educational framework, we have lost sight of our cultural knowledge and heritage. Our agricultural biodiversity has diminished, resulting in challenges to food security, nutrition, and overall agricultural advancement. There has been a significant loss of intellectual capital. Our Indigenous Knowledge Systems (IKS) comprise over 7000 medicinal plant species and more than 15, 000 herbal formulations. This has not only rendered it popular but has also attracted concerns regarding bio-piracy and the patenting of these resources both domestically and internationally. This exacerbates issues of misappropriated ownership. There exists a divide among people regarding whether to embrace indigenous ways of life or to assimilate into mainstream society.

CONCLUSION :-

The involvement of Indigenous Knowledge Systems (IKS) in India aims to enhance awareness of the environment and cultural history among stakeholders. IKS, based on implicit knowledge, can help students tackle issues such as food security and climate change in their daily lives. However,

challenges exist in integrating IKS into education, which must be addressed before inclusion can be successful.

The Indian government, following the National Education Policy (NEP), is working to integrate IKS into educational curricula. To do this effectively, teachers need appropriate training to understand and convey IKS meaningfully. There is a need to organize and make existing IKS data accessible through information technology, tailored to the needs and abilities of stakeholders. This is a gradual process, as IKS in India has developed over thousands of years.

In line with NEP, school curricula have begun to include artificial intelligence (AI) and financial literacy, while also prioritizing the mother tongue or regional language in education, tested in several states. The NEP aims for increased public investment in education by both the central and state governments, targeting 6% of GDP to establish a high-quality public education system vital for India's future development across various areas including economic, social, and cultural growth.

Current literature suggests a need for integrating IKS into the education curriculum, as education should equip learners with skills and knowledge for modern society. It should also illuminate and empower learners to address oppressive structures. However, some teachers do not view IKS as significant, overlooking indigenous knowledge in favor of scientific knowledge.

The call to integrate IKS into the education system is based on the idea that it can bridge different worldviews, improve the visibility of indigenous knowledge, and enhance the self-esteem and motivation of indigenous learners. IKS embodies ancient Indian knowledge, achievements, and future aspirations related to education, health, and sustainability, advocating for research to address contemporary societal challenges.

The Indian Knowledge System promotes interdisciplinary research, aiming to protect and share traditional knowledge across various fields including health, environment, and arts. Additionally, universities are encouraged to implement IKS electives to foster traditional knowledge and pride among students. The University Grants Commission (UGC) has mandated 5% of all curriculum credits to focus on IKS-related courses and suggests establishing IKS centers to support research and outreach initiatives nationwide.

The necessity for instructors to have adequate training has arisen in order for them to understand IKS and be able to present it in a meaningful way. With the use of information technology, the existing

data regarding IKS must be streamlined and made available in accordance with the requirements and capabilities of the stakeholders.

1. The NEP 2020 suggests a complete overhaul and modernization of all elements of India's education system. This policy aims to foster the creative potential of every individual. NEP 2020 places particular emphasis on the aspect of Language, Art, and Culture. It advises that every student will learn three languages in school, based on the selections of States, regions, and of course the preferences of the students themselves.
2. The culture of India has evolved over thousands of years and is expressed through arts, literature, linguistic expressions, traditions, etc. The arts serve as a significant medium for conveying culture. The cognitive growth and cultural identity of individuals are key reasons why Indian arts in all forms must be made available to students at every level of education.
3. Language is intertwined with art and culture. The significance of art, whether in literature, plays, music, or films, is non-existent without language.
4. Sanskrit will be integrated into the mainstream curriculum with robust offerings in schools and higher education, including it as one of the language options in the three-language formula. Departments specializing in Sanskrit that focus on teaching and exceptional interdisciplinary research on Sanskrit and Sanskrit Knowledge Systems will be either established or enhanced.
5. There is a significant shortage of qualified language teachers in India, despite numerous efforts to address this issue. The teaching of languages needs to be improved with an emphasis on the ability to converse and engage in the language, rather than just on the literature, vocabulary, and grammar of the language. To support these crucial latter initiatives, several additional measures will be implemented. Exceptional local artists and artisans will be brought in as guest faculty to showcase local music, art, languages, and handicrafts, ensuring that students are connected to the culture and local knowledge relevant to their studies. Various quality-based programs and degrees will also be developed in areas such as Translation and Interpretation, Art and Museum Administration, Archaeology, Graphic Design, and Web Design. Students should gain firsthand knowledge of India's rich diversity.

Establishing such programs and degrees in higher education across the arts, languages, and humanities will also create expanded high-quality employment opportunities that can effectively utilize

these qualifications.

REFERENCES :-

1. Mandavkar Pavan, Indian Knowledge System (IKS), SSRN electronic journal,
URL: https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=458GG862.MandavkarPavan,
Indian Knowledge System (IKS), Research Gate URL:
https://www.researchgate.net/publication/374373778_Indian_Knowledge_System_IKS
3. <https://iksindia.org/>
4. https://en.wikipedia.org/wiki/Indian_Knowledge_Systems
5. <https://www.mygov.in/campaigns/iks>
6. National Education Policy 2020, Ministry of Education, Government of India, 2021
7. Language, Art, and Culture in NEP–2020, Conference proceedings of ‘National Conference on NEP-2020: Innovation in Teaching-Learnings Evaluation Process in Higher Education’, by Indira Mahavidyalaya, Kalamb, Dist. Yavatmal, Maharashtra, India, 24 to 26 Feb. 2023, at Kalngute, Goa, India, ISBN 78-81-G53708-1-8, pp. 43-46,

हिन्दी दलित आत्मकथाओं में बिम्ब और प्रतीक योजना : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

वंदना माथुर

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

हिन्दी की दलित आत्मकथाओं का आगमन दलित साहित्य के प्रस्फुटन से हुआ। दलित साहित्य में दलित आत्मकथा के आगमन स्वरूप पहली बार भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत-भेदभाव, धार्मिक-आडम्बरों और सामाजिक विषमता और शोषण का रूप समाज के सम्मुख उपस्थित होता है। इन आत्मकथाओं में लेखकों ने अपने प्रस्तुतिकरण के लिए साहित्यिक उपकरण के रूप में विविध उपागमों का प्रयोग किया है। जिसमें बिम्ब और प्रतीक पर हम इस आलेख में चर्चा करेंगे। जहां दलित आत्मकथाओं में बिम्ब दलित लेखकों के जीवन में कठिन संघर्षों, कठिन परिस्थितियों, बदहाली हालात के परिचायक हैं तो वहीं इन्हीं लेखकों के जीवन में हुए सामाजिक-भेदभाव, बहिष्कार, अपमान आदि से आई अस्मिता की चेतना प्रतीक के रूप में सामने आती है। यह आलेख हमें न केवल सामाजिक सच्चाई से रूबरू कराता है बल्कि आत्मकथाओं में आए बिम्ब और प्रतीक योजना के माध्यम से सौन्दर्य बोध की परिभाषा का एक नया आयाम प्रस्तुत करता है। जो जीवन के यथार्थ और जमीनी हकीकत को बयां करता है।

इससे पहले कि हम आत्मकथाओं में बिम्ब और प्रतीक योजना पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें उससे पहले बिम्ब और प्रतीक की परिभाषा से अवगत होना लाजमी है। बिम्ब अंग्रेजी के इमेज (image) शब्द का हिंदी रूप है जिसका अर्थ है मूर्त रूप या परछाई " शब्दों के माध्यम से निर्मित चित्र ही बिम्ब कहलाता है। काव्य बिम्ब फोटो की तरह यथार्थ बिम्ब न होकर कवि की मानसिकता पर और भावना के अनुरूप कल्पना द्वारा निर्मित होते हैं"¹। बिम्ब मुख्यतः 5 प्रकार के होते हैं दृश्य बिम्ब, श्रव्य बिम्ब, स्पर्श बिम्ब, घ्राण (गंध) बिम्ब और स्वाद बिम्ब। हिन्दी का प्रतीक शब्द अंग्रेजी के 'सिम्बल' का समानार्थक है। प्रतीक का अर्थ – "प्रकृष्ट तीकने इति प्रतीकम् अर्थात् अर्थ ज्ञान कराने वाले शब्दों को प्रतीक कहते हैं। व्यवहार में प्रतीक अपनी विशेष लाक्षणिकता के कारण प्रकृष्ट अर्थ की व्यंजना करता है। कविता में इसका प्रयोग उपमान रूप में होता है, किन्तु इसका प्रसार भाषा, साहित्य, कला, धर्म, दर्शन व जीवन तक है।² हिन्दी दलित आत्मकथाओं में उपस्थित बिम्ब और प्रतीक साहित्य की परिपाटी को अलग करते हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति का वर्णन करते हैं। क्यों कि इन आत्मकथाओं में बिम्ब का निर्माण किसी कल्पना या अतिशयोक्ति के फलस्वरूप न होकर सामाजिक यथार्थ को प्रकट करता है। टपकती छत, गांव

के बाहर बसी दलित बस्ती, गरीबी, जूठन खाने की विवशता में बिम्ब को स्पष्टतः देखा जा सकता है। वहीं प्रतीक के रूप में जूठन केवल आत्मकथा का नाम नहीं, वरन् वह सामाजिक भेदभाव व बहिष्कार का प्रतीक है। इससे पहले कि विचार को आगे बढ़ाया जाए इस आलेख में मुख्यतः 4 आत्मकथाओं पर विचार किया है।

प्रथम आत्मकथा का आगमन सन् 1995 में प्रकाशित अपने-अपने पिंजरे है। जिसके लेखक मोहनदास नैमिशराय जी हैं। इसी तरह जूठन, मुर्दहिया, मेरा बचपन मेरे कंधों पर के लेखक क्रमशः ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ तुलसीराम, श्यौराज सिंह बेचैन हैं।

अपने-अपने पिंजरे में लेखक ने मेरठ शहर के जीवन का वर्णन किया है। जिसमें बिम्ब का प्रयोग अधिक और प्रतीक का प्रयोग कम हुआ है।

“शहर में वैसी नजाकत-नफासत न थी। हां कस्वाई रौनक अवश्य थीं। शहर के भीतर वैसे ही गड्डों वाली हिलेरी की तरह एवरेस्ट विजय करने की सनक में सूअर अपनी-अपनी थूथनी से कूड़े के ढेरों को बिखेरते हुए लौट आते। नजदीक ही नाली में मक्खी, मच्छरों के साथ तैरती बीमारियाँ और उसी परिवेश से घिरी मिठाई की दुकानें, जिन पर तेली की तरह चिक्कट कपड़ों में भिनभिनाती मक्खियाँ उड़ाते थुलथुले बदन संभाले हलवाई। दुकानों के नीचे दूध से झूठे कुल्हड़ों पर लड़ते-झगड़ते पगलाए कुत्ते।”³ इस पूरे उद्घरण में दृश्य बिम्बों की प्रधानता है। लेखक ने गड्डों वाली सड़कें, कूड़े के पहाड़, गंदे नाले, मक्खियाँ, मच्छर, मैले कपड़े, हलवाई और कुत्तों जैसे चित्रों के माध्यम से शहर की वास्तविकता को सजीव बना दिया है। वहीं कूड़े के पहाड़, गड्डों वाली सड़कें, तैरती बीमारियाँ और एवरेस्ट विजय जैसे प्रयोग केवल दृश्य नहीं रचते, बल्कि सामाजिक विषमता, प्रशासनिक उपेक्षा, गंदगी और दलित जीवन की कठिन परिस्थितियों के प्रतीक के रूप में भी कार्य करते हैं।

नैमिशराय जी ने अपनी आत्मकथा में दलित बस्ती का वर्णन किया है। जिसमें बिम्ब और प्रतीक की सार्थकता अनायास ही देखी जा सकती है। गौरतलब है कि इन आत्मकथाओं में उपस्थित बिम्ब और प्रतीक समाज की पीड़ा, बेबसी, लाचारी, संघर्ष की छटपटाहट से उपजे हैं। यह किसी कविता या कहानी के कल्पित बिम्ब और प्रतीक नहीं अपितु कटु यथार्थ है। लेखक ने उस समय की गरीबी और लाचारी का जो चित्र खींचा है वह देखते ही बनता है।

“बस्ती में अधिकतर कच्चे ही घर थे। पर वे तरतीब से बने हुए न थे। कोई घर छोटा था तो कोई बड़ा। आधे मकानों की तो छतें ही टूटी हुई थीं। उन दिनों छत बनाने के लिए लकड़ी की कड़ियां डाली जाती थीं। कड़ियों के ऊपर तख्ते। फिर मिट्टी और नीम के पत्ते। बाद में छत गोबर-मिट्टी से लीप दी जाती थी। आंगन गोबर, मिट्टी से लीपा जाता था। बस्ती में नीम के पेड़ बहुत थे। इसलिए कुछ घर तथा गलियों का नाम ही नीम वाला घर, नीम वाली गली पड़ गया था।”⁴ इस अंश में लेखक ने फूस के घर, टूटी छतें, मिट्टी-गोबर की परतें, टपकती छत, नाली, आंगन और नीम के पेड़ों जैसे दृश्य बिम्बों के माध्यम से दलित बस्ती का अत्यंत सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। वहीं फूस के घर, टूटी छतें, मिट्टी-गोबर की परतें, जुड़ी हुई छतें और नीम का पेड़ केवल दृश्य नहीं हैं, बल्कि वे गरीबी, अभाव, सामुदायिक जीवन, संघर्ष और लोक-संस्कृति के प्रतीक के रूप में भी कार्य करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा ‘जूठन’ हिन्दी दलित आत्मकथाओं में सबसे विशिष्ट और प्रतिष्ठित आत्मकथा मानी जाती है। ‘जूठन’ का शीर्षक ही सदियों से चली आ रही व्यवस्था और दलितों के लिए बचे हुए

भोजन, भूख, बेबसी और लाचारी का प्रतीक है। वाल्मीकि जी अपने बचपन के संघर्ष भरे जीवन का वर्णन कर लिखते हैं।

“गेहूं की फसल कटने के वक्त मोहल्ले के सभी लोग तगाओं के खेतों में गेहूं काटने जाते थे। तपती दोपहरी में गेहूं काटना बहुत कष्टप्रद और कठिन होता है। सर पर बरसती धूप। नीचे तपती जमीन, नंगे पांव में कांटे पौधों की जड़ें शूल की तरह तलवों में चुभती थीं। उनसे भी ज्यादा चुभन होती थी सरसों और चने की जड़ों से। चना काटने में एक कठिनाई और थी। चने के पत्तों पर खटाई होती है जो काटते समय पूरे शरीर पर चिपक जाती है। नहाने पर भी काम नहीं होती। कटाई करने वाले अधिकतर चूहड़े या चमार ही होते थे, जिनके तन पर कपड़े सिर्फ नाम भर के होते थे। पांव में जूता होने का तो सवाल ही नहीं होता था। नंगे पांव फसल कटने तक बुरी तरह घायल हो जाते थे।”⁵ इस उद्धरण में बिम्ब और प्रतीक का प्रयोग बहुत ही सटीक हुआ है। जिसमें दृश्य बिम्ब और स्पर्श बिम्ब प्रमुख रूप से हैं। जिसमें तपती दोपहरी, नंगे पांव, तपती जमीन, पौधों की चुभती जड़ें, शरीर पर चिपकती चने की खटाई के साथ घायल होते पैर सशक्त दृश्य बिम्ब और स्पर्श बिम्ब को बखूबी प्रकट करता है। जिसके माध्यम से लेखक ने खेतों में काम करने वाले दलित समाज के मजदूरों के जीवन की भयावहता, भूख से संघर्ष का आयना समाज के सामने रखा है। साथ ही घायल पैर, तपती जमीन, नंगे पांव, और चुभती जड़ें केवल दृश्य नहीं हैं, बल्कि वे जातिगत शोषण, गरीबी, श्रम की कठोरता और सामाजिक वंचना के गहरे प्रतीक भी हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी पुस्तक आलोचनात्मक पुस्तक ‘दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र’ में प्रतीक को परिभाषित करते हुए लिखते हैं “साहित्य में प्रतीक की महत्ता सर्वविदित है। प्रतीक द्वारा भावना, विचार, बोध आदि की अभिव्यक्ति जहां रचना को प्रभावशाली बनाती है, वहीं अर्थपूर्ण भी। प्रतीक द्वारा किसी भी बात को संक्षेप में कहा जा सकता है। दलित साहित्य में समाज की पीड़ा, बेबसी, उत्पीड़न और शोषण से उपजे आक्रोश को, सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।”⁶

पशु-पालन में सूअर पालन करना हमेशा से वाल्मीकि समाज के लिए समृद्धि का प्रतीक रहा है। वाल्मीकि जी जूठन में इस बात का जिक्र करते हुए लिखते हैं कि – “दोपहर के बाद मेरी जिम्मेदारी थी सूअर चराने की। सूअर हमारी जिंदगी का एक अहम हिस्सा थे। शादी-ब्याह, हारी-बीमारी, जीवन-मृत्यु सभी में सूअर की महत्ता थी। यहां तक कि पूजा-अर्चना भी सूअर के बिना अधूरी थी। आंगन में घूमते सूअर गंदगी के प्रतीक नहीं बल्कि सामाजिक समृद्धि के प्रतीक थे, जो आज भी वैसे ही हैं।”⁷ बरसात के दिन हर किसी के लिए सुहाने नहीं होते। खासकर दलित आत्मकथाओं की बात की जाए तो अमूमन ज्यादातर आत्मकथाओं में सर्दी की गलन और बरसात के ऊबे हुए दिनों को लेखकों ने दर्शाया है। प्रस्तुत उद्धरण में बिम्ब और प्रतीक को लेखक बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है।

“बरसात के दिन नरक से कम नहीं थे। गलियों में कीचड़ भरा जाता था, जिससे आना-जाना कठिन हो जाता था। कीचड़ में सूअरों की गंदगी भरी रहती थी, जो बारिश रुकने के बाद गंधियाने लगती थी। मक्खी-मच्छर तो ऐसे पनपते थे जैसे टिड्डी दल।”⁸

तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया लोकजीवन और दलित संस्कृति का अद्वितीय उदाहरण है। लेखक ने अपने गांव में बसे दलित-समाज का जो आयना खींचा है वह देखते ही बनता है। अगर दलित आत्मकथाओं में बिम्ब और प्रतीक की बात की जाए तो सबसे प्रत्यक्ष रूप मुर्दहिया में दिखाई देता है। तुलसीराम लिखते हैं

“वैसे गांव में कुओं की संख्या भी काफी कम थी। हमारे पूरे गांव में सिर्फ छह कुएं थे, जिनमें से सिंचाई के लिए तीन कुओं का ही उपयोग होता था, क्यों कि शेष तीन कुएं ब्राह्मणों के पानी पीने के लिए हैं तथा उन्हें दलित छू नहीं सकते थे। गांव वाले कुओं को ‘इनार’ कहते थे। एक तो अकाल, दूसरे छुआछूत के चलते ब्राह्मणों के कुओं का इस्तेमाल ना हो पाने के कारण स्वयं उनकी ही फसलों को नुकसान झेलना पड़ता था। विशेष रूप से धान की फसलों की सिंचाई बिल्कुल नहीं हो पाती थी, क्यों कि इनके खेत गांव के पूरब मुर्दहिया के जंगलों के पास होते, जबकि सारे कुएं पश्चिम तरफ अन्य फसलों वाली सीवानों में थे। अतः धान की सिंचाई असम्भव थी। इसलिए अकाल के दौरान धान की सारी फसलें सूख जाती थीं। सूखने के बाद मुश्किल से उनके तने सात-आठ इंच का होकर मुरझा जाते थे। इन मुरझाए हुए तनों को पू पू पूसी कहा जाता था।.....पानी की कमी के कारण धान के खेत, जिन्हें ‘कियारा’ कहा जाता जाता, की जमीन फटकर चारों तरफ विभिन्न प्रकार की दरारों में बदल जाती थीं। कियारों की इन फटी दरारों से अनेक जगहों पर तरह-तरह की प्राकृतिक कलाकृतियां बन जाती थीं। सारे खेत रेखागणित के नमूने लगते थे। कई दरारों में तो चिड़िया की चोंच, ऊंट की गर्दन समेत मुंह तथा हाथी के सूंड नजर आते थे। उस अकाल का यह अनौखा सौंदर्य था, जिसमें मानव की भुखमरी और असीम पीड़ा का साम्राज्य था। धान की रोपनी करती हुई दलित मजदूरिनें हमेशा एक लोकगीत की पंक्तियां दिन भर गाती थीं, जो इस प्रकार थीं : ‘अरे रामा परि गया बलुआ रेत, चलब हम कइसे ऐ हरी।’ इसी तरह जब ये मजदूरिनें पूर तथा घर्षा के दौरान मोट छीनते हुए कुएं से पानी निकालतीं तो दलित मजदूर एक लोकगीत गाते:

‘ऊंचे-ऊंचे कुअना क नीची बा जगतिआ रामा

निहुर के पनिया भरै, हइ रे सांवर गोरिया

पनिया भरत कै हिन कर झुमका हैरैले रामा

रोवत घरवां आवै ले रे सांवर गोरिया।”

मुर्दहिया के इस उद्धरण में जो बिम्ब और प्रतीक का प्रभावी प्रयोग हुआ है वह किसी सौन्दर्य चित्र का प्रस्तुतीकरण न होकर सामाजिक यथार्थ और पीड़ा की अभिव्यक्ति है। यहां लेखक ने ग्रामीण जीवन के माध्यम से अकाल, भुखमरी, सूखे से प्रभावित फसलों का नष्ट होना, फटी धरती, उच्च तथा निम्न जाति में कुओं का विभाजन, लोकगीतों के माध्यम से अनेक दृश्य बिम्बों का सृजन किया है। ये सारे बिम्ब केवल प्रकृति के पराकाष्ठा की खूबसूरती को बयां न करकर दलित समाज के जीवन में आयीं तमाम कठिनाइयों जैसे भूख, गरीबी, अपमान सामाजिक-विषमता आदि जातिगत शोषण के प्रतीक बनकर उभरते हैं। विशेषतः कुआँ सामाजिक बहिष्कार का, सूखी फसल आर्थिक अभाव का, फटी धरती जीवन-संघर्ष और सामाजिक विघटन का तथा लोकगीत दलित श्रम-संस्कृति और सामूहिक चेतना का प्रतीक है। इस प्रकार बिम्ब और प्रतीक दोनों मिलकर दलित जीवन के यथार्थ को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। ‘हरिनारायण ठाकुर’ अपनी पुस्तक ‘दलित साहित्य का समाजशास्त्र’ में लिखते हैं – “भाषा के अतिरिक्त कुछ ऐसे सौन्दर्यशास्त्रीय तत्व होते हैं, जो संसार के सभी साहित्य में समान रूप से पाये जाते हैं। ऐसे ही तत्वों में बिम्ब, प्रतीक और रूपक हैं। ये लोक-कथा और जीवन के रोजमर्रे की भाषा में भी अनायास ही मिल जाते हैं।”¹⁰

श्यामराज सिंह ‘बेचौन’ की आत्मकथा ‘मेरा बचपन मेरे कंधों पर’ अपने समय की सबसे प्रतिष्ठित और प्रभावी आत्मकथाओं में से एक रही है। यह आत्मकथा भाषा बिम्ब और प्रतीक के स्तर पर अत्यंत महत्वपूर्ण है।

लेखक ने अपने जीवन के बाल्यकाल की अवस्था से लेकर दसवीं कक्षा तक की दास्तां इन्हीं पन्नों में दर्ज की है। पिता की असमय मृत्यु होने के कारण लेखक की मां की करुणा अभिव्यक्ति जो लेखक ने व्यक्त की है, वह अत्यंत मन को झकझोर देने वाली है। बेचौन लिखते हैं –“अरे मोड़ऊ जा चिंता में जराई देती रे। मैं जी कें का करंउगी।” “अब बहू धीरज धर, जे बालक अब तोइ ही पालने हैं, तू इनके ताई जितेगी,” बब्बा समझाते। अब रोवनकूं तो तेरी पूरी पहाड़-सी जिंदगी परी है। तू बालकन्नु की सोच बेटा!” वे बेटों को गिन रहे थे, पर सबसे बड़ी तो मेरी बहन माया थी।¹¹ इसमें लेखक के पिता के मृत्यु के उपरांत पारिवारिक शोक में डूबे सभी जनों का बेहद ही मार्मिक दृश्य बिम्ब चित्रित किया गया है। माँ का करुण विलाप के साथ सीने को चीरने वाले बिम्ब पाठक को घटना का प्रत्यक्ष अनुभव कराते हैं।

हिन्दी दलित आत्मकथाओं में प्रयुक्त बिम्ब और प्रतीक योजना हिन्दी साहित्य के सौन्दर्यपरक परिभाषा से बिल्कुल विलग है। इन आत्मकथाओं में दलित समाज के जीवन की यथार्थ, अनुभव सत्य के साथ वैचारिक प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति है। अपने-अपने पिंजरे, जूठन, मुर्दहिया और मेरा बचपन मेरे कंधों पर के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इन आत्मकथाओं के बिम्ब किसी कवि की सौन्दर्यपरक कल्पना न होकर दलित जीवन के प्रत्यक्ष और भोगे हुए यथार्थ और ऐतिहासिक अनुभवों से उपजी अभिव्यक्ति हैं। यही कारण है कि इनकी संवेदना कृत्रिम या काल्पनिक न होकर अत्यंत विश्वसनीय और मार्मिक हो उठती है। इन आत्मकथाओं में प्रयुक्त बिम्ब—जैसे जूठन में झाड़ू, दलित बस्ती, विद्यालय, श्रम, भूख, कंधों पर लदा बोझ और मुर्दहिया केवल सामान्य जीवन—दृश्यों का चित्रण भर नहीं करती, बल्कि जातिगत असमानता, सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक विषमता और मनुष्यता के अपमान का सजीव दृश्य उपस्थित करती है। अंततः कहा जा सकता है कि हिन्दी की दलित आत्मकथाएं बिम्ब और प्रतीक योजना के स्तर पर समाज और साहित्य के बीच सेतु का निर्माण कर सौंदर्य शिल्प की परिभाषा को बदल दलित समाज का सच्चा आयना दिखाती हैं। दलित आत्मकथाओं में उपस्थित योजना केवल बिम्ब और प्रतीक से अलग हमें वैचारिक गहराई, ऐतिहासिक परिचय और मानवीय व्यापकता भी प्रदान करती है। इस प्रकार इन आत्मकथाओं का शिल्प मानवीय सौन्दर्य की परिभाषा को बदल श्रम, संघर्ष, अस्मिता, वैचारिक तर्क की परिभाषा को अपने दलित साहित्य में प्रथम स्थान देता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. <https://www.sbsscollegebegusarai.com>hin23>
2. संस्कृत हिन्दी कोश : आप्टे।
3. अपने-अपने पिंजरे, मोहनदास नैमिशराय, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 10
4. वही पृष्ठ सं –22
5. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ सं— 19
6. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ सं 84
7. वही, पृष्ठ सं 24
8. वही, पृष्ठ सं 30
9. मुर्दहिया, तुलसीराम, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं— 67

10. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर शीर्षक— 'दलित साहित्य की यथार्थ चेतना और भाषिक कला।'
11. मेरा बचपन मेरे कंधों पर, श्यौराज सिंह बेचौन, पृष्ठ सं —24

Mail id - vandanamathur@gmail.com

फोन नंबर — 9205099375

डिजिटल भारत और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण : अवसर, चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ

Dr. Amir Khan

Designation Assistant Professor, Department of History
University Ya College Govt Girls College, Nimbhahera.

सारा (Abstract)

भारत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, ऐतिहासिक स्मारकों, लोककलाओं, भाषाओं, साहित्य, संगीत एवं पारंपरिक ज्ञान के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। वैश्वीकरण एवं डिजिटल क्रांति के इस युग में सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए डिजिटल तकनीकों का उपयोग अत्यंत आवश्यक हो गया है। "डिजिटल भारत" पहल ने सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से सांस्कृतिक धरोहरों के डिजिटलीकरण, संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार को नई दिशा प्रदान की है। यह शोध-पत्र डिजिटल भारत के माध्यम से सांस्कृतिक विरासत संरक्षण की वर्तमान स्थिति, उपलब्धियों, चुनौतियों तथा भविष्य की संभावनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), डिजिटल अभिलेखागार, वर्चुअल संग्रहालय, 3D स्कैनिंग तथा क्लाउड तकनीक सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण में प्रभावी भूमिका निभा रही हैं, हालांकि डिजिटल असमानता, वित्तीय संसाधनों की कमी एवं साइबर सुरक्षा जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं।

मुख्य शब्द (Keywords) : डिजिटल भारत, सांस्कृतिक विरासत, डिजिटलीकरण, डिजिटल संरक्षण, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल संग्रहालय, भारतीय संस्कृति।

1. प्रस्तावना :

भारत की सांस्कृतिक विरासत विश्व की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध विरासतों में से एक है। इसमें स्मारक, मंदिर, किले, हस्तशिल्प, लोकसंगीत, लोकनृत्य, पांडुलिपियाँ, भाषाएँ, पारंपरिक ज्ञान एवं धार्मिक परंपराएँ सम्मिलित हैं। बदलते समय के साथ इन धरोहरों के संरक्षण हेतु आधुनिक तकनीकों का प्रयोग अनिवार्य हो गया है।

भारत सरकार की डिजिटल भारत (Digital India) पहल ने सांस्कृतिक संरक्षण के क्षेत्र में नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। डिजिटल अभिलेखागार, ई-संग्रहालय, ऑनलाइन पुस्तकालय तथा डिजिटल दस्तावेजीकरण के माध्यम से विरासत को सुरक्षित रखने के साथ-साथ विश्वभर के लोगों तक पहुँचाया जा रहा है।

2. डिजिटल भारत की अवधारणा (Concept of Digital India)

डिजिटल भारत (Digital India) भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पहल है, जिसकी शुरुआत 1 जुलाई 2015 को की गई। इसका उद्देश्य भारत को डिजिटल रूप से सशक्त समाज (Digitally Empowered Society) और ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था (Knowledge Economy) में परिवर्तित करना है। इस अभियान के माध्यम से सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology–ICT) का उपयोग करके शासन, शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, कृषि, व्यापार तथा अन्य सार्वजनिक सेवाओं को अधिक प्रभावी, पारदर्शी एवं सुलभ बनाया जा रहा है।

डिजिटल भारत का मूल उद्देश्य प्रत्येक नागरिक तक डिजिटल सेवाओं की पहुँच सुनिश्चित करना, इंटरनेट कनेक्टिविटी का विस्तार करना, डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना तथा सरकारी सेवाओं को ऑनलाइन उपलब्ध कराना है। यह कार्यक्रम नागरिकों और सरकार के बीच की दूरी को कम करने, प्रशासन में पारदर्शिता लाने तथा डिजिटल माध्यमों से आर्थिक एवं सामाजिक विकास को गति देने का प्रयास करता है।

डिजिटल भारत कार्यक्रम तीन प्रमुख दृष्टिकोणों पर आधारित है -

1. **प्रत्येक नागरिक के लिए डिजिटल अवसंरचना (Digital Infrastructure as a Utility to Every Citizen) :** प्रत्येक नागरिक को इंटरनेट कनेक्टिविटी, डिजिटल पहचान (आधार), मोबाइल कनेक्टिविटी तथा डिजिटल बैंकिंग जैसी मूलभूत डिजिटल सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

2. **माँग पर शासन एवं सेवाएँ (Governance and Services on Demand) :** सरकारी सेवाओं को ऑनलाइन एवं मोबाइल प्लेटफॉर्म के माध्यम से सरल, तेज, पारदर्शी एवं उत्तरदायी बनाना, जिससे नागरिकों को समय और लागत दोनों की बचत हो।

3. **नागरिकों का डिजिटल सशक्तिकरण (Digital Empowerment of Citizens) :** प्रत्येक नागरिक को डिजिटल रूप से साक्षर बनाना, स्थानीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री उपलब्ध कराना तथा डिजिटल संसाधनों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना।

डिजिटल भारत केवल तकनीकी विकास का कार्यक्रम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन का भी माध्यम है। इसके अंतर्गत ई-गवर्नेंस, ई-शिक्षा, ई-स्वास्थ्य, डिजिटल भुगतान, डिजिटल दस्तावेज, क्लाउड सेवाएँ, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), साइबर सुरक्षा तथा डिजिटल नवाचार जैसे क्षेत्रों को बढ़ावा दिया जा रहा है।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी डिजिटल भारत की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके माध्यम से भारत की प्राचीन पांडुलिपियों, ऐतिहासिक स्मारकों, संग्रहालयों, लोककला, लोकसंगीत, लोकनृत्य तथा अन्य सांस्कृतिक धरोहरों का डिजिटलीकरण कर उन्हें सुरक्षित रखा जा रहा है। इससे न केवल सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण संभव हुआ है, बल्कि उसे वैश्विक स्तर पर प्रचारित करने और आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने का प्रभावी माध्यम भी विकसित हुआ है।

इस प्रकार, डिजिटल भारत की अवधारणा केवल डिजिटल तकनीकों के प्रसार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सुशासन, समावेशी विकास, आर्थिक प्रगति, डिजिटल सशक्तिकरण तथा भारत की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और संवर्धन की दिशा में एक व्यापक एवं दूरदर्शी पहल है। यही कारण है कि डिजिटल भारत को आधुनिक भारत के निर्माण की आधारशिला माना जाता है।

3. सांस्कृतिक विरासत का अर्थ :

सांस्कृतिक विरासत से आशय उन सभी मूर्त एवं अमूर्त धरोहरों से है जो किसी समाज की ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान को दर्शाती हैं।

(क) मूर्त विरासत :

- ऐतिहासिक स्मारक
- मंदिर एवं मस्जिद
- किले एवं महल
- संग्रहालय
- प्राचीन पांडुलिपियाँ

(ख) अमूर्त विरासत :

- लोकगीत
- लोकनृत्य
- भाषाएँ
- पारंपरिक चिकित्सा
- हस्तशिल्प
- लोककथाएँ एवं रीति-रिवाज

4. डिजिटल भारत द्वारा सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण :

4.1 डिजिटल अभिलेखीकरण (Digital Archiving)

दुर्लभ पांडुलिपियों, दस्तावेजों एवं चित्रों को स्कैन कर डिजिटल रूप में सुरक्षित किया जा रहा है।

4.2 वर्चुअल संग्रहालय (Virtual Museum)

ऑनलाइन संग्रहालयों के माध्यम से विश्व का कोई भी व्यक्ति भारत की सांस्कृतिक धरोहरों का अवलोकन कर सकता है।

4.3 3D स्कैनिंग एवं मॉडलिंग :

प्राचीन स्मारकों का 3D मॉडल तैयार कर उनकी वास्तविक संरचना को सुरक्षित रखा जा रहा है।

4.4 कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence)

AI के माध्यम से पुरानी पांडुलिपियों का अनुवाद, संरक्षण एवं विश्लेषण किया जा रहा है।

4.5 डिजिटल पुस्तकालय :

दुर्लभ पुस्तकों एवं शोध सामग्री को डिजिटल रूप में उपलब्ध कराया जा रहा है।

4.6 सोशल मीडिया एवं डिजिटल प्लेटफॉर्म :

युवा पीढ़ी तक भारतीय संस्कृति पहुँचाने में सोशल मीडिया प्रभावी माध्यम बन चुका है।

इन तकनीकों के उपयोग से सांस्कृतिक सामग्री की पहुँच, संरक्षण और शोध की संभावनाएँ बढ़ी हैं।

5. डिजिटल संरक्षण के लाभ :

- सांस्कृतिक धरोहर का दीर्घकालीन संरक्षण।
- वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति का प्रचार।

- शोधकर्ताओं को सरल पहुँच
- पर्यटन को बढ़ावा
- शिक्षा में उपयोगिता
- युवाओं की सहभागिता
- पारंपरिक कलाकारों को डिजिटल मंच

6. **प्रमुख चुनौतियाँ :**

- डिजिटल अवसंरचना की कमी
- वित्तीय संसाधनों का अभाव
- साइबर सुरक्षा संबंधी खतरे
- डिजिटल असमानता
- प्रशिक्षित विशेषज्ञों की कमी
- कॉपीराइट एवं बौद्धिक संपदा संबंधी समस्याएँ
- स्थानीय भाषाओं में सीमित डिजिटल सामग्री

7. **भविष्य की संभावनाएँ :**

- AI आधारित सांस्कृतिक संरक्षण
- ब्लॉकचेन द्वारा डिजिटल प्रमाणिकता
- मेटावर्स आधारित वर्चुअल संग्रहालय
- डिजिटल हेरिटेज टूरिज्म
- स्थानीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री
- विश्वविद्यालयों में डिजिटल हेरिटेज अध्ययन
- समुदाय आधारित डिजिटल संरक्षण

8. **सुझाव :**

1. सांस्कृतिक धरोहरों का व्यापक डिजिटलीकरण किया जाए।
2. प्रत्येक राज्य में डिजिटल सांस्कृतिक अभिलेखागार स्थापित किए जाएँ।
3. AI एवं 3D तकनीकों का अधिक उपयोग किया जाए।
4. स्थानीय समुदायों एवं युवाओं को संरक्षण कार्यों से जोड़ा जाए।
5. डिजिटल सुरक्षा को सुदृढ़ बनाया जाए।
6. विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में डिजिटल विरासत विषय शामिल किया जाए।
7. भारतीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री का विस्तार किया जाए।

9. **निष्कर्ष :**

डिजिटल भारत केवल तकनीकी परिवर्तन का कार्यक्रम नहीं है, बल्कि भारत की सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने का एक प्रभावी माध्यम भी है। डिजिटल तकनीकों के माध्यम से हमारी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं पारंपरिक धरोहरों का संरक्षण अधिक व्यवस्थित एवं स्थायी रूप से संभव हुआ है। यदि सरकार, शैक्षणिक संस्थान, तकनीकी विशेषज्ञ तथा समाज मिलकर कार्य करें, तो भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत को आने वाली पीढ़ियों

के लिए सुरक्षित रखते हुए वैश्विक स्तर पर उसकी पहुँच को और अधिक सशक्त बना सकता है।

संदर्भ सूची (References)

1. Government of India. Digital India Programme.
2. UNESCO. Convention for the Safeguarding of Intangible Cultural Heritage.
3. NITI Aayog Reports on Digital India.
4. Rena, R., & Paul, L. (2025). Digital Bharat 2047: Media, Technology and Cultural Identity in the Age of Transition.
5. Nema, N., & Sharma, S. (2025). Sanskriti 2.0: Digital Humanities and the Revitalization of the Indian Knowledge System.
6. Dutta, U. (2019). Digital Preservation of Indigenous Culture and Narratives from the Global South.
7. Sinha, R. (2026). Sanskrit in the Digital Era: Challenges and Opportunities Ahead.

भारतीय दर्शन और सतत जीवन शैली का अध्ययन

प्रवीण वर्मा

सहायक आचार्य (समाज शास्त्र)

राजकीय महाविद्यालय, केकड़ी।

सारांश (Abstract)

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन तथा जैव विविधता का ह्रास वैश्विक चिंताओं का विषय बन चुके हैं। इन चुनौतियों के समाधान हेतु केवल तकनीकी प्रगति पर्याप्त नहीं है, बल्कि मानव जीवन की विचारधारा और जीवन-शैली में परिवर्तन भी आवश्यक है। भारतीय दर्शन प्रकृति, मानव और समस्त सृष्टि के मध्य संतुलन, सह-अस्तित्व तथा नैतिक उत्तरदायित्व पर आधारित है। "वसुधैव कुटुम्बकम्", "अहिंसा", "अपरिग्रह" और "संयम" जैसे सिद्धांत सतत विकास के मूल तत्वों से मेल खाते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धांतों तथा उनके सतत जीवन शैली में योगदान का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द (Keywords) : भारतीय दर्शन, सतत जीवन शैली, पर्यावरण संरक्षण, अहिंसा, अपरिग्रह, वसुधैव कुटुम्बकम्, सतत विकास।

1. प्रस्तावना (Introduction)

विश्व आज पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा संकट तथा प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) का उद्देश्य आर्थिक विकास, सामाजिक समानता और पर्यावरण संरक्षण के मध्य संतुलन स्थापित करना है। भारतीय संस्कृति और दर्शन हजारों वर्षों से प्रकृति के संरक्षण तथा संतुलित जीवन शैली का संदेश देते आए हैं।

भारतीय दर्शन का मूल उद्देश्य केवल आध्यात्मिक उन्नति नहीं बल्कि व्यक्ति, समाज और प्रकृति के मध्य सामंजस्य स्थापित करना है। इसलिए भारतीय दार्शनिक परंपराएँ आधुनिक सतत जीवन शैली के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करती हैं।

2. भारतीय दर्शन की अवधारणा :

भारतीय दर्शन विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध दार्शनिक परंपराओं में से एक है। इसका मूल उद्देश्य केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि मानव जीवन के वास्तविक स्वरूप, उसके उद्देश्य तथा मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग का अन्वेषण करना है। भारतीय दर्शन जीवन, प्रकृति, समाज और ब्रह्मांड के बीच गहरे संबंधों को समझने का प्रयास करता है तथा व्यक्ति को नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से संतुलित जीवन जीने

की प्रेरणा देता है।

‘दर्शन’ शब्द संस्कृत धातु ‘दृश्’ से बना है, जिसका अर्थ है – देखना, अनुभव करना या सत्य का साक्षात्कार करना। अतः भारतीय दर्शन का आशय केवल बौद्धिक चिंतन नहीं, बल्कि सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव और जीवन में उसका व्यावहारिक अनुप्रयोग है।

भारतीय दर्शन का विकास वैदिक साहित्य, उपनिषदों, महाकाव्यों, स्मृतियों तथा विभिन्न आस्तिक और नास्तिक दार्शनिक परंपराओं के माध्यम से हुआ। आस्तिक दर्शनों में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और वेदान्त प्रमुख हैं, जबकि बौद्ध, जैन और चार्वाक दर्शन नास्तिक परंपरा के अंतर्गत आते हैं। यद्यपि इन सभी दर्शनों के विचारों में भिन्नता है, फिर भी इनका मूल उद्देश्य मानव जीवन को श्रेष्ठ, संतुलित और कल्याणकारी बनाना है।

भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताओं में सत्य की खोज, धर्म का पालन, कर्म सिद्धांत, पुनर्जन्म, आत्मा और परमात्मा का संबंध, अहिंसा, करुणा, अपरिग्रह, संयम तथा प्रकृति के प्रति सम्मान शामिल हैं। यह दर्शन मानव को यह शिक्षा देता है कि वह अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए प्रकृति के साथ संतुलित और उत्तरदायी संबंध बनाए रखे।

आधुनिक संदर्भ में भारतीय दर्शन का महत्व और अधिक बढ़ गया है। जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन तथा उपभोक्तावाद जैसी वैश्विक चुनौतियों के बीच भारतीय दर्शन के सिद्धांत ‘जैसे अहिंसा, अपरिग्रह, संयम और ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ सतत जीवन शैली की स्थापना के लिए अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होते हैं। ये सिद्धांत संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग, पर्यावरण संरक्षण तथा सभी जीवों के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ावा देते हैं।

इस प्रकार, भारतीय दर्शन केवल आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग नहीं है, बल्कि मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करने वाली एक समग्र जीवन-दृष्टि भी है, जो वर्तमान समय में सतत विकास और पर्यावरणीय संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करती है।

3. सतत जीवन शैली की अवधारणा :

सतत जीवन शैली (Sustainable Lifestyle) से आशय ऐसी जीवन-पद्धति से है, जिसमें व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार करता है कि प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण एवं संतुलित उपयोग हो, पर्यावरण को न्यूनतम क्षति पहुँचे तथा भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं और अधिकारों से कोई समझौता न हो। यह अवधारणा आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करने पर आधारित है।

सतत जीवन शैली का मूल उद्देश्य मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करना है। इसके अंतर्गत ऊर्जा, जल, भूमि तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, जैव विविधता की रक्षा, प्रदूषण में कमी, अपशिष्ट प्रबंधन, पुनः उपयोग (Reuse), पुनर्चक्रण (Recycle) तथा उत्तरदायी उपभोग (Responsible Consumption) को प्रोत्साहित किया जाता है। यह जीवन शैली व्यक्ति को अनावश्यक उपभोग, अपव्यय और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से बचने की प्रेरणा देती है।

सतत जीवन शैली की अवधारणा को वैश्विक स्तर पर विशेष महत्व तब मिला, जब United Nations ने वर्ष 2015 में सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals – SDGs) निर्धारित किए। इन लक्ष्यों का

उद्देश्य गरीबी उन्मूलन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वच्छ जल एवं स्वच्छता, जलवायु परिवर्तन से निपटना, स्वच्छ ऊर्जा का उपयोग तथा पर्यावरण संरक्षण के माध्यम से समावेशी और संतुलित विकास सुनिश्चित करना है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में सतत जीवन शैली कोई नई अवधारणा नहीं है। प्राचीन भारतीय संस्कृति और दर्शन में प्रकृति के साथ संतुलित जीवन, सीमित उपभोग, आत्मसंयम, अहिंसा तथा अपरिग्रह जैसे मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है। भारतीय जीवन-दृष्टि यह मानती है कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका अभिन्न अंग है। इसलिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और उनका न्यायसंगत उपयोग प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक दायित्व है।

सतत जीवन शैली के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं -

- प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण एवं संतुलित उपयोग।
- जल, ऊर्जा और वन संसाधनों का संरक्षण।
- जैव विविधता एवं पारिस्थितिक संतुलन की रक्षा।
- अपशिष्ट में कमी तथा पुनः उपयोग और पुनर्चक्रण को बढ़ावा।
- पर्यावरण-अनुकूल तकनीकों और नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग।
- उत्तरदायी उपभोग तथा सीमित आवश्यकताओं पर आधारित जीवन।
- सामाजिक समानता, नैतिक उत्तरदायित्व और भावी पीढ़ियों के हितों का संरक्षण।

आज जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्रदूषण, जल संकट तथा संसाधनों के अत्यधिक दोहन जैसी समस्याओं के कारण सतत जीवन शैली की आवश्यकता पहले से अधिक बढ़ गई है। यदि व्यक्ति, समाज और शासन मिलकर पर्यावरण-अनुकूल व्यवहार, जिम्मेदार उपभोग तथा प्रकृति-सम्मत विकास को अपनाएँ, तो सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति संभव हो सकती है। इस प्रकार, सतत जीवन शैली केवल पर्यावरण संरक्षण का माध्यम नहीं, बल्कि मानव कल्याण, सामाजिक समृद्धि और वैश्विक संतुलन की आधारशिला भी है।

4. भारतीय दर्शन और सतत जीवन शैली का संबंध :

(क) वसुधैव कुटुम्बकम् :

महाउपनिषद् का प्रसिद्ध वाक्य “वसुधैव कुटुम्बकम्” सम्पूर्ण पृथ्वी को एक परिवार मानता है। यह विचार मानव और प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व को प्रोत्साहित करता है।

(ख) अहिंसा :

जैन एवं बौद्ध दर्शन में अहिंसा सर्वोच्च नैतिक मूल्य है। इसका अर्थ केवल मानव के प्रति हिंसा न करना नहीं बल्कि सभी जीवों एवं प्रकृति के प्रति संवेदनशील होना भी है। यह जैव विविधता संरक्षण का आधार बनता है।

(ग) अपरिग्रह :

जैन दर्शन का अपरिग्रह सिद्धांत आवश्यकता से अधिक संग्रह न करने की शिक्षा देता है। आधुनिक उपभोक्तावाद के दौर में यह सिद्धांत संसाधनों के संतुलित उपयोग और अपशिष्ट को कम करने में अत्यंत उपयोगी है।

(घ) संयम :

भगवद्गीता तथा योग दर्शन में संयम को जीवन का आवश्यक गुण माना गया है। सीमित उपभोग ऊर्जा संरक्षण, जल संरक्षण और पर्यावरण संतुलन में सहायक है।

(ड) पंचमहाभूत सिद्धांत :

भारतीय दर्शन में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को जीवन का आधार माना गया है। इन तत्वों का संरक्षण ही पर्यावरण संरक्षण का मूल है।

5. भारतीय परंपराओं में पर्यावरण संरक्षण :

भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं में पर्यावरण संरक्षण केवल सामाजिक दायित्व नहीं, बल्कि धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है। प्राचीन काल से ही प्रकृति को जीवनदायिनी शक्ति मानकर उसके प्रति श्रद्धा, कृतज्ञता और संरक्षण का भाव विकसित किया गया। भारतीय परंपरा में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पंचमहाभूत के रूप में स्वीकार किया गया है, जिनके संतुलन पर समस्त जीवन निर्भर करता है। इसलिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भारतीय जीवन-दृष्टि का मूल तत्व रहा है।

भारतीय समाज में वृक्षों को विशेष महत्व दिया गया है। पीपल, वट, नीम, तुलसी, बेल तथा आवला जैसे वृक्षों की पूजा की परंपरा केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं थी, बल्कि इनके संरक्षण का प्रभावी माध्यम भी थी। वृक्षों को देवतुल्य मानने से उनकी अंधाधुंध कटाई पर सामाजिक नियंत्रण बना रहता था और पर्यावरणीय संतुलन सुरक्षित रहता था।

इसी प्रकार नदियों को माता के रूप में सम्मान दिया गया है। गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी और कावेरी जैसी नदियाँ भारतीय संस्कृति में पवित्र मानी जाती हैं। इनके प्रति श्रद्धा का भाव जल स्रोतों के संरक्षण और जल के विवेकपूर्ण उपयोग की प्रेरणा देता है। जल को जीवन का आधार मानकर उसके संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है।

भारतीय परंपरा में पवित्र वन (Sacred Groves) की अवधारणा भी अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। अनेक क्षेत्रों में ऐसे वन किसी देवता या ग्राम-देवी को समर्पित होते थे, जहाँ वृक्षों की कटाई और शिकार पर सामाजिक एवं धार्मिक प्रतिबंध था। इससे जैव विविधता का संरक्षण होता था तथा अनेक दुर्लभ वनस्पतियाँ और जीव सुरक्षित रहते थे।

जल संरक्षण की पारंपरिक प्रणालियाँ भी भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्वपूर्ण भाग रही हैं। विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तालाब, बावड़ी, कुएँ, झीलें, जोहड़ और वर्षा जल संचयन जैसी व्यवस्थाएँ विकसित की गईं। इन प्रणालियों ने जल संकट से निपटने, भूजल स्तर बनाए रखने तथा कृषि और जनजीवन को स्थिर रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय संस्कृति में पशु-पक्षियों के प्रति करुणा और संरक्षण का भाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। गाय, नाग, हाथी, मोर, गरुड़ तथा अन्य अनेक जीवों को धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व प्रदान किया गया, जिससे उनके संरक्षण को सामाजिक समर्थन मिला। अहिंसा और जीव-दया जैसे नैतिक सिद्धांत सभी जीवों के प्रति संवेदनशीलता और सह-अस्तित्व की भावना को सुदृढ़ करते हैं।

आधुनिक पर्यावरणीय आंदोलनों में भी भारतीय परंपराओं की प्रेरणा स्पष्ट दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, चिपको आंदोलन ने वृक्षों की रक्षा के लिए जनभागीदारी का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत किया। इसी प्रकार बिश्नोई आंदोलन ने वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा के लिए त्याग और समर्पण का अनुपम आदर्श स्थापित किया।

इस प्रकार भारतीय परंपराएँ पर्यावरण संरक्षण को केवल प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि उसे नैतिक आचरण, सामाजिक उत्तरदायित्व और आध्यात्मिक चेतना से जोड़ती हैं। वर्तमान समय

में जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण जैसी चुनौतियों के समाधान के लिए भारतीय परंपराओं में निहित पर्यावरणीय मूल्य अत्यंत प्रासंगिक एवं प्रेरणादायक हैं।

6. आधुनिक संदर्भ में भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता :

वर्तमान युग में मानव सभ्यता अनेक वैश्विक चुनौतियों का सामना कर रही है, जिनमें जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, जैव विविधता का ह्रास, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, बढ़ता उपभोक्तावाद तथा सामाजिक असमानताएँ प्रमुख हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए केवल वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि ऐसी जीवन-दृष्टि की भी आवश्यकता है जो नैतिकता, संतुलन और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व को प्रोत्साहित करे। इस संदर्भ में भारतीय दर्शन अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है।

भारतीय दर्शन मानव और प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व तथा परस्पर निर्भरता पर बल देता है। अहिंसा, अपरिग्रह, संयम, करुणा तथा वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे सिद्धांत आधुनिक पर्यावरणीय संकटों के समाधान के लिए मूल्यपरक आधार प्रदान करते हैं। ये सिद्धांत व्यक्ति को सीमित उपभोग, संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा सभी प्राणियों के प्रति संवेदनशील व्यवहार अपनाने की प्रेरणा देते हैं।

आज बढ़ती उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव पड़ रहा है। भारतीय दर्शन का अपरिग्रह सिद्धांत अनावश्यक संग्रह और अत्यधिक उपभोग का विरोध करता है तथा आवश्यकतानुसार संसाधनों के उपयोग की शिक्षा देता है। इसी प्रकार संयम का सिद्धांत जीवन में सादगी, आत्मानुशासन और संतुलित उपभोग को प्रोत्साहित करता है, जिससे पर्यावरणीय दबाव कम किया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने के लिए भी भारतीय दर्शन महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है। प्रकृति को पूजनीय मानने की भारतीय परंपरा वृक्षारोपण, जल संरक्षण, जैव विविधता की रक्षा तथा नवीकरणीय संसाधनों के उपयोग को प्रोत्साहित करती है। यह दृष्टिकोण पर्यावरण संरक्षण को केवल सरकारी नीति नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक का नैतिक दायित्व मानता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी भारतीय दर्शन की उपयोगिता स्पष्ट है। यदि विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पर्यावरण शिक्षा के साथ भारतीय दार्शनिक मूल्यों का समावेश किया जाए, तो विद्यार्थियों में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा सतत जीवन शैली के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है। मूल्य-आधारित शिक्षा सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

आर्थिक विकास के संदर्भ में भारतीय दर्शन संतुलित और समावेशी विकास का समर्थन करता है। यह विकास को केवल उत्पादन और उपभोग की वृद्धि तक सीमित नहीं मानता, बल्कि मानव कल्याण, सामाजिक न्याय तथा पर्यावरण संरक्षण के साथ जोड़कर देखता है। इसलिए भारतीय दार्शनिक दृष्टि आधुनिक विकास मॉडल को अधिक मानवीय और टिकाऊ बनाने में सहायक हो सकती है।

वर्तमान समय में विश्वभर में प्राकृतिक खेती, जैविक कृषि, योग, आयुर्वेद, न्यूनतम उपभोग (Minimalism) तथा पर्यावरण-अनुकूल जीवन शैली के प्रति बढ़ती रुचि भी भारतीय ज्ञान परंपरा की वैश्विक प्रासंगिकता को दर्शाती है। ये सभी अवधारणाएँ प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीने की भारतीय दृष्टि को व्यावहारिक रूप प्रदान करती हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय दर्शन केवल अतीत की सांस्कृतिक विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान

और भविष्य के लिए एक ऐसी जीवन-दृष्टि है जो सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समरसता तथा वैश्विक कल्याण के लिए सुदृढ़ वैचारिक आधार प्रदान करती है। आधुनिक युग की चुनौतियों का समाधान तभी संभव है जब वैज्ञानिक प्रगति के साथ भारतीय दर्शन के नैतिक एवं पर्यावरणीय मूल्यों का समन्वय किया जाए।

सुझाव :

1. विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर पर्यावरण शिक्षा को भारतीय दर्शन से जोड़ा जाए।
2. जल एवं ऊर्जा संरक्षण को जन-आंदोलन बनाया जाए।
3. स्थानीय एवं पारंपरिक ज्ञान को बढ़ावा दिया जाए।
4. जैविक कृषि को प्रोत्साहित किया जाए।
5. सीमित उपभोग एवं पुनर्चक्रण की संस्कृति विकसित की जाए।
6. वृक्षारोपण एवं जैव विविधता संरक्षण को सामाजिक दायित्व बनाया जाए।

9. निष्कर्ष :

भारतीय दर्शन केवल आध्यात्मिक चिंतन नहीं, बल्कि एक संतुलित एवं सतत जीवन शैली का व्यावहारिक मार्गदर्शक है। इसके सिद्धांत 'अहिंसा, अपरिग्रह, संयम, वसुधैव कुटुम्बकम् तथा प्रकृति के प्रति श्रद्धा' आज की वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। यदि आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक के साथ भारतीय दार्शनिक मूल्यों का समन्वय किया जाए, तो सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति अधिक प्रभावी ढंग से संभव है।

संदर्भ सूची (References)

1. ऋग्वेद।
2. ईशोपनिषद्।
3. भगवद्गीता।
4. तत्त्वार्थसूत्र।
5. धम्मपद।
6. United Nations. Transforming Our World : the 2030 Agenda for Sustainable Development.
7. Ministry of Environment, Forest and Climate Change. पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन संबंधी प्रकाशन।

प्रसाद-साहित्य में औपनिवेशिक सत्ता, सांस्कृतिक अस्मिता और भारतीय नवजागरण का आलोचनात्मक अध्ययन

शिशिर कुमार प्रियदर्शी, शोधार्थी

हिंदी विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

प्रो० (डॉ०) कैलाशपति गोस्वामी, शोध निर्देशक

हिंदी विभाग, डी० ए० वी० कॉलेज, सिवान।

सारांश (Abstract)

जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के छायावादी युग के ऐसे युगप्रवर्तक साहित्यकार हैं जिनकी रचनाएँ भारतीय राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरव और मानवीय मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। यद्यपि उनका साहित्य प्रत्यक्ष राजनीतिक घोषणा पत्र नहीं है, तथापि उसमें औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध सांस्कृतिक प्रतिरोध, ऐतिहासिक चेतना तथा राष्ट्रीय स्वाभिमान का गहन स्वर विद्यमान है। प्रसाद ने भारतीय इतिहास, संस्कृति, दर्शन और परंपरा को साहित्यिक आधार बनाकर भारतीय समाज में आत्मविश्वास तथा सांस्कृतिक अस्मिता का पुनर्जागरण किया। उनके नाटकों, महाकाव्यों, कहानियों और उपन्यासों में अतीत का गौरव केवल स्मरण नहीं है, बल्कि वर्तमान की राष्ट्रीय चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करने का सृजनात्मक प्रयास भी है।

औपनिवेशिक शासन ने भारतीय समाज की सांस्कृतिक पहचान को कमजोर करने के उद्देश्य से शिक्षा, इतिहास, भाषा और सामाजिक संस्थाओं को प्रभावित किया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय बुद्धिजीवियों में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चेतना विकसित हुई। इस नवजागरण में साहित्य ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जयशंकर प्रसाद ने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति की मौलिकता, आध्यात्मिकता, सहिष्णुता और मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रतिष्ठित किया। कामायनी में भारतीय दर्शन का आधुनिक पुनर्पाठ, चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त में राष्ट्रीय एकता तथा ध्रुवस्वामिनी में नारी-स्वातंत्र्य और सामाजिक चेतना का चित्रण उनकी व्यापक वैचारिक दृष्टि को प्रमाणित करता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना, सांस्कृतिक अध्ययन तथा भारतीय नवजागरण की अवधारणाओं के आलोक में प्रसाद-साहित्य का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि प्रसाद का साहित्य केवल छायावादी सौंदर्यबोध का प्रतिनिधि नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता और राष्ट्रीय पुनर्जागरण का एक महत्वपूर्ण वैचारिक दस्तावेज भी है। वर्तमान वैश्वीकरण और सांस्कृतिक संक्रमण के युग में प्रसाद की साहित्य-दृष्टि भारतीय पहचान, सांस्कृतिक आत्मविश्वास तथा मानवीय मूल्यों की पुर्नस्थापना

के लिए अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती है।

मुख्य शब्द :

जयशंकर प्रसाद, औपनिवेशिक सत्ता, सांस्कृतिक अस्मिता, भारतीय नवजागरण, राष्ट्रीय चेतना, उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श, छायावाद।

1. प्रस्तावना :

बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भारतीय इतिहास में राजनीतिक संघर्ष, सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का युग था। अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन ने भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ उसकी सांस्कृतिक पहचान, ऐतिहासिक गौरव और बौद्धिक परंपरा को भी चुनौती दी। शिक्षा, इतिहास-लेखन, भाषा तथा प्रशासन के माध्यम से भारतीय समाज में हीनभावना उत्पन्न करने का प्रयास किया गया। इसके प्रतिकार में भारतीय साहित्यकारों ने साहित्य को राष्ट्रीय जागरण और सांस्कृतिक पुनर्स्थापना का माध्यम बनाया। इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जयशंकर प्रसाद का साहित्य विशेष महत्व रखता है।

जयशंकर प्रसाद (1889-1937) हिंदी साहित्य के छायावाद युग के प्रमुख स्तंभ हैं। वे केवल कवि ही नहीं, बल्कि नाटककार, कथाकार, उपन्यासकार और चिंतक भी थे। उनकी रचनाओं में भारतीय इतिहास, संस्कृति, दर्शन, राष्ट्रवाद तथा मानवतावादी दृष्टि का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने भारतीय अतीत के गौरव को वर्तमान की राष्ट्रीय चेतना से जोड़ते हुए सांस्कृतिक स्वाधीनता का संदेश दिया।

प्रसाद का साहित्य प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रचार नहीं करता, किंतु उसमें औपनिवेशिक मानसिकता के विरुद्ध एक सशक्त सांस्कृतिक प्रतिरोध निहित है। उनके ऐतिहासिक नाटक चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त और ध्रुवस्वामिनी भारतीय इतिहास के माध्यम से राष्ट्रीय स्वाभिमान और सांस्कृतिक अस्मिता को पुनर्जीवित करते हैं, जबकि कामायनी भारतीय दर्शन और मानवतावादी चिंतन का आधुनिक महाकाव्य है।

वर्तमान वैश्वीकरण और सांस्कृतिक संक्रमण के युग में प्रसाद-साहित्य का पुनर्पाठ इसलिए भी आवश्यक है कि यह भारतीय समाज को अपनी सांस्कृतिक जड़ों, राष्ट्रीय पहचान और मानवीय मूल्यों के प्रति पुनः सजग करता है।

औपनिवेशिक सत्ता की अवधारणा एवं भारतीय संदर्भ

1. औपनिवेशिक सत्ता : अवधारणा :

‘औपनिवेशिक सत्ता’ (Colonial Power) उस राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और वैचारिक व्यवस्था को कहा जाता है जिसके माध्यम से कोई शक्तिशाली राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र पर अधिकार स्थापित कर उसके संसाधनों, संस्कृति, शिक्षा, भाषा तथा सामाजिक संस्थाओं को अपने हित में नियंत्रित करता है। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन केवल प्रशासनिक व्यवस्था नहीं था, बल्कि वह भारतीय समाज की मानसिकता, सांस्कृतिक पहचान और ऐतिहासिक चेतना को प्रभावित करने की सुविचारित प्रक्रिया भी था।

ब्रिटिश शासन ने भारतीय अर्थव्यवस्था का दोहन करने के साथ-साथ भारतीय इतिहास को विकृत रूप में प्रस्तुत किया। भारतीय सभ्यता को पिछड़ा, अवैज्ञानिक और रूढ़िवादी सिद्ध करने का प्रयास किया गया। अंग्रेजी शिक्षा-नीति के माध्यम से ऐसे वर्ग का निर्माण किया गया जो भारतीय होकर भी मानसिक रूप से पश्चिमी मूल्यों का अनुयायी बने। यही कारण है कि भारतीय नवजागरण केवल राजनीतिक आंदोलन नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण भी था।

उत्तर-औपनिवेशिक चिंतक एडवर्ड सईद ने स्पष्ट किया कि उपनिवेशवादी सत्ता केवल भूभाग पर नहीं, बल्कि ज्ञान, भाषा और संस्कृति पर भी नियंत्रण स्थापित करती है। होमी के. भाभा ने सांस्कृतिक पहचान, संकरता (Hybridity) और औपनिवेशिक विमर्श के माध्यम से यह बताया कि उपनिवेशित समाज अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को नए रूप में पुनः निर्मित करता है। इन सिद्धांतों के आलोक में प्रसाद-साहित्य का अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है।

2. भारतीय संदर्भ में औपनिवेशिक सत्ता :

भारत में अंग्रेजी शासन (1757-1947) ने प्रशासन, न्याय, शिक्षा और आर्थिक संरचना में व्यापक परिवर्तन किए। इन परिवर्तनों के कुछ सकारात्मक पक्ष अवश्य थे, किन्तु उनका प्रमुख उद्देश्य भारतीय समाज को आत्मनिर्भर बनाना नहीं, बल्कि औपनिवेशिक शासन को स्थायी बनाना था।

भारतीय भाषाओं और परंपराओं की उपेक्षा की गई। इतिहास-लेखन में भारतीय उपलब्धियों को कम करके प्रस्तुत किया गया। भारतीय संस्कृति को अंधविश्वास और रूढ़ियों से युक्त बताकर पश्चिमी संस्कृति को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास हुआ। परिणामस्वरूप भारतीय समाज में सांस्कृतिक हीनता की भावना उत्पन्न हुई। इसी परिस्थिति में साहित्यकारों ने भारतीय इतिहास और संस्कृति को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद जैसे साहित्यकारों ने भारतीय अस्मिता को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

1. व्यक्तित्व :

जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी 1889 को वाराणसी के एक समृद्ध वैश्य परिवार में हुआ। बाल्यावस्था से ही उन्हें संस्कृत, हिंदी, उर्दू तथा भारतीय दर्शन का अध्ययन करने का अवसर मिला। पारिवारिक परिस्थितियों के कारण औपचारिक शिक्षा सीमित रही, किन्तु स्वाध्याय के बल पर उन्होंने भारतीय संस्कृति, इतिहास, दर्शन और साहित्य का गहन अध्ययन किया।

प्रसाद अत्यंत गंभीर, चिंतनशील और राष्ट्रप्रेमी साहित्यकार थे। वे भारतीय संस्कृति को मानवता की अमूल्य धरोहर मानते थे। उनके व्यक्तित्व में भारतीय परंपरा और आधुनिक चेतना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

2. साहित्यिक कृतित्व :

जयशंकर प्रसाद ने हिंदी साहित्य की लगभग सभी प्रमुख विधाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(क) काव्य :

- कामायनी
- आँसू
- झरना
- लहर
- कानन कुसुम

इन काव्य-कृतियों में मानव जीवन, संस्कृति, दर्शन, प्रेम, प्रकृति और राष्ट्रीय चेतना का अद्भुत समन्वय है।

(ख) नाटक :

- चन्द्रगुप्त
- स्कन्दगुप्त
- ध्रुवस्वामिनी
- अजातशत्रु
- राज्यश्री

इन नाटकों के माध्यम से प्रसाद ने भारतीय इतिहास को राष्ट्रीय दृष्टि से पुनः प्रस्तुत किया तथा विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक आत्मसम्मान का संदेश दिया।

(ग) उपन्यास :

- कंकाल
- तितली
- इरावती (अपूर्ण)

इन उपन्यासों में तत्कालीन भारतीय समाज, सामाजिक परिवर्तन, स्त्री-जीवन तथा सांस्कृतिक संक्रमण का यथार्थ चित्रण मिलता है।

(घ) कहानी :

प्रसाद हिंदी कहानी के भी महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। उनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिक संवेदना, सांस्कृतिक चेतना तथा मानवीय मूल्यों का सशक्त चित्रण मिलता है।

3. प्रसाद की साहित्य-दृष्टि :

प्रसाद का विश्वास था कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के नैतिक एवं सांस्कृतिक विकास का माध्यम है। वे भारतीय संस्कृति को विश्वमानवता की संस्कृति मानते थे। उनके साहित्य में राष्ट्रवाद संकीर्ण नहीं, बल्कि मानवीय, उदार और सांस्कृतिक स्वरूप में प्रकट होता है।

उनके अनुसार अतीत का स्मरण केवल गौरवगान नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के निर्माण की प्रेरणा है। इसी कारण उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को आधुनिक राष्ट्रीय चेतना से जोड़कर प्रस्तुत किया।

निष्कर्ष :

यह स्पष्ट होता है कि जयशंकर प्रसाद का साहित्य औपनिवेशिक सत्ता के प्रत्यक्ष राजनीतिक विरोध से अधिक सांस्कृतिक प्रतिरोध का साहित्य है। उन्होंने भारतीय इतिहास, संस्कृति और दर्शन को साहित्यिक आधार बनाकर राष्ट्रीय आत्मविश्वास का निर्माण किया। उनके साहित्य में भारतीय नवजागरण का स्वर सांस्कृतिक पुनर्जागरण, राष्ट्रीय अस्मिता और मानवीय मूल्यों के रूप में अभिव्यक्त होता है।

2. अध्ययन की पृष्ठभूमि :

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधार आंदोलनों का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी तथा अन्य विचारकों ने भारतीय समाज में आत्मविश्वास और राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। साहित्य ने इस चेतना को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया।

जयशंकर प्रसाद का साहित्य इसी राष्ट्रीय पुनर्जागरण की वैचारिक भूमि पर विकसित हुआ। उन्होंने

भारतीय संस्कृति को केवल अतीत का गौरव नहीं माना, बल्कि भविष्य के निर्माण की आधारशिला के रूप में प्रस्तुत किया। उनका साहित्य भारतीय इतिहास को औपनिवेशिक दृष्टिकोण से मुक्त कर स्वदेशी दृष्टि से पुनर्परिभाषित करता है।

3. अध्ययन की आवश्यकता एवं औचित्य :

प्रसाद-साहित्य पर अनेक अध्ययन हुए हैं, किंतु अधिकांश शोध छायावाद, काव्य-सौंदर्य, प्रतीकवाद अथवा दर्शन तक सीमित रहे हैं। औपनिवेशिक सत्ता, सांस्कृतिक अस्मिता तथा भारतीय नवजागरण के समन्वित परिप्रेक्ष्य में प्रसाद के समग्र साहित्य का अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है।

यह अध्ययन निम्न कारणों से महत्वपूर्ण है :

- औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध प्रसाद के सांस्कृतिक प्रतिरोध को समझने के लिए।
- भारतीय नवजागरण में उनके योगदान का समग्र मूल्यांकन करने के लिए।
- समकालीन सांस्कृतिक विमर्श में प्रसाद की प्रासंगिकता स्थापित करने के लिए।
- उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना की दृष्टि से उनके साहित्य का पुनर्पाठ करने के लिए।
- भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता और राष्ट्रीय चेतना के साहित्यिक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए।

4. अध्ययन के उद्देश्य :

1. जयशंकर प्रसाद के साहित्य में औपनिवेशिक सत्ता की अवधारणा का विश्लेषण करना।
2. प्रसाद-साहित्य में सांस्कृतिक अस्मिता के स्वरूप का अध्ययन करना।
3. भारतीय नवजागरण की अभिव्यक्ति का आलोचनात्मक परीक्षण करना।
4. प्रसाद के प्रमुख काव्य, नाटक, उपन्यास एवं कहानियों में राष्ट्रीय चेतना का मूल्यांकन करना।
5. उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टिकोण से प्रसाद-साहित्य की समकालीन प्रासंगिकता का विवेचन करना।

5. शोध प्रश्न :

1. क्या प्रसाद-साहित्य औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध सांस्कृतिक प्रतिरोध का प्रतिनिधित्व करता है?
2. प्रसाद भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता को किस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं?
3. भारतीय नवजागरण की अवधारणा उनके साहित्य में किस रूप में परिलक्षित होती है?
4. उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श की दृष्टि से प्रसाद-साहित्य का क्या महत्व है?
5. वर्तमान समय में प्रसाद के साहित्य की सांस्कृतिक प्रासंगिकता क्या है?

6. शोध पद्धति :

यह शोध गुणात्मक (Qualitative) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) प्रकृति का है। अध्ययन में मुख्यतः ऐतिहासिक, व्याख्यात्मक, तुलनात्मक तथा उत्तर-औपनिवेशिक आलोचनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाएगा। प्राथमिक स्रोत के रूप में जयशंकर प्रसाद की मूल रचनाओं तथा द्वितीयक स्रोत के रूप में आलोचनात्मक ग्रंथों, शोध-पत्रों एवं शोध-प्रबंधों का उपयोग किया जाएगा।

प्रसाद-साहित्य में औपनिवेशिक सत्ता का प्रतिरोध : एक आलोचनात्मक अध्ययन :

4.1 भारतीय इतिहास का पुनर्पाठ और राष्ट्रीय चेतना :

जयशंकर प्रसाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने इतिहास को केवल अतीत की घटनाओं का

संग्रह नहीं माना, बल्कि वर्तमान समाज के लिए प्रेरणा का स्रोत बनाया। जब औपनिवेशिक इतिहासकार भारतीय अतीत को पराजयों और रूढ़ियों का इतिहास सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे, तब प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से भारत के स्वर्णिम अतीत का पुनस्मरण कराया। यह पुनर्पाठ केवल अतीत का महिमामंडन नहीं था, बल्कि भारतीय जनता में आत्मविश्वास, राष्ट्रीय गौरव और सांस्कृतिक अस्मिता जागृत करने का प्रयास था।

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पाठकों को यह विश्वास दिलाते हैं कि भारत की सभ्यता केवल प्राचीन नहीं, बल्कि जीवंत, सृजनशील और विश्वकल्याणकारी रही है। इस प्रकार उनका इतिहास-बोध औपनिवेशिक इतिहास-दृष्टि का वैचारिक प्रतिरोध बन जाता है।

4.2 'चन्द्रगुप्त' में राष्ट्रीय एकता और औपनिवेशिक प्रतिरोध :

चन्द्रगुप्त नाटक में प्रसाद ने मौर्यकालीन भारत को राष्ट्रीय संगठन और राजनीतिक दूरदर्शिता के आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। चाणक्य का चरित्र केवल एक राजनेता का नहीं, बल्कि राष्ट्रनिर्माता का प्रतीक है।

चाणक्य का चिंतन यह स्पष्ट करता है कि जब तक समाज जाति, क्षेत्र और व्यक्तिगत स्वार्थों में विभाजित रहेगा, तब तक विदेशी शक्तियाँ उस पर अधिकार करती रहेंगी। यह संदेश केवल प्राचीन भारत के लिए नहीं, बल्कि अंग्रेजी शासन के अधीन भारत के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक था।

चन्द्रगुप्त का संघर्ष केवल सिंहासन प्राप्त करने का संघर्ष नहीं, बल्कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता, स्वाभिमान और सांस्कृतिक सुरक्षा का संघर्ष है। इसलिए यह नाटक अप्रत्यक्ष रूप से औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध भारतीय जनता में आत्मविश्वास जगाने का कार्य करता है।

4.3 'स्कन्दगुप्त' : राष्ट्ररक्षा और सांस्कृतिक अस्मिता :

स्कन्दगुप्त प्रसाद का सर्वाधिक राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत नाटक माना जाता है। इसमें हूण आक्रमणों के विरुद्ध संघर्ष का चित्रण करते हुए लेखक ने स्पष्ट किया है कि किसी भी राष्ट्र की शक्ति केवल उसकी सेना में नहीं, बल्कि उसकी संस्कृति, एकता और आत्मबल में निहित होती है।

स्कन्दगुप्त का चरित्र त्याग, कर्तव्य और राष्ट्रभक्ति का आदर्श प्रस्तुत करता है। वह व्यक्तिगत सुख का त्याग कर राष्ट्र की रक्षा को सर्वोच्च मानता है। यह आदर्श उस समय के भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की भावनाओं से गहराई से जुड़ता है।

नाटक में विदेशी आक्रमण केवल राजनीतिक संकट नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संकट भी है। इसलिए स्कन्दगुप्त का संघर्ष भारतीय संस्कृति की रक्षा का संघर्ष बन जाता है।

4.4 'ध्रुवस्वामिनी' : सांस्कृतिक पुनर्जागरण और नारी चेतना :

ध्रुवस्वामिनी में प्रसाद ने भारतीय समाज के भीतर व्याप्त रूढ़ियों और असमानताओं की आलोचना की है। इस नाटक की नायिका आत्मसम्मान, स्वतंत्र निर्णय और मानवीय गरिमा की प्रतीक है।

प्रसाद का यह दृष्टिकोण भारतीय नवजागरण की उस धारा से जुड़ता है जिसमें सामाजिक सुधार, स्त्री-शिक्षा और नारी अधिकारों पर बल दिया गया। इस प्रकार वे यह स्पष्ट करते हैं कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण केवल अतीत का गौरवगान नहीं, बल्कि समाज की आंतरिक बुराइयों को दूर करने की प्रक्रिया भी है।

4.5 'कामायनी' : भारतीय संस्कृति का दार्शनिक पुनर्निर्माण :

कामायनी को हिंदी का महान दार्शनिक महाकाव्य माना जाता है। इसमें मनु, श्रद्धा और इड़ा केवल पात्र

नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन के प्रतीक हैं।

- **मनु** – मानव सभ्यता का प्रतिनिधि।
- **श्रद्धा** – भारतीय संस्कृति, करुणा और आस्था का प्रतीक।
- **इड़ा** – बुद्धि, विज्ञान और आधुनिक चेतना का प्रतीक।

प्रसाद ने इन तीनों के माध्यम से यह स्थापित किया कि मानव जीवन का विकास तभी संभव है जब भावना, बुद्धि और कर्म में संतुलन हो। यह विचार पश्चिमी भौतिकवादी दृष्टिकोण के स्थान पर भारतीय समन्वयवादी दर्शन को प्रतिष्ठित करता है।

4.6 सांस्कृतिक प्रतिरोध का स्वरूप :

प्रसाद का प्रतिरोध प्रत्यक्ष राजनीतिक नहीं है। उन्होंने साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित किया। उनके सांस्कृतिक प्रतिरोध के प्रमुख आयाम हैं :

- भारतीय इतिहास का पुनर्मूल्यांकन।
- भारतीय दर्शन की प्रतिष्ठा।
- राष्ट्रीय आत्मसम्मान का विकास।
- सांस्कृतिक हीनभावना का खंडन।
- भारतीय नारी की गरिमा का पुर्नस्थापन।
- मानवतावादी राष्ट्रवाद की स्थापना।

यही कारण है कि उनका साहित्य भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के सांस्कृतिक पक्ष का महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जाता है।

4.7 आलोचनात्मक टिप्पणी :

उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना की दृष्टि से देखा जाए तो जयशंकर प्रसाद ने साहित्य के माध्यम से औपनिवेशिक सत्ता द्वारा निर्मित सांस्कृतिक वर्चस्व को चुनौती दी। उन्होंने भारतीय अतीत को केवल स्मृति के रूप में नहीं, बल्कि वर्तमान की राष्ट्रीय चेतना के स्रोत के रूप में पुनः स्थापित किया। उनका राष्ट्रवाद संकीर्ण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, नैतिक और मानवीय मूल्यों पर आधारित है।

फिर भी कुछ आलोचकों का मत है कि प्रसाद ने इतिहास का आदर्शवादी पुनर्निर्माण किया है और सामाजिक-आर्थिक संघर्षों की अपेक्षा सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व दिया। इसके बावजूद भारतीय साहित्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में उनका स्थान निर्विवाद है।

प्रसाद-साहित्य में सांस्कृतिक अस्मिता और भारतीय नवजागरण : उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श के आलोक में समालोचनात्मक विश्लेषण :

5.1 सांस्कृतिक अस्मिता : अवधारणा :

सांस्कृतिक अस्मिता (Cultural Identity) किसी राष्ट्र या समाज की वह विशिष्ट पहचान है, जो उसकी भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, इतिहास, कला, लोकपरंपरा और जीवन-मूल्यों से निर्मित होती है। औपनिवेशिक शासन का एक प्रमुख उद्देश्य उपनिवेशित समाज की इसी सांस्कृतिक पहचान को कमजोर करना होता है, ताकि वह मानसिक रूप से पराधीन बना रहे।

जयशंकर प्रसाद ने इस मानसिक दासता का प्रतिरोध प्रत्यक्ष राजनीतिक नारों से नहीं, बल्कि भारतीय

संस्कृति की रचनात्मक पुनर्व्याख्या के माध्यम से किया। उनका विश्वास था कि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसकी संस्कृति, नैतिकता और आत्मविश्वास में निहित होती है।

5.2 प्रसाद की सांस्कृतिक दृष्टि :

प्रसाद भारतीय संस्कृति को संकीर्ण धार्मिक अवधारणा नहीं मानते, बल्कि उसे मानवता, करुणा, सह-अस्तित्व, सत्य और सौंदर्य का समन्वित रूप मानते हैं। उनकी सांस्कृतिक दृष्टि के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :

- भारतीय दर्शन की सार्वभौमिकता।
- मानवतावाद और विश्वबंधुत्व।
- प्रकृति और मनुष्य का सामंजस्य।
- नारी के सम्मान और गरिमा की प्रतिष्ठा।
- इतिहास के माध्यम से राष्ट्रीय आत्मगौरव का पुनर्जागरण।
- परंपरा और आधुनिकता का समन्वय।

5.3 भारतीय नवजागरण और प्रसाद :

भारतीय नवजागरण केवल सामाजिक सुधार आंदोलन नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक, बौद्धिक और राष्ट्रीय पुनर्जागरण का व्यापक आंदोलन था। इसका उद्देश्य भारतीय समाज को आत्महीनता से मुक्त कर आत्मविश्वास प्रदान करना था।

प्रसाद ने इस नवजागरण को तीन स्तरों पर अभिव्यक्त किया :

(क) **सांस्कृतिक नवजागरण :**

भारतीय इतिहास, दर्शन और साहित्य की प्रतिष्ठा।

(ख) **राष्ट्रीय नवजागरण :**

राष्ट्रप्रेम, स्वाभिमान और एकता की भावना।

(ग) **मानवीय नवजागरण :**

मनुष्य की स्वतंत्रता, समानता और नैतिक गरिमा पर बल।

5.4 उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टि से प्रसाद-साहित्य :

उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना यह मानती है कि उपनिवेशित समाज अपनी पहचान को साहित्य, भाषा और संस्कृति के माध्यम से पुनः स्थापित करता है।

इस दृष्टि से प्रसाद का साहित्य :

- औपनिवेशिक इतिहास-दृष्टि का प्रतिवाद करता है।
- भारतीय संस्कृति को आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत करता है।
- राष्ट्रीय स्मृति का पुनर्निर्माण करता है।
- सांस्कृतिक दासता का प्रतिरोध करता है।
- भारतीय आधुनिकता की वैकल्पिक अवधारणा प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार उनका साहित्य उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श का भारतीय स्वरूप प्रस्तुत करता है।

5.5 प्रमुख आलोचकों की दृष्टि :

रामविलास शर्मा के अनुसार प्रसाद का साहित्य भारतीय राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। उनके ऐतिहासिक नाटक भारतीय जनता में राष्ट्रीय आत्मविश्वास का संचार करते हैं।

नामवर सिंह का मत है कि प्रसाद ने इतिहास को केवल अतीत की कथा न बनाकर वर्तमान की राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा। उनकी रचनाओं में इतिहास और कल्पना का सृजनात्मक समन्वय दिखाई देता है।

मैनेजर पाण्डेय के अनुसार प्रसाद का साहित्य भारतीय संस्कृति की आधुनिक पुनर्व्याख्या है, जिसमें परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित किया गया है।

5.6 समकालीन प्रासंगिकता :

वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद और सांस्कृतिक परिवर्तन के वर्तमान दौर में प्रसाद-साहित्य की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है।

आज जब सांस्कृतिक पहचान, भाषा और परंपरा के प्रश्न पुनः चर्चा के केंद्र में हैं, तब प्रसाद का साहित्य हमें निम्नलिखित संदेश देता है :

- आधुनिकता का अर्थ अपनी संस्कृति से विमुख होना नहीं है।
- राष्ट्रीयता का आधार सांस्कृतिक आत्मविश्वास होना चाहिए।
- साहित्य समाज में नैतिक और सांस्कृतिक चेतना का निर्माण करता है।
- भारतीय संस्कृति विश्वमानवता की समर्थक है, संकीर्णता की नहीं।

5.7 समालोचनात्मक मूल्यांकन :

यद्यपि कुछ आलोचक यह मानते हैं कि प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास का आदर्शीकरण हुआ है, फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि उनका उद्देश्य इतिहास का शाब्दिक पुनर्लेखन नहीं, बल्कि राष्ट्रीय आत्मविश्वास का निर्माण था।

उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति को आधुनिक संदर्भ में पुनः स्थापित किया। उनका साहित्य भारतीय नवजागरण की वैचारिक धारा को साहित्यिक ऊँचाई प्रदान करता है।

प्रसाद-साहित्य भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता, राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का सशक्त साहित्यिक दस्तावेज है। उन्होंने भारतीय अतीत की पुनर्व्याख्या करते हुए सांस्कृतिक स्वाधीनता और मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित किया। उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना की दृष्टि से उनका साहित्य औपनिवेशिक मानसिकता के विरुद्ध भारतीय आत्मविश्वास का सृजनात्मक प्रतिरोध है।

निष्कर्ष, शोध-निष्कर्ष, सीमाएँ एवं संदर्भ

6.1 निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि जयशंकर प्रसाद का साहित्य केवल छायावादी काव्यधारा का प्रतिनिधि नहीं है, बल्कि भारतीय राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक अस्मिता और नवजागरण का सशक्त वैचारिक दस्तावेज भी है। उन्होंने औपनिवेशिक सत्ता का प्रत्यक्ष राजनीतिक विरोध नहीं किया, किंतु भारतीय इतिहास, संस्कृति, दर्शन और मानवीय मूल्यों के पुनर्पाठ के माध्यम से सांस्कृतिक प्रतिरोध की एक प्रभावशाली परंपरा विकसित की।

चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त और ध्रुवस्वामिनी जैसे नाटकों में राष्ट्र, स्वाधीनता, आत्मसम्मान और सांस्कृतिक

गौरव का जो स्वर मिलता है, वह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के सांस्कृतिक पक्ष को सुदृढ़ करता है। वहीं कामायनी में भारतीय जीवन-दर्शन, मनुष्य की आंतरिक चेतना तथा परंपरा और आधुनिकता के समन्वय का जो स्वरूप प्रस्तुत हुआ है, वह भारतीय नवजागरण की व्यापक अवधारणा को अभिव्यक्त करता है।

उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टि से प्रसाद का साहित्य यह सिद्ध करता है कि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसकी सांस्कृतिक स्मृति, ऐतिहासिक चेतना और आत्मविश्वास में निहित होती है। इसलिए प्रसाद का साहित्य आज भी सांस्कृतिक विमर्श, राष्ट्रीय पहचान और भारतीय ज्ञान-परंपरा की पुनर्स्थापना के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है।

6.2 शोध-निष्कर्ष (Major Findings)

इस अध्ययन से निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :

1. प्रसाद-साहित्य भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है।
2. उनके साहित्य में औपनिवेशिक सत्ता का प्रतिरोध प्रत्यक्ष राजनीतिक न होकर सांस्कृतिक और वैचारिक स्वरूप में अभिव्यक्त हुआ है।
3. ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना एवं आत्मगौरव का प्रभावी निर्माण किया गया है।
4. कामायनी भारतीय संस्कृति, दर्शन और मानवतावादी चिंतन का आधुनिक पुनर्पाठ प्रस्तुत करती है।
5. प्रसाद का राष्ट्रवाद समावेशी, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों पर आधारित है।
6. उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना की दृष्टि से प्रसाद-साहित्य भारतीय सांस्कृतिक स्वाधीनता का महत्वपूर्ण स्रोत है।
7. वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में प्रसाद की सांस्कृतिक दृष्टि भारतीय पहचान को सुदृढ़ करने में उपयोगी सिद्ध होती है।

6.3 अध्ययन की सीमाएँ :

- यह अध्ययन मुख्यतः जयशंकर प्रसाद की प्रमुख कृतियों तक सीमित है।
- शोध का आधार साहित्यिक एवं आलोचनात्मक स्रोत हैं, सामाजिक सर्वेक्षण या क्षेत्रीय अध्ययन इसमें सम्मिलित नहीं है।
- उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टिकोण के प्रमुख सिद्धांतों के आलोक में ही विश्लेषण किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ (MLA 9th Edition)

1. प्रसाद, जयशंकर. कामायनी।
2. प्रसाद, जयशंकर. चन्द्रगुप्त।
3. प्रसाद, जयशंकर. स्कन्दगुप्त।
4. प्रसाद, जयशंकर. ध्रुवस्वामिनी।
5. प्रसाद, जयशंकर. कंकाल।
6. प्रसाद, जयशंकर. तितली।
7. शर्मा, रामविलास. भारतीय नवजागरण और हिंदी साहित्य।
8. शर्मा, रामविलास. निराला की साहित्य साधना।

9. सिंह, नामवर. इतिहास और आलोचना ।
10. सिंह, नामवर. कविता के नए प्रतिमान ।
11. पाण्डेय, मैनेजर. साहित्य और इतिहास दृष्टि ।
12. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. हिंदी साहित्य की भूमिका ।
13. शुक्ल, रामचन्द्र. हिंदी साहित्य का इतिहास ।
14. बच्चन सिंह. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास ।
15. नागेन्द्र. हिंदी साहित्य का इतिहास ।
16. Said, Edward W. Orientalism. Pantheon Books, 1978.
17. Bhabha, Homi K. The Location of Culture. Routledge, 1994.
18. Spivak, Gayatri Chakravorty. Can the Subaltern Speak\
19. Ashcroft, Bill, Gareth Griffiths, and Helen Tiffin. The Empire Writes Back.
20. Eagleton, Terry. Literary Theory : An Introduction.



गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540



KANCHANLATA कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Generative AI and its Impact on the Applications, Opportunities and Risks related to Media : An Analytical Review

Prabhat Indora

Assistant Professor, Journalism and Mass Communication, Department of Arts
School of Liberal Arts and Sciences,
Mody University of Science and Technology, Lakshmangarh, Rajasthan.

Abstract :

Generative Artificial Intelligence (GenAI) is affecting every field and the changes are very evident. The field of media and journalism is also changing rapidly. GenAI is not only altering how news is researched but it is also changing the ways news or content is gathered, produced, edited, distributed and consumed. The emergence of large language models and multimodal generative systems has created opportunities for newsroom efficiency, automated content production, summarisation, translation, transcription, data analysis, personalisation and audience engagement. At the same time, the integration of GenAI into media and journalism practices raises concerns regarding hallucination, misinformation, algorithmic bias, copyright, privacy, transparency, accountability, professional autonomy, employment and audience trust. This study analyzes Generative AI and its Impact on the Applications, Opportunities and Risks related to Media media and journalism. This study follows a systematic review orientation informed by the PRISMA 2020 framework and draws on peer-reviewed scholarship, recent systematic research, empirical studies, conceptual contributions and authoritative journalism-industry evidence published primarily between 2020 and 2026.

Keywords :

Generative Artificial Intelligence, Journalism, ,Large Language Models, ChatGPT, Media Ethics, AI-generated Content, Misinformation, Media

1. Introduction :

Artificial Intelligence has moved from being a relatively specialised computational technology

to becoming a significant force in the transformation of media, communication and journalism. Earlier applications of AI in news media were primarily associated with automation, algorithmic recommendation, data processing, automated writing and computational journalism. Generative Artificial Intelligence represents a more consequential development because it can produce new textual, visual, audio and increasingly multimodal content in response to human instructions. The public emergence of ChatGPT in November 2022 accelerated this transformation. Generative AI systems based on large language models demonstrated an ability to produce apparently coherent news-style texts, summarise documents, translate material, generate headlines, analyse information and interact conversationally with users. Consequently, the central question for journalism has shifted from whether artificial intelligence can perform isolated journalistic tasks to how generative systems should be incorporated into the professional, institutional and normative structures of journalism.

The transformation is already visible at the industry level. The Reuters Institute's 2026 Journalism, Media and Technology Trends and Predictions report identifies Generative AI as one of the major forces likely to reshape the news industry. News organisations are experimenting with AI despite uncertainty about its long-term effects, while publishers are simultaneously confronting the rise of AI-generated content, deepfakes, misinformation and changes in how audiences access information. The same report identifies answer engines as an important emerging challenge because AI systems can increasingly provide users with summaries and answers without requiring them to visit original news websites.

The audience side of this transformation is equally important. The 2026 Digital News Report indicates that 10% of surveyed audiences across its markets used standalone AI chatbots for news during the previous week, compared with 7% the previous year. Among people below 35, the proportion was 16%. These findings indicate that AI is not simply becoming a production technology inside newsrooms; it is also becoming a new intermediary between audiences and journalistic information. This development has important implications for journalism's traditional functions. Journalism historically derives legitimacy from practices such as verification, source evaluation, editorial judgement, accountability and public-interest communication. Generative AI can support some of these activities but can also undermine them. A language model may generate a fluent but factually incorrect statement; an image generator may create a realistic but entirely fictional event; a summarisation system may remove important context; and an AI chatbot may provide an answer without adequately directing the user to the original source.

The problem is therefore not simply technological. It is simultaneously professional, ethical, organisational, economic and democratic. Recent scholarship reinforces this complexity. A 2025 systematic bibliometric and thematic study of AI and journalism found a sharp increase in research

activity after 2020, with automation, misinformation and ethical governance among prominent themes. It also identified geographical disparities and limited representation of the Global South. However, that study examined AI and journalism broadly over a long period, whereas the present review focuses specifically on the Generative AI transformation and the emerging relationship between newsroom applications, journalistic ethics, audience behaviour and AI-mediated news consumption. This study therefore addresses the following central question :

How is Generative AI transforming journalism, what opportunities and risks does it create, what ethical challenges are right now and what important questions remain insufficiently researched?

2. Objectives of the Study :

- To examine the development of scholarly research on Generative AI and journalism.
- To identify the principal applications of Generative AI in media and journalistic practices.
- To analyse the opportunities associated with Generative AI adoption in media.
- To identify technological, professional and societal risks associated with GenAI.

3. Research Questions :

- How has research on Generative AI and journalism evolved?
- What are the principal applications of Generative AI across media and journalistic practices?
- What opportunities does Generative AI offer to media and news organisations?
- What risks and professional challenges are associated with GenAI adoption?

4. Conceptual Background :

The development of AI in journalism can broadly be understood in several stages. The first stage involved computational and rule-based automation. News organisations began using structured datasets to produce routine stories, particularly in areas such as sports, finance, weather and election results. The second stage involved machine learning and algorithmic systems capable of processing increasingly complex datasets. These systems supported recommendation, audience analytics, content classification, automated transcription and other newsroom activities. The third stage is represented by Generative AI and large language models. Unlike traditional automated journalism, which generally transforms structured input according to predefined rules, generative systems can produce new text and other forms of content through probabilistic language and multimodal models. This distinction matters because the journalist's relationship with technology changes. Rather than simply receiving automated output from a fixed system, journalists increasingly interact with AI systems through prompts, iterative dialogue, verification and revision. Nishal and Diakopoulos conceptualise GenAI as potentially supporting a wide range of newsroom tasks, from story conception to distribution, while emphasising the need to preserve journalistic values during these interactions. The shift therefore involves not merely automation but the redesign of journalistic work.

5. Methodology :

The study adopts a systematic literature review design informed by the Preferred Reporting Items for Systematic Reviews and Meta-Analyses (PRISMA 2020) principles. The review was designed to identify, classify and synthesise literature concerning Generative AI and journalism.

The evidence base includes peer-reviewed research, systematic reviews, empirical studies, conceptual papers and authoritative industry research. Particular attention was given to the publications from 2020 onwards because this period captures the transition from earlier AI and automated journalism research towards the contemporary Generative AI environment.

6. Results :

The literature indicates a substantial acceleration of AI-and-journalism research following the emergence of large language models. The 2025 systematic bibliometric study by Molla and Ahsan examined 72 peer-reviewed AI-and-journalism articles from Scopus and Web of Science covering from 2010 to 2025. It identified a pronounced increase in research after 2020 and reported a 172% publication surge in 2024 associated with the growing prominence of Generative AI. The study identified automation, misinformation and ethical governance as central themes. This development suggests that the research field has moved from a relatively specialized discussion of automated journalism towards a broader examination of AI's effects on journalistic institutions, professional identity and democratic communication. However, publication growth should not be interpreted automatically as theoretical maturity. Rapid growth can also produce fragmentation. Researchers may examine ChatGPT, newsroom adoption, AI-generated content, misinformation, audience trust or copyright as separate problems without integrating them into a comprehensive model of journalism's transformation. A major challenge for the field is therefore moving from technology-centred research to journalism-centred research.

The literature also identifies several broad areas of application. Generative AI can produce initial drafts, summaries, headlines and routine stories. This can be particularly useful for structured information such as financial results, sports statistics, weather information and public data.

The value of this application depends heavily on the nature of the content. Routine, highly structured stories may be more amenable to AI assistance than investigative, interpretive or sensitive reporting. Journalists can use LLMs to brainstorm questions, identify themes in large documents, summarise lengthy reports, extract information, generate interview questions, organise notes and to analyse textual datasets. Translation is potentially one of the most socially valuable applications of GenAI. News organisations can use generative systems to translate stories into multiple languages and make information accessible to wider audiences but there is always a risk of misinterpretation of cultural context, idioms, political terminology and minority-language nuances.

This can be very important for multilingual countries like India.

Generative systems are also useful for synthetic voices, automated video, image generation, captioning, transcription, text-to-video conversion. GenAI can help in generating alternative explanations or formats of the same story. A complex economic story, for example, could theoretically be transformed into a short summary, a detailed explanation, an audio version, a visual explanation and a question-answer format. The most consistently identified benefit of AI is efficiency. AI can reduce the time required for transcription, translation, summarisation, formatting, headline experimentation, basic data analysis. Recent industry evidence suggests that news organisations are actively exploring these applications. The Reuters Institute's 2026 survey of news leaders found that most respondents had not yet reduced jobs as a direct result of AI efficiencies, indicating that AI's organisational effects remain in an early and uneven stage. AI can potentially allow journalists to spend less time on repetitive work and more time on field reporting, investigation, interviews, verification, analysis, relationship building. This supports the argument that AI may function more effectively as an augmentation technology than as a replacement for journalism. It is helpful for smaller news organisations as they often face shortages of staff, technical expertise, financial resources and production capacity. AI tools could reduce some operational barriers. However, this benefit must be considered alongside the risks of dependence on commercial AI platforms.

Risks and Challenges : The risk related to hallucination and accuracy is very prominent. Generative systems can produce fabricated facts, nonexistent sources, inaccurate quotations, incorrect statistics, misleading summaries. This is particularly dangerous in journalism because credibility depends on factual accuracy. Consequently, GenAI creates a paradox. The more fluent AI becomes, the harder it may be for inexperienced users to recognise its errors. Generative AI lowers the cost of producing false content. Text, images, audio and video can be generated at scale. The Reuters Institute's 2026 trends report identifies AI slop, deepfakes and misinformation as major challenges for the information ecosystem. This means journalism must increasingly perform a dual role. Producing verified information while also helping audiences distinguish verified information from synthetic content. LLMs learn from large bodies of existing data. So they may reproduce cultural stereotypes, political biases, gender biases, linguistic hierarchies, dominant cultural perspectives. Bias becomes especially significant when AI is used to select, summarise or frame news. There is also risk related to copyright and intellectual property. Generative AI creates difficult questions concerning the use of journalistic content to train AI models. The conflict is not simply about AI-generated output. It concerns the economic relationship between journalism and AI companies. Another recurring concern is whether AI will replace journalists. A more useful research question may be which journalistic tasks will be automated, which will be augmented, and which will become more valuable because they

remain difficult to automate? The profession may move toward greater emphasis on original reporting, source relationships, verification, contextual interpretation, ethical judgement, investigative skills.

Thus AI may transform the occupational structure of journalism without eliminating journalism itself. There are ethical challenges which are related to transparency, accountability and trust. Should news organisations disclose when AI has been used? The literature increasingly supports transparency, particularly when AI significantly contributes to published content. However, disclosure itself is not straightforward. Minor uses such as spelling assistance may differ ethically from AI-generated text or images. If an AI-generated story contains false information, responsibility cannot reasonably be assigned to the machine. Responsibility must remain with the organisation and human professionals who decided to use, publish or approve the content. Research on newsroom AI integration has shown that journalists and technologists recognise the importance of human judgement in complex editorial decisions. Lopez et al. argue that AI tools must be integrated into existing professional practices and journalistic values rather than imposed as purely technical systems. If news organisations become dependent on a small number of commercial AI providers, technological dependency may become a new form of structural dependency. Audience trust is central in journalism. AI-generated journalism could undermine trust if audiences believe that machines are replacing journalists. One of the most important developments identified in the current literature is the movement from AI-assisted journalism to AI-mediated journalism. The 2026 Digital News Report provides evidence that standalone AI chatbots are increasingly being used as news sources. Ten percent of surveyed audiences across the report's markets used AI chatbots for news in the previous week, compared with 7% previously. Usage among people under 35 was 16%. The 2025 systematic review of AI and journalism found limited representation of the Global South. This is significant because AI adoption does not occur in a uniform media environment.

7. Discussion and Conclusion :

The literature indicates that Generative AI should not be conceptualised simply as the next newsroom software. Its significance is structural. Traditional technologies generally assisted journalists in producing journalism. Generative AI increasingly participates in generating information, summarising information, interpreting information, distributing information and answering audience questions. Consequently, the boundary between journalistic production and information mediation is becoming less clear. This creates an important conceptual shift. The first phase of digital journalism asked the questions related to how journalism can use digital technologies? The platform phase asked how can journalism survive platform dependency? The GenAI phase increasingly asks what happens when the platform itself becomes capable of generating an answer that substitutes for the news article? This is arguably the most important emerging research question. The issue is not necessarily that AI

will eliminate journalism. Instead, journalism may become increasingly valuable for precisely those functions that AI cannot reliably replace: original reporting, firsthand observation, source relationships, accountability, contextual interpretation, investigation, public-interest judgement. The paradox is therefore that AI may increase the value of high-quality original journalism while simultaneously reducing its visibility and economic rewards. This tension should become central to future journalism research. The transformation also requires a reconsideration of journalism education. Future journalism education should incorporate prompt literacy, AI verification, synthetic-media detection, algorithmic literacy, data literacy, AI ethics, copyright awareness, source verification, multilingual AI evaluation. Students should learn when to use AI, when not to use it, how to verify it and how to remain accountable for its output. An effective newsroom AI policy should address permitted uses, prohibited uses, disclosure requirements, human review, verification, copyright, privacy, source protection. Recent research on German journalism proposes ethical guidelines for GenAI adoption, while empirical work with Spanish journalists and media organisations similarly indicates that GenAI is forcing journalism organisations to rethink established ethical principles.

Generative AI literature is evolving rapidly. New models, applications and empirical studies appear continuously, meaning that conclusions may change as adoption develops. Generative AI represents a fundamental transformation of journalism rather than simply another technological innovation. Its applications extend from writing, transcription and translation to research, data analysis, multimedia production, personalisation and audience interaction. These capabilities offer substantial opportunities for efficiency, accessibility and innovation. However the same technologies introduce significant risks. Hallucination, misinformation, bias, copyright disputes, privacy concerns, professional displacement, synthetic media and declining trust challenge established journalistic norms. The most important finding of this review is therefore the existence of a persistent tension that Generative AI can increase the efficiency of journalism while simultaneously threatening some of the values that make journalism socially valuable. The future of journalism is more likely to involve human-AI collaboration under strong professional governance. Human judgement should remain central to editorial decision-making.

AI-generated claims should undergo verification. Significant AI involvement should be transparent. Responsibility should remain with journalists and news organisations. AI adoption should be evaluated according to public-interest objectives rather than productivity alone. The review also demonstrates that the next phase of research should move beyond the question of how newsrooms use AI. The more consequential question is how AI is beginning to mediate the relationship between journalism and audiences. As AI chatbots increasingly become information intermediaries, journalism may face a new form of gatekeeping in which audiences receive AI-generated answers instead of

directly encountering original news sources. This creates a new research frontier involving algorithmic gatekeeping, source visibility, audience trust, media economics and democratic communication. Future research should therefore become more empirical, comparative, longitudinal and geographically diverse. Greater attention is particularly required for India and other Global South contexts, multilingual journalism, audience behaviour and AI literacy. Future of journalism in the GenAI era will not be determined by technological capability alone. It will be determined by the institutional choices made by journalists, editors, educators, policymakers, technology companies and audiences.

References :

- Beckett, C. (2019). New powers, new responsibilities: A global survey of journalism and artificial intelligence. London School of Economics and Political Science.
- Carlson, M. (2015). The robotic reporter: Automated journalism and the redefinition of labor, compositional forms, and journalistic authority. *Digital Journalism*, 3(3), 416–431.
- Chaparro-Domínguez, M.-Á., Parratt-Fernández, S., & Mayoral-Sánchez, J. (2025). GenAI in journalism: An ethical analysis of implications, best practices, and challenges. *Online Journal of Communication and Media Technologies*, 15(4), e202530.
- Diakopoulos, N. (2019). Automating the news: How algorithms are rewriting the media. Harvard University Press.
- Hofeditz, L., Jung, A.-K., Mirbabaie, M., & Stieglitz, S. (2025). Ethical guidelines for the application of generative AI in German journalism. *Digital Society*, 4, 4.
<https://doi.org/10.1007/s44206-024-00151-w>
- Kiskola, J., Rydenfelt, H., Olsson, T., Haapanen, L., Vánttinen, N., Nelimarkka, M., Vigren, M., Laaksonen, S.-M., & Lehtiniemi, T. (2025). Generative AI and news consumption: Design fictions and critical analysis.
- Lopez, M. G., Porlezza, C., Cooper, G., Makri, S., MacFarlane, A., & Missaoui, S. (2023). A question of design: Strategies for embedding AI-driven tools into journalistic work routines. *Digital Journalism*, 11(3), 484–503. <https://doi.org/10.1080/21670811.2022.2043759>
- Molla, M. A. M., & Ahsan, M. M. (2025). Artificial intelligence and journalism: A systematic bibliometric and thematic analysis of global research. *Computers in Human Behavior Reports*, 20, 100830. <https://doi.org/10.1016/j.chbr.2025.100830>
- Newman, N. (2026). Journalism, media, and technology trends and predictions 2026. Reuters Institute for the Study of Journalism, University of Oxford.
- Nishal, S., & Diakopoulos, N. (2024). Envisioning the applications and implications of generative AI for news media.

- Reuters Institute for the Study of Journalism. (2026). Digital News Report 2026. University of Oxford.
- Ross Arguedas, A. (2026). Emerging uses of AI chatbots for news and what it means for journalism. Reuters Institute for the Study of Journalism, University of Oxford.
- Shi, Y., & Sun, L. (2024). How generative AI is transforming journalism: Development, application and ethics.
- Wilczek, B., Haim, M., & Thurman, N. (2024). Transforming the value chain of local journalism with artificial intelligence.

राष्ट्रीय शैक्षणिक धोरण २०२० च्या पार्श्वभूमीवर भारतीय ज्ञान परंपरा आणि मराठी संतसाहित्याचे लोकाभिमुख योगदान : एक चिकित्सक अभ्यास

प्रा. डॉ. रवींद्र श्रीहरी सोमोशी.

मराठी विभाग प्रमुख, सुंदरराव मोरे कला वाणिज्य व विज्ञान
महाविद्यालय, पोलादपूर जि. रायगड-४०२३०३.

गोषवारा :

भारतीय ज्ञान परंपरा ही भारताच्या सांस्कृतिक, तात्त्विक, नैतिक आणि शैक्षणिक वारशाची समृद्ध व सातत्यपूर्ण परंपरा आहे. वैदिक काळापासून विकसित होत आलेल्या या ज्ञानव्यवस्थेत अनुभव, चिंतन, आचरण, संवाद, लोकजीवन आणि मूल्यसंस्कार यांना मध्यवर्ती स्थान आहे. राष्ट्रीय शैक्षणिक धोरण २०२० ने भारतीय ज्ञान परंपरेला आधुनिक शिक्षणव्यवस्थेत पुनर्प्रतिष्ठित करण्यावर भर दिला असून, मातृभाषा, स्थानिक ज्ञान, सांस्कृतिक वारसा आणि संशोधनाभिमुखता यांना विशेष महत्त्व दिले आहे. प्रस्तुत संशोधन लेखात भारतीय ज्ञान परंपरेची संकल्पना, तिची वैशिष्ट्ये, NEP-2020 मधील स्थान आणि मराठी संतसाहित्याने घडविलेल्या लोकशिक्षणाची भूमिका यांचा सखोल विचार करण्यात आला आहे. मराठी संतांनी अभंग, भारुड, ओवी, कीर्तन आणि इतर लोकाभिमुख साहित्यप्रकारांच्या माध्यमातून ज्ञानाचे लोकशाहीकरण केले. त्यामुळे मराठी वाङ्मय हे भारतीय ज्ञान परंपरेचे प्रभावी, लोकाभिमुख आणि मूल्याधिष्ठित माध्यम ठरते.

कूटशब्द :

भारतीय ज्ञान परंपरा, NEP-2020, मराठी संतसाहित्य, ज्ञानलोकशाही, लोकाभिमुख ज्ञान, मूल्यशिक्षण, मराठी वाङ्मय, भक्ती चळवळ

प्रस्तावना :

भारतीय ज्ञान परंपरा ही केवळ प्राचीन ज्ञानसंचय नसून जीवन जगण्याची एक व्यापक दृष्टी आहे. या परंपरेत ज्ञान, मूल्ये, आत्मविकास, सामाजिक उत्तरदायित्व आणि निसर्गाशी सुसंवाद या संकल्पना एकमेकांशी निगडित आहेत. भारतीय तत्त्वज्ञान, योग, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, साहित्य, कला, पर्यावरण आणि लोकपरंपरा यांसारख्या विविध ज्ञानशाखांनी भारतीय संस्कृतीला बहुआयामी घडण दिली आहे. ज्ञान हे केवळ माहितीपुरते न

राहता जीवनमार्गदर्शक शक्ती मानली गेली, ही भारतीय ज्ञान परंपरेची विशेषता आहे.

महाराष्ट्रातील संतसाहित्य आणि भक्ती चळवळ यांनी ही परंपरा लोकभाषेत आणून सामान्य जनतेपर्यंत पोहोचविली. संस्कृतमधील तात्त्विक विचार मराठीतून मांडत संतांनी ज्ञानाला सामाजिक सुलभता आणि लोकाभिमुखता प्राप्त करून दिली. त्यामुळे मराठी संतसाहित्य हे केवळ धार्मिक किंवा भक्तिपर साहित्य न राहता समाजप्रबोधन, नैतिक शिक्षण, समता आणि मानवतावाद यांचे प्रभावी साधन ठरले.

राष्ट्रीय शैक्षणिक धोरण २०२० च्या अनुषंगाने भारतीय ज्ञान परंपरेचा अभ्यास अधिक समकालीन ठरतो. कारण या धोरणात स्थानिक ज्ञान, बहुभाषिकता, अनुभवाधारित शिक्षण, संशोधन आणि सांस्कृतिक जाणीव यांना महत्त्व दिले गेले आहे. या पार्श्वभूमीवर मराठी संतसाहित्याचा अभ्यास भारतीय ज्ञान परंपरेच्या आधुनिक शैक्षणिक संदर्भातील महत्त्वपूर्ण अभ्यासक्षेत्र म्हणून पुढे येतो.

उद्दिष्टे :

1. भारतीय ज्ञान परंपरेची संकल्पना, स्वरूप आणि वैशिष्ट्ये स्पष्ट करणे.
2. राष्ट्रीय शैक्षणिक धोरण २०२० आणि भारतीय ज्ञान परंपरा यांतील परस्परसंबंध समजावून घेणे.
3. मराठी संतसाहित्याने केलेल्या ज्ञानप्रसाराच्या सामाजिक भूमिकेचे विश्लेषण करणे.
4. भक्ती चळवळीने निर्माण केलेल्या ज्ञानलोकशाहीचे स्वरूप उलगडणे.
5. मराठी वाङ्मयाच्या लोकाभिमुख आणि मूल्याधिष्ठित योगदानाचे मूल्यमापन करणे.
6. आधुनिक शिक्षणात भारतीय ज्ञान परंपरेच्या उपयुक्ततेचा शोध घेणे.

संशोधन पद्धती :

सदर लेखासाठी गुणात्मक संशोधन पद्धतीचा अवलंब करण्यात आला आहे. उपलब्ध संदर्भग्रंथ, शैक्षणिक लेखन, सांस्कृतिक अभ्यास आणि दिलेल्या वर्ड फाईलमधील मजकूर यांच्या आधारे विश्लेषणात्मक मांडणी केली आहे. विषयाचे स्वरूप ऐतिहासिक, साहित्यिक आणि शैक्षणिक असल्यामुळे वर्णनात्मक तसेच चिकित्सक दृष्टिकोन स्वीकारण्यात आला आहे.

भारतीय ज्ञान परंपरेचे स्वरूप :

भारतीय ज्ञान परंपरा ही विविध ज्ञानशाखांचे एकात्म स्वरूप आहे. तिचे प्रमुख वैशिष्ट्य म्हणजे ज्ञानाचा उद्देश केवळ बौद्धिक प्रगती नसून संपूर्ण जीवनाचा विकास हा आहे. त्यामुळे शिक्षण, संस्कार, नैतिकता, अध्यात्म, व्यवहारज्ञान आणि समाजहित यांचा समन्वय तिच्यात दिसून येतो. भारतीय परंपरेत ज्ञान हे सत्यशोधन, आत्मपरिष्कार आणि समाजकल्याण यांचे माध्यम मानले गेले आहे.

या परंपरेत गुरु-शिष्य नात्याला विशेष महत्त्व आहे. गुरुकडून केवळ विषयज्ञानच नव्हे तर जीवनमूल्ये, आचारसंहिता आणि सामाजिक भान यांचेही संक्रमण होत असे. स्वाध्याय, चिंतन, प्रत्यक्ष अनुभव आणि संवाद ही ज्ञानसंपादनाची महत्त्वाची साधने मानली गेली. यामुळे भारतीय ज्ञानव्यवस्था ही अनुभवाधिष्ठित आणि मूल्याधिष्ठित ठरते.

भारतीय ज्ञान परंपरेची वैशिष्ट्ये :

भारतीय ज्ञान परंपरेची वैशिष्ट्ये केवळ प्राचीनता किंवा पारंपरिकता इतकी मर्यादित नाहीत, तर ती तिच्या

जीवनाभिमुख भूमिकेतून प्रकट होतात. ही परंपरा व्यक्तीच्या शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक आणि आध्यात्मिक विकासाला एकत्रित महत्त्व देते. त्यामुळे शिक्षण हे केवळ परीक्षाकेंद्री न राहता जीवनकेंद्री बनते.

या परंपरेत सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, समता, कर्तव्यनिष्ठा आणि परोपकार यांसारखी मूल्ये केंद्रस्थानी आहेत. त्याचबरोबर मानव आणि निसर्ग यांच्यातील परस्परसंबंध ओळखून शाश्वत जीवनपद्धतीला प्राधान्य दिले जाते. अध्यात्म आणि विज्ञान यांचा समन्वय, तसेच विविध विचारप्रवाहांचे समायोजन, हेही भारतीय ज्ञान परंपरेचे महत्त्वपूर्ण अंग आहे.

NEP-2020 आणि भारतीय ज्ञान :

राष्ट्रीय शैक्षणिक धोरण २०२० मध्ये भारतीय ज्ञान परंपरेचा स्पष्ट उल्लेख करून तिचा अभ्यासक्रमात समावेश करण्याची दिशा दाखविण्यात आली आहे. हे धोरण भारतीय शिक्षणव्यवस्थेला केवळ स्पर्धात्मक, कौशल्याधारित किंवा रोजगाराभिमुख बनविण्यापुरते मर्यादित नसून ती सांस्कृतिकदृष्ट्या समृद्ध आणि मूल्याधारित करण्याचा प्रयत्न करते. त्यामुळे भारतीय भाषा, साहित्य, कला, तत्त्वज्ञान, स्थानिक ज्ञान आणि परंपरा या शिक्षणाचा अविभाज्य भाग ठरतात.

या धोरणात मातृभाषेतील शिक्षण, बहुविषयक अध्ययन, संशोधन, अनुभवाधारित शिक्षण आणि स्थानिक ज्ञानाच्या सन्मानावर भर देण्यात आला आहे. त्यामुळे मराठी संतसाहित्याचा अभ्यास हा केवळ साहित्यविषयक मुद्दा न राहता शिक्षणधोरणाशी संबंधित महत्त्वाचा प्रश्न बनतो. संतसाहित्यामुळे विद्यार्थ्यांमध्ये सांस्कृतिक अभिमान, भाषिक जाणीव, सामाजिक संवेदनशीलता आणि नैतिक मूल्ये विकसित होतात.

मराठी संतसाहित्य :

मराठी संतसाहित्य ही भारतीय ज्ञान परंपरेची लोकाभिमुख अभिव्यक्ती आहे. तेराव्या शतकापासून महाराष्ट्रात भक्ती चळवळ उदयास आली आणि तिच्या माध्यमातून ज्ञान सामान्य लोकांपर्यंत पोहोचू लागले. संतांनी संस्कृतातील तात्त्विक आशय मराठीमध्ये रसाळ आणि समजण्यास सोप्या भाषेत व्यक्त केला. यामुळे ज्ञानाचा दरबार खुला झाला आणि समाजातील वंचित, बहुजन, स्त्री-पुरुष, शेतकरी, कारागीर आणि सामान्य नागरिक यांनाही आध्यात्मिक व नैतिक ज्ञान उपलब्ध झाले.

संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत एकनाथ, संत तुकाराम, समर्थ रामदास, बहिणाबाई, चोखामेळा, जनाबाई, सावता माळी, गोरा कुंभार, नरहरी सोनार यांसारख्या संतांनी अभंग, ओवी, भारुड, कीर्तन, आरती, गवळण आणि इतर प्रकारांद्वारे समाजप्रबोधन केले. त्यांच्या लेखनात भक्तीबरोबरच समता, कर्तव्य, सत्य, विवेक, आत्मसंयम आणि लोककल्याण यांचा सातत्यपूर्ण पुरस्कार दिसून येतो.

भक्ती चळवळ आणि ज्ञानलोकशाही :

भक्ती चळवळीचा सर्वात महत्त्वाचा परिणाम म्हणजे ज्ञानाचे लोकशाहीकरण. धार्मिक व तात्त्विक ज्ञान एका विशिष्ट वर्गापुरते मर्यादित असताना संतांनी ते लोकभाषेतून सर्वसामान्यांपर्यंत पोहोचविले. यामुळे ज्ञान हे केवळ विद्वान किंवा पुरोहित वर्गाचे बौद्धिक भांडार न राहता समाजाच्या सामूहिक संस्कृतीचा भाग बनले.

या प्रक्रियेत कीर्तन, प्रवचन, अभंगगायन, भारुड आणि ओवी यांसारख्या लोकप्रकारांचा अत्यंत प्रभावी वापर झाला. या माध्यमांनी समाजातील अज्ञान, अंधश्रद्धा, कर्मकांड आणि जातिभेद यांवर प्रहार केला. संतांनी

मानवतावाद, समानता आणि अंतःकरणशुद्धी यांवर भर दिला. त्यामुळे भक्ती चळवळ ही धार्मिक चळवळ असली तरी तिचा परिणाम सामाजिक, शैक्षणिक आणि सांस्कृतिक परिवर्तनात झाला.

महाराष्ट्राची पार्श्वभूमी :

तेराव्या ते अठराव्या शतकातील महाराष्ट्र विविध राजकीय सत्ता, सामाजिक संघर्ष आणि धार्मिक उलथापालथींनी व्यापलेला होता. जातिव्यवस्था, अस्पृश्यता, धार्मिक कर्मकांड आणि सामाजिक विषमता यांमुळे सामान्य जनतेचे जीवन गुंतागुंतीचे झाले होते. अशा परिस्थितीत संतपरंपरेने आश्वासक, समताधिष्ठित आणि लोकाभिमुख पर्याय दिला.

महाराष्ट्राची सांस्कृतिक जीवनशैली ही कीर्तन, प्रवचन, भजन, वारी, गोंधळ, पोवाडा, लावणी आणि लोककला यांशी घट्ट जोडलेली होती. या लोकपरंपरांमधून सामाजिक स्मृती, इतिहास, मूल्ये आणि सांस्कृतिक ओळख जतन झाली. मराठी भाषा ही केवळ संप्रेषणाचे माध्यम न राहता सांस्कृतिक आणि बौद्धिक अभिव्यक्तीचे सामर्थ्यवान साधन ठरली.

लोकाभिमुख ज्ञान :

मराठी वाङ्मयाचे सर्वात ठळक वैशिष्ट्य म्हणजे त्यातील लोकाभिमुखता. संतांनी आणि लोककवींनी ज्ञानाला जीवनाच्या दैनंदिन व्यवहाराशी जोडले. त्यामुळे साहित्य हे केवळ आनंद किंवा मनोरंजनाचे माध्यम न राहता लोकशिक्षणाचे साधन बनले. सामाजिक न्याय, श्रमप्रतिष्ठा, पर्यावरणस्नेह, स्त्री-सन्मान, बंधुभाव आणि मानवी मूल्ये यांचा प्रसार या वाङ्मयातून झाला.

या लोकाभिमुख दृष्टिकोनामुळे ज्ञाननिर्मितीची प्रक्रिया केवळ केंद्रित न राहता व्यापक झाली. स्थानिक अनुभव, भाषा, परंपरा आणि जीवनसंदर्भ यांना महत्त्व मिळाले. भारतीय ज्ञान परंपरेतील "ज्ञान सर्वांसाठी" हे तत्त्व मराठी संतसाहित्याने प्रभावीपणे साकार केले.

चिकित्सक मूल्यांकन :

सध्याच्या काळात तंत्रज्ञान, जागतिकीकरण आणि स्पर्धात्मक शिक्षण यांच्या पार्श्वभूमीवर स्थानिक ज्ञानपरंपरेचे महत्त्व कधी कधी कमी लेखले जाते. परंतु भारतीय ज्ञान परंपरा आणि मराठी संतसाहित्य यांचा अभ्यास विद्यार्थ्यांना त्यांच्या सांस्कृतिक मुळांशी जोडतो. तसेच तो चिकित्सक विचार, नैतिकता, संवेदनशीलता आणि सामाजिक जबाबदारी विकसित करतो.

NEP-2020 मुळे या ज्ञानपरंपरेला शैक्षणिक पातळीवर नवे स्थान मिळाले आहे. त्यामुळे भविष्यातील अभ्यासक्रम, अध्यापनपद्धती आणि संशोधन यांमध्ये मराठी संतसाहित्य व भारतीय ज्ञान परंपरेचे समावेशी, बहुविषयक आणि आंतरशाखीय मूल्यमापन होणे आवश्यक आहे. हा दृष्टिकोन केवळ इतिहास जपणारा नसून भविष्यनिर्मितीस हातभार लावणारा आहे.

निष्कर्ष :

भारतीय ज्ञान परंपरा ही भारताच्या सांस्कृतिक आणि शैक्षणिक ओळखीचा मूलाधार आहे. ज्ञान, मूल्ये, अनुभव आणि लोकजीवन यांचा समन्वय हे तिचे प्रमुख वैशिष्ट्य आहे. राष्ट्रीय शैक्षणिक धोरण २०२० ने या परंपरेचे आधुनिक शिक्षणातील महत्त्व अधोरेखित केले असून तिच्या पुनर्प्रतिष्ठेसाठी आवश्यक दिशा दाखविली आहे.

मराठी संतसाहित्याने ही परंपरा लोकभाषेतून सर्वसामान्यांपर्यंत पोहोचवून ज्ञानाचे लोकशाहीकरण केले. त्यातून सामाजिक समता, नैतिकता, भक्ती, विवेक आणि लोककल्याण यांचा प्रसार झाला. म्हणून मराठी वाङ्मय हे केवळ साहित्यिक वारसा नसून भारतीय ज्ञान परंपरेचे जीवंत, प्रभावी आणि शिक्षणोपयोगी माध्यम आहे.

संदर्भ :

1. भालेराव, शंकर. मराठी वाङ्मयाचा इतिहास. पुणे : स्नेहवर्धन प्रकाशन, 2018.
2. जोशी, गं. ना. भारतीय संस्कृतीचा इतिहास. पुणे : कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, 2015.
3. पेंडसे, शं. वा. महाराष्ट्राचा सांस्कृतिक इतिहास. पुणे : कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, 2012.
4. सरदार, गं. बा. संत वाङ्मयाची सामाजिक फलश्रुती. पुणे : पॉप्युलर प्रकाशन, 2010.
5. तुळपुळे, शं. गो. पाच संतकवी. पुणे : कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, 2004.
6. ढेरे, रा. चिं. महाराष्ट्राचा देव्हारा. पुणे : पद्मगंधा प्रकाशन, 2014.
7. ढेरे, रा. चिं. लोकसंस्कृतीचे उपासक. पुणे : पद्मगंधा प्रकाशन, 2011.
8. मोरे, सदानंद. तुकाराम दर्शन. पुणे : सकाळ प्रकाशन, 2014.
9. देशपांडे, अ. ना. मराठी भक्ती साहित्य. पुणे : मेहता पब्लिशिंग हाऊस, 2016.
10. पाठक, अरुणचंद्र शंकर (संपा.). महाराष्ट्र : इतिहास — प्राचीन काळ. मुंबई : महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, 2003.



गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540



KANCHANLATA कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Women, Memory and Indigenous Wisdom : Exploring the Role of Female Voices in Contemporary Indian English Literature

Ashwini Kamble

Assistant Professor,

S. P. Hegshetye College of Arts, Commerce and Science, Ratnagiri, Maharashtra.

Women, Literature and Indigenous Wisdom : Exploring Female Voices in Contemporary Indian English Literature through IKS perspective.

-Ashwini Kamble, Ratnagiri, Maharashtra.

Abstract :

India is a unique country with thousands year old civilization. Indian Knowledge has a wide base and should be studied in depth with a larger perspective. The new education policy (NEP) emphasized the need to recover indigenous knowledge, which was always there in Indian culture, traditions, and practices. In this regard, the role of women in the Indian Knowledge System (IKS) is crucial. When we talk about women and culture, the feminist, postcolonial, and psychoanalytic theories have always portrayed women as victims and submissive. Society and researchers often overlook their role as custodians and transmitters of indigenous knowledge, despite its importance. This paper focuses on the role of women in contemporary Indian English fiction literature. Women writers do not write just about cultural symbols or victimized objects; but they are preserving and transmitting traditional wisdom, values, oral traditions, practices, and collective memory across generations. Also they are providing new perspective to the existing beliefs and constructively adding into knowledge repository.

This is an attempt to explore the role of women beyond the conventional Western theoretical paradigms and contribute to decolonizing knowledge systems. It also reveals how through literature women are preserving, negotiating and transmitting the knowledge and some concepts like memory, *dharma*, *aatm-bhan* and traditional wisdom to next generations.

Key Words : *IKS, Literature, Role of Women, Wisdom, Traditions*

Introduction :

The new education policy (NEP) has focused on Indian Knowledge System (IKS). It is not about some holy books and some great names. IKS is beyond these words and deeper than we imagine. IKS is indigenous knowledge. There has been new way to look into culture, practices, literature and identity. The holistic philosophy of IKS conceptualizes knowledge as experiential, relational, and embodied rather than exclusively textual or empirical (Kapoor & Singh, 2022).

IKS does not mean merely *Vedas* and *Puranas* and Sanskrit, but it is deeper and practical information about philosophy, medicine, ecology, agriculture, arts, literature, spirituality, and traditional wisdom. This was developed and transmitted across generations, particularly by oral practices. And if study it in detail, we find that women play central role in passing on this traditions, ethical values and remedial practices to the next generation. Colonial modernity and patriarchal historiography have often marginalized women's contributions by privileging institutional and textual forms of knowledge over actual lived and experienced ways of knowing (Shiva, 1988; Chakravarti, 2003).

The feminist theories and cultural theories have often explained how women were never given due credit for their contrition. Indian women are living archive of inherited wisdom, ethical practices, ecological relationships, and cultural continuity. With the time, their way of contribution has changed. Earlier it was mainly songs and stories told orally, and now through writing they pass their traditional wisdom to the next generations.

Contemporary Indian English literature written by female writers provides a space for examining these intersections of practice, memory, and indigenous knowledge through their writings. Novelists such as Shashi Deshpande, Arundhati Roy, Anita Desai, Kiran Desai, Chitra Banerjee Divakaruni, Meena Kandasamy, Namita Gokhale and Koral Dasgupta have written about history, mythology, caste, gender, displacement, trauma and resilience. Their writings showed how women's lived experiences become repositories of cultural memory while challenging patriarchal and colonial narratives. This fictional writing presented women not mere as a victim but these texts depict women as active producers and transmitters of knowledge whose daily practices preserve history, indigenous traditions and collective identities. (Roy, 1997; Deshpande, 1988).

Although, many scholars have written about it, Indian English literature is relatively less explored with IKS perspective and this is an attempt to do so. The study examines how literary representations of women negotiate tradition and modernity, preserve indigenous modes of knowing, and reconstruct cultural memory through lived experience. This article argues that contemporary Indian English literature re-imagines women's roles as repositories of embodied knowledge and cultural memory

through their stories. The study challenge the dominance of Western approach to look at the role of women in knowledge production and cultural preservation.

Research Problem :

The contemporary Indian English literature and role of women in cultural practices these are well explored topics in academic research. But limited attention has been paid to the female voices in literature that functions as repositories of Indian Knowledge Systems. This gap helps this research to form research problem.

The paper is an attempt to find the answer of following questions :

- How does memory and storytelling function as a medium for preserving Indian Knowledge Systems?
- How does contemporary Indian English literature contribute to the preservation and reinterpretation of values given by Indian Knowledge System?

Review of Literature :

There are many research articles available online, which argue that women are the custodians of Indian knowledge system and they are passing the traditional wisdom to the next generation through many ways like story-telling and daily living practices. Follow are some representative examples to have an idea.

Suman Bala and Garima Tomar have written an article ‘Role of Women in Traditional Indian Knowledge Systems’. It deals with historical role of women in India’s traditional knowledge system. It argues that their immense contributions have often overlooked. Authors argue that integrating these contributions into modern educational curricula can promote gender equity and help preserve India’s intellectual heritage.

In the article ‘Women’s Voices in Indigenous Knowledge Systems: Guardians of Cultural Heritage’, Sailaja Petikam and Prof. Dr. Manjiree Vaidya wrote about crucial role of women in preserving and transmitting Indigenous Knowledge Systems (IKS). Despite facing challenges from globalization, modernization, and social inequalities, indigenous women continue to play a vital role in sustaining cultural heritage and promoting environmental sustainability.

Dr. Pooja Sharma and Dr. Ritu Sharma have written an article ‘Continuity and Change: Analyzing the Role of Women as Custodians of Indian Knowledge System through the Ages’. The paper concludes that women have been indispensable custodians of the Indian Knowledge System throughout history.

IKS and Literature :

The terms like *Smriti*, *Parampara*, *Dharma* and *Aatam-jyan* part inseparable part of Indian Knowledge system. Women writers explored these concepts through their stories. Most of the knowledge is passed based on the *Smriti* (memory). The concept of memory plays a central role

preservation of culture. Traditional wisdom is not written it was transmitted by oral practices through stories and folk songs. It helped to sustain the civilization. Memory helped to pass the traditions. *Parampara* is the knowledge and practices passed by generations to generations. In most of the families, the traditional knowledge is passed by grandmother to mother and then to the daughter. Women pass the knowledge through stories, rituals, cooking, songs, festivals and everyday practice. Education was never limited to schools. It is considered as a daily practice. It was purely based on the experiences. *Dharma* means one's responsibility. A person has perform many duties but what is the conflict arises, when social responsibility clashes with one's own responsibility, there dharma helps person to take better decision. Through this practice *aatm-jyan* arises. This means self-awareness and self-respect. IKS teaches us to self-value. These values are more important than any holy script. These values are essence of IKS.

In literature time and again many writes focus on above mentioned values. From Kalidas's *Meghdoot* to Arundhati Roy's *My Mother Mary*, fictional stories give importance to memory, tradition and responsibility. A study of literature with IKS approach throws a new light on many practices. Contemporary Indian English literature provides a valuable platform for exploring these dimensions of women's knowledge and cultural memory. Indian women's body of work demonstrates that indigenous wisdom is not limited to ancient scriptures or formal scholarship but exists within everyday experiences and the lived realities of communities.

Methodology :

The research design for this paper is qualitative. Close reading of the selected text and thematic analysis of the same text are the methods used to explore the research problems. The interpretations of the selected text are a defined approach to the research. The selected text is a purposive sampling and this has been useful to study the text through IKS perspective. Novels by some acclaimed female writers have been purposely chosen to study them with IKS point of view. The selection is purposive with some personal inclination with not any kind of hierarchy.

Analysis and Interpretation :

Following text is analyzed for this research :

- **Anita Nair : Ladies Coupé :**

It is a 2001 novel. This shows the relationship between the protagonist Akhila, a 45-year-old single tax clerk and her fellow six travellers. She boards a train to Kanyakumari to find independence and figure out if a woman can be happy alone.

The novel connects with IKS through its engagement with traditional cultural structures, philosophical concepts of identity, and indigenous narrative traditions. The stories of the personal experiences are a tool to comment on the society. While the novel is primarily analyzed through a

modern feminist lens, it actively critiques, navigates, and subverts elements deeply rooted in historical Indian societal and philosophical frameworks.

- **Arundhati Roy: God of Small Things :**

It is the Booker Prize-winning novel published in 1997. Set in Ayemenem, Kerala, it is the story of cousins and the tragic consequences of their family breaking India's strict "Love Laws," which dictate 'who should be loved, and how much'.

The novel connects with IKS as there are elements of Element *Prakriti* (Traditional Ecological) and socio-cultural interconnectedness. The river is an important part of story. This aligns directly with the IKS core concept of *Prakriti* (nature) and eco-centric frameworks. It also highlights how the erosion of traditional, holistic communal ethics (*Dharma*) led to destructive social fragmentation.

- **Kiran Desai : Inheritance of Loss :**

It was published in 2006 and a winner of the Man Booker Prize. It is a story of memory, migration and inherited cultural knowledge.

In the novel, the memory acts a psychological anchor, keeping characters connected to past failures, humiliations, and historical wounds. The memory of racial humiliation in England, leading to self-hatred and total alienation from his roots, is one of themes of the novel. Another character had beautiful memories of past. It creates the memories of a highly idealized India to cope with his crushing poverty. The story telling is used as a tool for survival and to create a hope through illusion.

- **Chitra Banerjee Divakumari : The Mistress of Spices :**

It was published in 1997. It is a story of Tilo, a famous immigrant from India who runs a traditional spice shop in Oakland, California. Bound by strict rules from her training, Tilo uses the mystical, curative powers of her sentient spices to heal the emotional, physical, and cultural wounds of the local South Asian diaspora.

It includes *Dravya Guna Shastra*-a branch of Ayurveda that deals with characteristics and therapeutic values of spices. In the novel, spices are not just natural substances but they are living elements with distinct spiritual, emotional, and physical potencies (*Virya*). It can be analyzed for *Shruti* (that which is heard) and *Smriti* (that which is remembered).

- **Kavita Kane : Karna's Wife : The Outcast's Queen :**

A 2013 novel is a fictional story of Karna's wife. Other than this Sita's Sister, Lanka's Princess and Bhima's Wife are some of the books Kane has on her name.

Here she writes about extremely marginalized and ignored character and that is wife of Karna. Instead of only writing with modern Western feminist she explores the character with an internal critique of ancient Indian law (*Dharmashastras*), epic history (*Itihasa*), and philosophical psychology (*Manas*). She re-visits the traditional characters and stories to seek newer, contextual layers of truth.

- **Meena Kandasamy : The Gypsy Goddess :**

A popular contemporary Tamil writer. A 2014 novel, is about a real life Kilvenmani massacre which took place in 1968. 44 Dalits land-laborers were burnt alive by upper caste landlords for demanding fair wages. Deeply sadden by this, she has written on this. The title of the novel itself draws on folk and scriptural traditions of the divine feminine (*Shakti*). In traditional Indian aesthetics (*Rasa Shastra*), the divine is often romanticized. Kandasamy uses irony to dismantle the “exotic” image of the Indian goddess popular in Western-eccentric or mainstream Indian literature. Instead of a story of an individual hero’s journey, the novel emphasizes on role of *Sabha* or *Samiti*—the collective community soul.

- **Namita Gokhale : *Paro* : Dreams of Passion :**

She is an Indian fiction writer and editor. Above mentioned novel is her debut novel. She also won the Sahitya Akademi Award in 2021.

Analysis of *Paro* : Dreams of Passion through IKS perspective shows that the novel mainly revolves around four-fold goals of existence, *Purushartha*, *Dharma*, *Karma* and *Artha*. There are so many references with ancient concepts like *Purushartha*, *Kama*, *Dharma*, and *Artha*. In the elite circles of elite Bombay and Delhi, the characters completely detach *Kama* and *Artha* from *Dharma*, and this has been portrayed beautifully by Namita Gokhale.

- **Koral Dasgupta : The *Sati* Series :**

This writer has presented traditional, well known stories with a fresh perspective. She is best known for her *Sati* Series. She focuses on retelling the stories of the *Pancha Kanyas* (five iconic women from Hindu epics *Mahabharat* and *Ramayan*) through a strong modern feminist, but not western lens: *Ahalya* (2020), *Kunti* (2021), *Draupadi* (2022), *Mandodari* (2023) *Tara* (2024)

In conventional Western feminist theory, these five women could have analyzed as victims under a patriarchal structure. But an IKS perspective shows them through ***Kanya-Tattva*** (the principle of the eternal, spiritually independent female). Rather than presenting them merely as mythological figures, the series explores their emotions, choices, leadership, and moral dilemmas through a contemporary feminist lens and present them strong independent women and not just victims. The series challenges rigid interpretations of *dharma*.

9. Shashi Deshpande : That Long Silence :

She is a popular Indian writer, known for her portrayals of women’s lives, family relationships, and identity. She has also won Sahitya Akademi Award in 1990.

That Long Silence, is a novel explores concepts like *Atma-jnana*, *Dharma*, *Satya*, and balance in life. It is story of Jaya, who is dutiful wife and caring mother, as per the social norms. However, she gradually questions whether fulfilling prescribed roles alone constitutes *dharma*. She searches for

her *Dharama* and for self-realization. Her journey illustrates the tension between social duty and personal integrity.

Conclusion :

The study of above mentioned works, their stories, themes, characters written by contemporary Indian women writers, shows how strongly it is connected with Indian Knowledge System. Rather than presenting IKS as a fixed or unquestioned tradition, these women reinterpret its philosophical, ethical, and social values in the context of today's changing realities.

Collectively, these stories tell us how these contemporary Indian women writers neither reject traditions nor accept it uncritically. Instead, they engage in a process of reinterpretation that preserves the philosophical depth of IKS while challenging patriarchal, caste-based, and socially restrictive interpretations that have developed over time. Their writings affirm that IKS is not merely a repository of ancient knowledge but a living, evolving tradition capable of addressing contemporary questions of gender, identity, ethics, and social justice.

Hence, the research shows that the Indian women writers have re-visited IKS through their stories. Their wisdom contributed significantly into the field of literature. They have re-told the old stories from mythology, history and lived experiences and tried to pass their knowledge, experiences to the next generation. Their narratives bridge the past and the present. They have focused on *dharma*, compassion, ethical responsibility, self-realization and human dignity. And these are essential part of Indian culture while reaffirming the continuing relevance of indigenous knowledge traditions in the twenty-first century.

Bibliography :

- Chakravarti, U. (2003). *Gendering caste: Through a feminist lens*. Stree.
- Deshpande, S. (1988). *That long silence*. Penguin Books.
- Ingole, K. (2026, Feb). Indian Knowledge and Women's Empowerment. *Gurukul International Multidisciplinary Research Journal-GIMRJ*, I(XIV).
- Kapoor, K., & Singh, A. K. (Eds.). (2022). *Indian knowledge systems: Vol. I*. Indian Institute of Advanced Study. (Use the specific edition available to you.)
- Nikam, D. M. (2025, January). Women in Indian Knowledge Systems: Contributions and Representations. *International Journal of Creative Research Thoughts*, 13(1).
- Pooja Sharma, Ritu Sharma. (2024). Continuity and Change: Analyzing the Role of Women as Custodians of Indian Knowledge System Through the Ages. *Shodh Samagam- A Multidisciplinary and Multilingual Research Journal*.
- Roy, A. (1997). *The God of Small Things*. IndiaInk.

- Sailaja Petikam, Manjiree Vaidya. (2024, April-June). Women's Voices in Indigenous Knowledge Systems: Guardians of Cultural Heritage. *GAP BODHI TARU- A Global Journal of Humanities*, VII(II), 390-395.
- Shiva, V. (1988). *Staying alive: Women, ecology and survival in India*. Kali for Women.
- Suman Bala, G. T. (2025, July). Role of Women in Traditional Indian Knowledge Systems. *Jagannath University Journal of Research and Review*, 1(2), 204-207.
- <https://www.purplepencilproject.com/indian-mythological-women-writers/>

Contact: ashwini.sph@gmail.com



गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540



KANCHANLATA कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Indian Cultural Values and Sustainable Entrepreneurship: Fostering Ethical, Innovative and Resilient Enterprises for Viksit Bharat 2047

Ishika Chugh

Assistant Professor, RKSD College, Kaithal.

Abstract :

The development of India into a developed nation by 2047 is one of those initiatives where there is the requirement of building up India's entrepreneurship eco-system having aspects of economic development combined with ethics, social responsibility, innovation, and sustainability. In this respect, Indian culture along with its knowledge systems can provide a strong foundation for sustainable entrepreneurship. The present study aims at providing the reader with some ideas about various concepts including Dharma, Satya, Ahimsa, Seva, trusteeship, Vasudhaiva Kutumbakam, and jugaad, for entrepreneurship. These are some of the key aspects that can add to the viability of a business over time: a stakeholder approach, ethical decision making, responsible resource management, resource-efficient innovations, and a social responsibility approach. Indian cultural values, on the other hand, are not purely philosophical and historical in nature. They can be interpreted in a manner that makes them contribute towards building responsible entrepreneurship. However, a number of issues that require consideration have been identified in the study. These include poor integration of indigenous knowledge systems in entrepreneurship education, resource constraints on MSMEs, rise in cyber threats, and tension between quick economic gains and sustainable success. According to the findings of the paper, there is a need to work towards improving the process in institutions, promoting responsible innovation, creating entrepreneurship support for all entrepreneurs, and enhancing value-based entrepreneurship education.

Keywords : Indian cultural values, sustainable entrepreneurship, Indian knowledge system, ethical business, enterprise resilience, Viksit Bharat 2047.

1. Introduction :

Entrepreneurship is widely recognised as one of the main factors that accelerates economic development. Entrepreneurs facilitate resource utilization, innovation, employment generation, and product/service provision. Various initiatives have been undertaken in India to exploit this aspect. Efforts made to establish an environment for innovation and growth of the business sector have been facilitated through initiatives such as Startup India, Digital India, and many other skill development initiatives. For instance, the initiative "Startup India" was launched to foster entrepreneurship, investments, and innovations (Department for Promotion of Industry and Internal Trade (DPIIT), 2024).

Further, an increasing number of DPIIT-approved businesses have been established in India, which is a testament to the growing significance of entrepreneurship in the developmental initiatives of India (DPIIT, 2024). Nevertheless, financial indicators alone are not sufficient for evaluating the performance of entrepreneurs. There are various determinants like stakeholder concerns, environmental limitations, technology issues, resource limitations, and ethics that influence the dynamic world of business. The concept of triple bottom line strategy focuses on making economic, social, and environmental progress (Elkington, 1997); however, stakeholder theory emphasizes the impact of a firm's activities on numerous other parties rather than stockholders (Freeman, 1984). This theory is extended to create sustainable entrepreneurship, where economic value is generated, in addition to solving the issues confronting society and the environment through the operations of the business (Dean & McMullen, 2007; Shepherd & Patzelt, 2011). The cultural legacy of India provides a very unique angle here. The Ministry of Education of India promotes the inclusion of Indian Knowledge Systems (IKS) in education and scientific research, keeping in view the National Education Policy 2020 (Ministry of Education, Government of India, 2020, 2024). Dharma, Satya, Ahimsa, Seva, Trusteeship, and Vasudhaiva Kutumbakam mean responsibility, truthfulness, non-violence, service, trusteeship, and interdependence respectively in the above context. Jugaad means effective innovation. These issues have more relevance when we consider the concept of Viksit Bharat @2047. As mentioned by the Government of India, Viksit Bharat @2047 refers to a vision in which India becomes a developed country in the year 2047 through economic development, social development, sustainable living, and good governance (Prime Minister's Office, 2023). From this point of view, sustainable business with ethics and culture might be one approach to achieve the goals of Viksit Bharat 2047.

2. Review of Literature

2.1 Indian Cultural Values and Ethical Entrepreneurship :

Because the institutional and cultural elements, as well as market opportunities, affect the decision-making process of entrepreneurs, the relationship between culture, ethics, and

entrepreneurship is becoming increasingly important. Bucar et al. (2003), in their comparative cross-country study, found the importance of institutional and national environment for the formation of ethical attitudes among entrepreneurs and managers. Additionally, Goodpaster (1991) emphasized the necessity of considering stakeholders' interests in the field of business ethics as moral reasoning could not be confined only to profit maximisation. Finally, Boatright (2000) viewed corporate ethics as a basis of ethical management. The approach that takes into consideration social and ethical aspects of doing business in India is the Indian Knowledge System (IKS). As stated by Maheshwari (2024), the combination of IKS with contemporary business will bring sustainability, innovation, and ethics. Indian Knowledge Systems (IKS) have been regarded as an important aspect of knowledge and education in India by the Ministry of Education, Government of India (2024). It is evident that cultural values can serve as a basis for decision-making in business organizations. Nonetheless, the use of classical thought in contemporary business should not be seen as the mere combination of classical thought and contemporary business.

2.2 Sustainable Entrepreneurship, Stakeholders and Enterprise Resilience :

As far as sustainable entrepreneurship is concerned, it is quite obvious that there is a relationship between the actions of the company and the ability of the firm to create economic value as well as minimize the negative impact on society and environment. Sustainable entrepreneurship may be defined as a set of opportunities arising as a result of environmental problems (Dean & McMullen, 2007). The definition of sustainable entrepreneurship developed by Shepherd and Patzelt (2011) includes the relationship between the items that should be created and the items that should be sustained. Environmental and behavioral factors affect the sustainability of the firm (Tur-Porcar et al., 2018). There is no doubt that the outcomes revealed prove that sustainable entrepreneurship is associated not only with profitability but also morality and sustainability and taking into account the social and environmental aspects of the business. Whereas the stakeholder theory, conceptualized by Freeman (1984), is one of the theories that seek to integrate the employees, customers, community, and other stakeholders into the business decision-making process, the link between entrepreneurship and ethics and governance is made by Cressy et al. (2010). In this situation, trusteeship may be defined as responsible stewardship of resources and wealth while philosophies like 'Seva' and 'Vasudhaiva Kutumbakam' can be philosophically linked to stakeholder theory. The links should not be interpreted as empirical causal relationships but rather philosophical synthesis.

2.3 Indian Entrepreneurship Policy, Innovation and Viksit Bharat 2047 :

The following are some of the important aspects of Indian entrepreneurial strategy that include innovation, creation of start-ups, digitization, and institutional support. As indicated by Abhyankar (2014), Indian entrepreneurial strategy involves government policies for encouraging entrepreneurship

and innovation. Apart from this, the Startup India initiative has brought forward certain processes related to startups, intellectual property, procurement, and other ecosystem development (DPIIT). Besides, as per the Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises (2025), it is vital to give support to the MSMEs in order to make them part of the entrepreneurial ecosystem in India (2024). Generally, Indian culture, value systems, sustainability, and entrepreneurship are considered different domains in the contemporary academic scenario. To date, no research has been done on how sustainable entrepreneurship, Indian value system, and the concept of Viksit Bharat 2047 are connected. This study is aimed at bridging this gap by integrating all these aspects with ethics.

3. Research Gap :

The existing literature offers extensive discussion on sustainable entrepreneurship, business ethics, stakeholder responsibility, Indian Knowledge Systems, and entrepreneurship policy. However, these areas are frequently examined in isolation. The literature reviewed here gives relatively limited attention to how Indian cultural values can be integrated with sustainable entrepreneurship, particularly within the framework of Viksit Bharat 2047. Given this gap, the present study focuses on exploring the conceptual connections between Indian cultural values, ethical entrepreneurship, enterprise resilience, and sustainable national development.

4. Objectives of the Study :

- 4.1 To examine the role of Indian cultural values in promoting sustainable entrepreneurial practices.
- 4.2 To analyze how Indian cultural values can support ethical decision-making and contribute to resilient enterprise development.
- 4.3 To explore the contribution of sustainable entrepreneurship to the vision of Viksit Bharat 2047.
- 4.4 To suggest strategies for integrating Indian cultural values into contemporary entrepreneurial practices.

5. Research Methodology :

The study follows a descriptive and conceptual research design based entirely on secondary sources. These sources include peer-reviewed journal articles, books, government reports, policy documents, and official publications from institutions such as the Ministry of Education, Ministry of MSME, DPIIT, NITI Aayog, and other relevant government bodies. The selected literature was reviewed to understand the relationship between Indian cultural values, sustainable entrepreneurship, ethical business conduct, and enterprise resilience. Accordingly, the findings are presented as conceptual interpretations drawn from the reviewed literature and policy material.

6. Indian Cultural Values and Sustainable Entrepreneurship :

The production and distribution of goods and services are just one aspect of entrepreneurship.

These aspects include the recognition of opportunities, innovation, leadership, resource management, and relationships with stakeholders. The ethics of the entrepreneur define the manner in which he or she deals with these aspects. Cultural ethics could be the guiding principle of decision-making in Indian companies. In relation to entrepreneurship, the concept of dharma could be taken as the responsibility of an individual. Satya refers to the notion of truth and has connections with communication. The idea of Ahimsa is concerned with avoiding any injury and is essential from the standpoint of employee health and environmental sustainability of the production process. Seva refers to the idea of service and can result in greater stakeholder engagement. The idea of trusteeship, which is particularly connected with the ideas of Mahatma Gandhi, can be considered an example of rational use of resources and not their enrichment. The philosophy of vasudhaiva kutumbakam, which means "the world is one family", provides a basis for stakeholder leadership.

Indian Cultural Value	Application in Entrepreneurship	Potential Contribution to Sustainable Enterprise
Dharma	Ethical decision-making and legal compliance	Credibility and long-term orientation
Satya	Truthful communication and transparency	Stakeholder and customer trust
Ahimsa	Minimizing harmful production methods	Environmental and employee well-being
Seva	Community engagement and public service focus	Social responsibility and stakeholder relationships
Trusteeship	Responsible management and stewardship of resources	Responsible governance and inclusive value creation
Vasudhaiva Kutumbakam	Stakeholder-inclusive leadership	Collaboration and social cohesion
Jugaad	Resource-efficient, adaptive, and frugal innovation	Adaptability and business resilience

Table 1. Indian Cultural Values and Their Potential Contributions to Sustainable Entrepreneurship.

The intention behind the use of the table is not to confirm that all cultural values will end up causing a particular financial consequence but rather to provide a theoretical perspective that seeks to demonstrate that the current view on social responsibility can be made consistent with traditional ethics. This is because cultural values vary according to circumstances and practices. The idea of profit being not the only indicator of the entrepreneur's success is also substantiated by the more holistic way of perceiving sustainability. While the United Nations (2015) views sustainable development within the framework of an integrated approach to inclusive economic growth, social welfare, and environmental protection, Elkington (1997) pays special attention to the need for economic, social, and environmental balance. It follows that when such ideas start being translated into organizational practice, value-based entrepreneurship in India will perfectly comply with the modern notions of sustainability. Indian firms may act as excellent examples of socially responsible organizations.

In spite of this, rather than considering the situations to reflect on the company's orientation towards one culture or the other, they have to be evaluated based on the official organizational documents and statements. Examples of Indian organizations are cited in the current paper to highlight the broader possibilities of the combination of moral leadership, social responsibility, and good governance with the business activities. The requirement of ethics becomes even more important due to the digitalization of the organizations. Even though digitalization, artificial intelligence, e-commerce, and financial analytics give new possibilities to achieve better results, they bring up issues of cybersecurity, privacy, transparency, and appropriate use of the technology. The government has taken some measures on the issues of digital literacy and technology-based growth; the Digital India campaign has made digital facilities more accessible (Ministry of Electronics and Information Technology, Government of India, 2024). In this respect, moral values can play a role in boosting the potential of technology through innovation.

7. Challenges and Policy Suggestions :

Indian cultural values can help in sustainable entrepreneurship, but there are various challenges that have to be addressed. First, entrepreneurs might be more focused on meeting their economic needs than any ethical or environmental needs due to competitive pressures in the market. Second, Indian Knowledge Systems are neglected in traditional management and entrepreneurship education. Third, it is challenging for MSMEs and start-ups to embrace sustainability since they have challenges with respect to institutions, financing, and technologies (Ministry of Micro, Small, and Medium Enterprises, 2025). Fourthly, there are new concerns with regard to cybersecurity, misinformation,

privacy, and proper usage of AI due to rapid digitalization.

To address these challenges, the following policy and institutional measures are suggested :

- 7.1 While culture and ethics cannot be separated from the process of business, the entrepreneurial educational process must include both Indian ethics and contemporary business ethics along with innovations in that regard.
- 7.2 Besides the provision of finance and technology, the policies aimed at the development of startups and MSMEs should focus on responsible innovation and resource efficiency.
- 7.3 There will always be a need for extensive support when it comes to organizations focusing on entrepreneurial activities undertaken by women, rural entrepreneurship, and ecological entrepreneurship.
- 7.4 Programs concerned with digital entrepreneurship should consist of both cybersecurity education and ethical education as well as technical skills education.
- 7.5 Sustainable entrepreneurship is possible only through the combined efforts of policymakers, educational institutions, industrial bodies, and entrepreneurs.

In contrast to the Viksit Bharat @2047 mission of the government wherein the vision is hinged upon economic growth, social development, environment sustainability, and governance, the strategic role of the NITI Aayog for Viksit Bharat mission lies in the development of the country in the long-term (NITI Aayog, 2025; Prime Minister's Office, 2023). The above recommendations are aligned with the general thrust of the Viksit Bharat 2047 mission. In this connection, the importance of sustainable entrepreneurship anchored on ethics is significant in this entire process of development.

8. Conclusion :

The study provides a case where the combination of economic goals, along with ethics, social responsibility, innovation, and sustainability of the environment increases the effectiveness of entrepreneurship in stimulating sustainable growth in India. There may exist value-driven ethical decision-making approaches in the business arena through the utilization of Indian cultural values such as Dharma, Satya, Ahimsa, Seva, Trusteeship, Vasudhaiva Kutumbakam, and Jugaad. The reason for the importance of these Indian cultural values is the practical use of their principles in current contexts of stakeholders, sustainability, responsible innovation, and resilience of businesses. One way, therefore, to enhance the ethics and responsibility in business is through the integration of Indian Knowledge Systems into entrepreneurship education and business practices. However, what must be observed is that there will be no automatic sustainable success of any business on account of their cultural values only. Governance, education, structure, technology, resources and accountability have to be present before the above factors can bear fruit. In the context of Viksit Bharat 2047, the strategy mentioned above will help to create flexible organizations that are socially and environmentally

responsible as well as commercially viable. In the light of this, the cultural heritage of India may not only be considered as the one providing values for entrepreneurship, but as the historic identity of India as well. The environment-friendly to entrepreneurs may be created through the use of value-based leadership and sustainable innovations. In such a manner, India will manage to realize its mission of becoming a developed country by 2047.

9. References :

- Abhyankar, R. (2014). The government of India's role in promoting innovation through policy initiatives for entrepreneurship development. *Technology Innovation Management Review*, 4(8), 11–17.
- Boatright, J. R. (2000). *Ethics and the conduct of business* (4th ed.). Prentice Hall.
- Bucar, B., Glas, M., & Hisrich, R. D. (2003). Ethics and entrepreneurs: An international comparative study. *Journal of Business Venturing*, 18(2), 261–281.
- Cressy, R., Cumming, D., & Mallin, C. (2010). Entrepreneurship, governance and ethics. *Journal of Business Ethics*, 95(2), 117–120.
- Dean, T. J., & McMullen, J. S. (2007). Toward a theory of sustainable entrepreneurship: Reducing environmental degradation through entrepreneurial action. *Journal of Business Venturing*, 22(1), 50–76.
- Department for Promotion of Industry and Internal Trade. (2024). Startup India initiative. Ministry of Commerce and Industry, Government of India.
- Elkington, J. (1997). *Cannibals with forks: The triple bottom line of 21st century business*. Capstone.
- Freeman, R. E. (1984). *Strategic management: A stakeholder approach*. Pitman.
- Goodpaster, K. E. (1991). Business ethics and stakeholder analysis. *Business Ethics Quarterly*, 1(1), 53–73.
- Maheshwari, K. A. (2024). Integrating Indian Knowledge Systems into ethical entrepreneurship: Analyzing emerging trends and their influence on modern business and commerce. *Research Expression*, 11(7), 33–45.
- Ministry of Education, Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India.
- Ministry of Education, Government of India. (2024). *Indian Knowledge Systems*. Government of India.
- Ministry of Electronics and Information Technology, Government of India. (2024). *Digital India programme*. Government of India.

- Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises. (2025). Annual report 2024–25. Government of India.
- NITI Aayog. (2025). India’s path to global leadership: Strategic imperatives for Viksit Bharat @2047. Government of India.
- Prime Minister’s Office. (2023, December 11). Viksit Bharat @2047: Voice of Youth. Government of India.
- Radjou, N., Prabhu, J., & Ahuja, S. (2012). Jugaad innovation: A frugal and flexible approach to innovation for the 21st century. Random House India.
- Shepherd, D. A., & Patzelt, H. (2011). The new field of sustainable entrepreneurship: Studying entrepreneurial action linking “what is to be sustained” with “what is to be developed.” *Entrepreneurship Theory and Practice*, 35(1), 137–163.
- Tur-Porcar, A., Roig-Tierno, N., & Llorca Mestre, A. (2018). Factors affecting entrepreneurship and business sustainability. *Sustainability*, 10(2), 452.
- United Nations. (2015). Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development. United Nations.
- World Commission on Environment and Development. (1987). Our common future. Oxford University Press.

E-mail:- ishikachugh1211@gmail.com

जनप्रिय संस्कृति एवं डिजिटल भारत : सांस्कृतिक संक्रमण एवं परिवर्तन की दृष्टि

निखिला आर

शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल।

सारांश :

भारत में डिजिटलीकरण ने केवल संचार के तरीकों को नहीं बदला, बल्कि सांस्कृतिक सामग्री के निर्माण, प्रसार और उपभोग की पूरी प्रक्रिया को प्रभावित किया है। इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया, और ओटीटी मंचों ने जनप्रिय संस्कृति को अधिक त्वरित, सहभागी और संवादात्मक बनाया है। भारतीय संदर्भ में यह बदलाव विशेष महत्व रखता है, क्योंकि यहाँ भाषायी और क्षेत्रीय विविधता बहुत व्यापक है। प्रस्तुत अध्ययन 'डिजिटल भारत' को केवल डिजिटल अवसंरचना के विस्तार के रूप में नहीं, बल्कि उससे पैदा हुई सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में देखता है। लोकगीत, क्षेत्रीय भाषाएँ, सिनेमा और जीवन-शैली अब डिजिटल मंचों पर नए रूपों में दिखाई देते हैं। हालांकि, इनके साथ एल्गोरिद्मिक दृश्यता, बाजारीकरण, डिजिटल विभाजन, गलत सूचना और सांस्कृतिक एकरूपीकरण जैसी चुनौतियाँ भी जुड़ी हैं। इसलिए डिजिटल सांस्कृतिक परिवर्तन को परंपरा से आधुनिकता की सीधी यात्रा के रूप में देखने के बजाय स्थानीय और वैश्विक, परंपरागत और आधुनिक तत्वों के नए मेल के रूप में समझना अधिक उचित होगा।

बीज शब्द : जनप्रिय संस्कृति, डिजिटल भारत, डिजिटलीकरण, सांस्कृतिक परिवर्तन, सोशल मीडिया, ओटीटी, लोक-संस्कृति, भारतीय भाषाएँ।

प्रस्तावना :

संस्कृति कोई स्थिर व्यवस्था नहीं है। समाज में होने वाले आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी बदलाव उसके निर्माण और संचार के तरीकों को भी बदलते हैं। भारत में इंटरनेट और स्मार्टफोन का प्रसार इसी परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। डिजिटल तकनीक अब केवल सूचना प्राप्त करने का साधन नहीं रही, यह मनोरंजन, सामाजिक संपर्क और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का रोजमर्रा का माध्यम बन चुकी है। जनप्रिय संस्कृति में जहाँ पहले सिनेमा, संगीत, टेलीविजन, फैशन और विज्ञापन प्रमुख थे, वहीं आज मीम, पॉडकास्ट, वेब-सीरीज और डिजिटल लोक-सामग्री भी उसका हिस्सा हैं। इससे एक बुनियादी बदलाव यह आया है कि दर्शक अब केवल सामग्री का उपभोक्ता नहीं रहाय वह उसे बनाने और दूसरों तक पहुँचाने में भी सक्रिय भूमिका निभाता है।

जनप्रिय संस्कृति को केवल मनोरंजन के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। यह लोगों के सामूहिक अनुभव,

आकांक्षाओं और पहचान को आकार देने का भी माध्यम है। Hall के अनुसार, प्रतिनिधित्व केवल वास्तविकता को दिखाता नहीं, बल्कि अर्थ और पहचान के निर्माण में भी भूमिका निभाता है। भारतीय सिनेमा ने लंबे समय तक यह भूमिका निभाई है। हिंदी के साथ तमिल, तेलुगु, बंगाली, मराठी, मलयालम और अन्य भाषाओं की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ भी इस व्यापक लोकप्रिय संसार का हिस्सा रही हैं। डिजिटल माध्यमों ने इन्हें एक नए वितरण तंत्र से जोड़ दिया है। भारतीय नए मीडिया पर हुए शोध भी इसकी भाषायी और सांस्कृतिक विविधता को रेखांकित करते हैं। इसलिए डिजिटल संस्कृति को केवल पश्चिमी प्रभाव का परिणाम मानना ठीक नहीं होगा। उपयोगकर्ता वैश्विक प्लेटफॉर्मों को अपनी भाषा, प्रतीकों और सामाजिक अनुभवों के अनुसार अपनाते हैं। इसी प्रक्रिया में लोकगीत यूट्यूब तक पहुँचता है, लोकनृत्य रील का रूप लेता है और स्थानीय हास्य दूर-दराज के दर्शकों तक पहुँच जाता है।

डिजिटलीकरण ने सांस्कृतिक सामग्री की पहुँच को समय और स्थान की पुरानी सीमाओं से काफी हद तक बाहर कर दिया है। छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों के लोग भी अपने दैनिक जीवन और स्थानीय पहचान को डिजिटल सामग्री में बदलकर बड़े दर्शक-वर्ग तक पहुँचा सकते हैं। दक्षिण भारत के ग्रामीण ये यूट्यूबर्स पर हुए शोध से इस उभरती हुई 'वर्नाकुलर क्रिएटर कल्चर' का पता चलता है। इससे महानगरीय केंद्रों के सांस्कृतिक वर्चस्व को चुनौती मिली है। फिर भी डिजिटल दुनिया पूरी तरह समान अवसर वाली जगह नहीं है। प्लेटफॉर्म के एल्गोरिथमिक सिस्टम यह तय करने में बड़ी भूमिका निभाते हैं कि कौन-सी सामग्री अधिक लोगों तक पहुँचेगी। इस तरह डिजिटल माध्यम पुराने मध्यस्थों को कमजोर करने के साथ-साथ नए मध्यस्थ भी पैदा करते हैं।

सोशल मीडिया ने दर्शक और रचनाकार के बीच की दूरी को और कम किया है। मीम, शॉर्ट वीडियो और रीमिक्स के माध्यम से उपयोगकर्ता पहले से मौजूद सांस्कृतिक प्रतीकों को नए संदर्भ और अर्थ देते हैं। लाइक्स, शेयर्स और व्यूज अब लोकप्रियता को समझने के प्रमुख संकेत बन गए हैं। मोहन और पुणतांबेकर का अध्ययन दिखाता है कि यूट्यूब जैसे वैश्विक मंच भारत में स्थानीय भाषाओं और सांस्कृतिक क्षेत्रों के साथ अलग-अलग तरह के संबंध बनाते हैं।⁶ लेकिन यह सहभागिता पूरी तरह स्वाभाविक नहीं है, यह attention economy और commercial sponsorship से भी जुड़ी हुई है। ओटीटी ने देखने की आदतों में भी महत्वपूर्ण बदलाव किया है। तय प्रसारण-सारणी की जगह अब on-demand viewing ने ले ली है। इसका एक परिणाम यह हुआ कि क्षेत्रीय भाषाओं की सामग्री अपने पारंपरिक दर्शक-वर्ग से आगे निकलकर दूसरे क्षेत्रों तक भी पहुँचने लगी। Tiwary भारतीय streaming culture में इसी भाषायी और औपचारिक विविधता की ओर ध्यान दिलाते हैं। फिर भी वैश्विक मनोरंजन प्रारूप और बाजार की प्राथमिकताएँ स्थानीय सामग्री को प्रभावित करती हैं। इसलिए डिजिटल मंचों पर विविधता और बाजारीकरण दोनों साथ-साथ दिखाई देते हैं।

भारतीय डिजिटल संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता इसकी भाषायी बहुलता है। हिंदी और अंग्रेजी के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं तथा Roman Script के बढ़ते प्रयोग ने डिजिटल संचार को नए रूप दिए हैं। स्थानीय भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक निकटता और पहचान का भी आधार है। डिजिटल मंच लोकगीत, लोककथा, धार्मिक आख्यान और स्थानीय जीवन-शैली को दर्ज करने और फैलाने की नई संभावनाएँ देते हैं। हालांकि संरक्षण और Commodification को एक ही बात मानना उचित नहीं है। किसी लोक-प्रदर्शन को उसके संदर्भ के साथ दर्ज करना संरक्षण हो सकता है, जबकि उसी प्रदर्शन को कुछ सेकंड के Viral

Audio में बदल देना उसके अर्थ को सीमित भी कर सकता है। इसी तरह हिंदी में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, लोकधुन में आधुनिक संगीत तकनीक या पारंपरिक परिधान के साथ समकालीन फैशन — ये सभी उस सांस्कृतिक संकरण की ओर संकेत करते हैं जिसमें स्थानीय और वैश्विक तत्व एक-दूसरे से जुड़ते हैं। Appadurai के सांस्कृतिक प्रवाहों की अवधारणा के संदर्भ में इस प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

Creator Economy ने सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को आय के एक संभावित स्रोत में भी बदला है। भारत में digital content creation पर हुए शोध नए रचनाकारों के लिए पैदा हुई आर्थिक संभावनाओं को रेखांकित करते हैं। लेकिन views, advertising, sponsorship और platform policies पर निर्भरता रचनात्मक काम को बाजार की प्राथमिकताओं से जोड़ देती है। भारतीय संगीत उद्योग में platformisation पर हुए अध्ययन से भी पता चलता है कि डिजिटल वितरण ने पहुँच बढ़ाने के साथ उद्योग की आर्थिक संरचना को बदला है। इसलिए डिजिटल लोकप्रियता को केवल दर्शकों की पसंद का परिणाम नहीं माना जा सकता। किसी सामग्री की पहुँच इस बात पर भी निर्भर करती है कि प्लेटफॉर्म का algorithm उसे कितनी दृश्यता देता है और उसके पीछे कौन-सी व्यावसायिक प्राथमिकताएँ काम कर रही हैं।

निष्कर्ष :

डिजिटल सांस्कृतिक परिवर्तन को केवल प्रगति की कहानी के रूप में देखना उचित नहीं होगा। इंटरनेट, उपकरणों और डिजिटल साक्षरता तक असमान पहुँच डिजिटल विभाजन को जन्म देती है। दूसरी ओर, एल्गोरिद्मिक चयन यह प्रभावित करता है कि कौन-सी संस्कृति दिखाई देगी और कौन-सी पीछे रह जाएगी। गलत सूचना भी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचानों को प्रभावित कर सकती है। फिर भी यही डिजिटल मंच स्थानीय संस्कृतियों को राष्ट्रीय और वैश्विक दर्शकों तक पहुँचाने का अवसर देते हैं। इस अर्थ में डिजिटलीकरण में विविधीकरण और एकरूपीकरण दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ चलती हैं।

अंततः, डिजिटल भारत में जनप्रिय संस्कृति का परिवर्तन सांस्कृतिक विस्थापन से अधिक पुनर्संयोजन और पुनर्व्याख्या की प्रक्रिया है। लोकगीत digital content बनता है, क्षेत्रीय भाषा नए दर्शक पाती है और ग्रामीण व्यक्ति स्वयं cultural creator के रूप में सामने आ सकता है। आगे की सांस्कृतिक नीति के लिए केवल डिजिटल पहुँच बढ़ाना पर्याप्त नहीं होगा। भाषायी विविधता, लोक-संस्कृति का सामुदायिक अभिलेखीकरण, डिजिटल साक्षरता, स्थानीय रचनाकारों के अधिकार और प्लेटफॉर्म की पारदर्शिता को भी उतना ही महत्त्व देना होगा।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

- Appadurai, Arjun. Modernity at Large : Cultural Dimensions of Globalization. Minneapolis: University of Minnesota Press, 1996.
- Hall, Stuart, ed. Representation: Cultural Representations and Signifying Practices. London: Sage, 1997.
- Lal, A., David Hesmondhalgh, and Chris Umney. “The Changing Shape of the Indian Recorded Music Industry in the Age of Platformisation.” Contemporary South Asia, 2023.
- Livingstone, Sonia. “The Changing Nature of Audiences: From the Mass Audience to the

Interactive Media User.” *The Communication Review* 7, no. 1 (2004): 75–90.

- Mehta, S. “Localization, Diversification and Heterogeneity: Understanding the Linguistic and Cultural Logics of Indian New Media.” *International Journal of Cultural Studies*, 2020.
- Mehta, S., and D. B. V. Kaye. “Pushing the Next Level: Investigating Digital Content Creation in India.” *Television & New Media*, 2021.
- Mohan, S., and A. Punathambekar. “Localizing YouTube: Language, Cultural Regions, and Digital Platforms.” *International Journal of Cultural Studies*, 2019.
- Mukherjee, R. “Jio Sparks Disruption 2.0: Infrastructural Imaginaries and Platform Ecosystems in ‘Digital India’.” *Media, Culture & Society* 41, no. 3 (2019): 313–328.
- Nayaka, S., V. K. R. Vemireddy et al. “From Local to Global: Village YouTubers and Rural Creator Cultures in South India.” *International Journal of Cultural Studies*, 2025.
- Tiwary, I. “Streaming and India’s Film-Centred Video Culture: Linguistic and Formal Diversity.” *International Journal of Cultural Studies*, 2024.

भारतीय ज्ञान परंपरा में श्रीमद्भगवतगीता की प्रासंगिकता

मंजू राठौर, शोधार्थी

डॉ. भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

डॉ. पंकज मिश्र, शोध निर्देशक

शिक्षाशास्त्र विभाग, दाऊदयाल महिला पी.जी कॉलेज, फिरोजाबाद-283203 (उत्तर प्रदेश)

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैःशास्त्रविस्तारैः।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता॥

शोध सारांश -

भारतीय संस्कृति और संस्कृत का मूल आधार ही भारतीय ज्ञान परम्परा है। भारत वर्ष में प्राचीनकाल से ही भारतीय ज्ञान परंपरा चली आ रही हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के अन्तर्गत वेद, वेदांग, श्रुति, स्मृति से लेकर विभिन्न प्रकार के दर्शनशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्र राजनितिशास्त्र, कला इत्यादि सम्मिलित हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा को ज्ञान, प्रज्ञा, प्रबोधिनी, आदि शब्दों से परिभाषित किया जाता हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल, ग्रन्थों का संग्रह नहीं हैं। बल्कि ये जीवन को देखने और जीने की एक समग्र दृष्टि हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में भौतिक सह-आध्यत्मिक वैज्ञानिक और नैतिक व्यक्तिगत और सामाजिक सभी, मानव जीवन के सभी पक्षों का संतुलित समावेश मिलता हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रमुख उद्देश्य सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना के साथ समस्त मानव जाति का कल्याण ही सर्वेपरि रखना हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में वैदिक-साहित्य, उपनिषद और भारतीय दर्शन योग और आयुर्वेद, गणित, विज्ञान, और प्रौद्योगिकी, कला, साहित्य और लोक ज्ञान सम्मिलित हैं। वर्तमान में भारतीय युवा बहुत ही भटका हुआ हैं। उसे न घर न समाज तथा कहीं भी उचित मार्गदर्शन नहीं मिल पा रहा हैं। सोशल मीडिया से प्राप्त ज्ञान ही उसके व्यक्तित्व का आधार बनता जा रहा हैं।

आज की नई आधुनिक समय कि युवा पीढ़ी जिसे लगता हैं कि ऊर्ची आवाज ही तर्क हैं। और, अभ्रद, अपशब्द ही व्यक्तित्व की पहचान हैं। संस्कार इनके लिये पुराने जमाने के चीज हैं। मर्यादा इन्हे बनावटी लगती हैं और विनम्रता कमजोरी। "विद्या विनयं ददाति" परंतु आज की परिस्थिती में सब विपरीत हो रहा हैं, आज व्यक्ति अधूरे ज्ञान के अहंकार में अन्धा हुआ बैठा हैं। परंतु इसमें वर्तमान पीढ़ी का कोई दोष नहीं हैं, उसे उचित निर्देशन और परामर्श न मिल पाने कारण ऐसा हो रहा हैं। और इसका प्रमुख कारण हैं, दिन, प्रतिदिन टूटते परिवार, सामाजिक विघटन, आवश्यकता से अधिक बच्चों से आशा, और माता-पिता द्वारा केवल भौतिक संपदा को विशेष बताकर उन्हें अतिरिक्त तनाव लेने के लिए विवश करना। यदि वर्तमान युवा को उचित, शिक्षा-दीक्षा, देकर तराशा जाए तो यही बालक कल के कोई, महान सन्त, महान वक्ता, कुशल डॉक्टर, इंजीनियर, नेता, अभिनेता

बन सकते हैं। आवश्यकता है, तो सिर्फ इनके भीतर छिपे ज्ञान को बाहर निकलने की। स्वामी विवेकानंद के अनुसार— शिक्षा मनुष्य में पहले से विद्यमान पूर्णता का प्रकटीकरण है”। श्रीमदभगवद्गीता किसि संकीर्ण संप्रदाय का ग्रन्थ न होकर सार्वभौमिक मानवता का मार्गदर्शक आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य वैचारिक भटकाव का सामना कर रहा है तब, गीता का ज्ञान तमसो मा ज्योतिर्गमय (अंधेरे से उजाले की ओर) भारतीय संकल्प को पूरा करने में सक्षम है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय ज्ञान परंपरा और श्रीमदभगवद्गीता के मध्य अन्तरसंबन्ध को दर्शाया गया है और तथा श्रीमदभगवद्गीता के सिद्धांतों समकालीन वैश्विक समस्याओं के समाधान में उसकी प्रासंगिकता का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत शोध में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में श्रीमदभगवद्गीता और भारतीय ज्ञान प्रणाली के मध्य संबंध को दर्शाया गया है, तथा श्रीमदभगवद्गीता में निहित शैक्षिक मूल्यों की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में समन्वय को प्रस्तुत किया गया है जो कि नई राष्ट्रिय शिक्षा निती के उद्देश्य से मेल खाता है।

मुख्य शब्द : भारतीय ज्ञान परंपरा, श्रीमदभगवद्गीता, प्रासंगिकता उदाहरण के लिये C.J.P. (Cockroach Janta Party) सोशल मीडिया पर ये एक गैर-भारतीय युवा द्वारा जिसने यह विचित्र नाम की समिति बनाई जिसमें बिना कारण तथा अधुरे ज्ञान होने के कारण भारतीय युवा पीढ़ी ने इस समिति को बढ़ावा दिया। इस समिति में हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों, सनातन धर्म प्राचीन काल के महापुरुषों तथा हिन्दु देवी-दैवता का अपमानजनक अभद्र शब्दों से निंदा की गई है। परंतु सबसे अधिक दुःख कि बात यह है कि इस पार्टी के अनुयायी तथा अधिकतर समर्थन करने वाले इसे प्रोत्साहित करने वाले कोई और नहीं बल्कि भारत देश के नए भविष्य कि होने वाले आज की नई भारतीय युवा पीढ़ी हैं। जो अज्ञान के कारण अपने ही मातृ भूमि भारत देश का अपमान करते हैं, जिसके के लिये कितने ही क्रान्तीकारी वीर इन भविष्य कि होने वाली युवा पीढ़ी के लिये शहीद हुए। और यह सब हो रहा है। प्राचीनकाल की शिक्षा के बारे में न जानकर जो हमें अपना धर्म ज्ञान तथा कर्तव्य का बोध कराती हैं उचित मार्गदर्शन देती है। भारतीय ज्ञान परंपरा व्यक्ति को उसकी वास्तविक स्वरूप की तथा उसके मूल (जड़) की पहचान कराती हैं, उसे वास्तविक ज्ञान से अवगत कराती हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। भारतीय ज्ञान परंपरा में श्रीमदभगवद्गीता की विशेष महत्वपूर्ण भूमिका है। श्रीमदभगवद्गीता में लौकिक, परालौकिक, सत्य, असत्य, धर्म, कर्म, कर्तव्य एवं त्याग का अद्भुत समन्वय रहा है। वर्तमान समय में नई शिक्षा निती 2020 में भी भारतीय ज्ञान परंपरा का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक तथा सूक्ष्म रहा है। शुद्ध ज्ञान के अभाव के कारण आज की मानसिक रूप से द्वन्द तथा जीवन संघर्ष करने वाले मनुष्य के लिये श्रीमदभगवद्गीता ओचित्य पूर्ण मार्गदर्शन करने वाला तथा अम्रतमय ग्रन्थ है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि भवति भारत।

अभ्युत्थाना धर्मस्य तदात्मान, सृजानमहम्॥ (4.7)

प्रस्तावना -

श्रीमदभगवद्गीता समस्त वेदों का सार है तथा भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण उपनिषद् है। श्रीमदभगवद्गीता एक कालातीत ज्ञान तथा समस्त आध्यात्मिक तत्त्वों का सार एवं पाठ्यक्रम है। सदियों से इस ज्ञान ने विश्व भर के दार्शनिकों तत्व ज्ञानियों वैज्ञानिकों शिक्षकों तथा लेखकों को गहराई से प्रभावित किया है। श्रीमदभगवद्गीता मूल रूप से ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत के भीष्म पर्व के 42 वे अध्याय का अंग है। जिसमें 700 श्लोक हैं, जो कि महर्षि वेद व्यासजी द्वारा रचित हैं। जिन्हें श्री भगवान का अवतार भी कहा जाता है।

श्रीमदभगवद्गीता की दार्शनिक पृष्ठभूमि भारतीय ज्ञान परंपरा की समृद्ध विरासत पर आधारित हैं। यह केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि मानव जीवन दर्शन का सार्वभौमिक मार्गदर्शक भी हैं। जो की 5,000 वर्ष पूर्व बाद भी आज भी उतना ही प्रासंगिक हैं। जितना की पूर्व में था गीता का संदेश, नैतिकता, नेतृत्व, कर्तव्यबोध, आत्मविश्वास तथा विश्वकल्याण के लिए समान रूप से उतना ही महत्वपूर्ण हैं। जितना की पूर्व में था। गीता दर्शन गीता दर्शन भारतीय ज्ञान परंपरा की दर्शन की विभिन्न धाराओं को समन्वित और व्यवहारिक स्वरूप प्रस्तुत करता हैं। जिसके कारण इसे केवल भारत में ही नहीं अपितु विश्व के महानतम दार्शनिक ग्रन्थों में भी महत्वपूर्ण में स्थान प्राप्त हैं। इसके दर्शन के अन्तर्गत निष्काम कर्म, समत्व योग, ज्ञान, कर्म एवं भक्ति, तीनों मार्गों को समान रूप से महत्व दिया जाता हैं। ये मानव जीवन के सभी पक्षों नैतिक, आध्यात्मिक तथा व्यवहारिक पक्षों का संतुलित समाधान प्रस्तुत करता हैं। जो आज की वर्तमान शिक्षा का सम्प्रत्यय हैं उसकी गुणवत्ता एवं स्वरूप में आमूलचूल परिवर्तन हुआ हैं क्योंकि शिक्षा के विकास का आज जो अभिप्राय है। वह तकनीकी, व्यावसायिक एवं वैज्ञानिक बहाव की ओर प्रवाहित हो रहा हैं। जिसमें नैतिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं संस्कारिक शिक्षा का दिशा और दशा में अप्रत्याशित परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं। अतः भविष्य में ऐसा परिवर्तन समाज और समुदाय तथा राष्ट्र के लिये नकारात्मक सिद्ध होगा इसका अनुमान लगाना बहुत सरल हो चुका है जो कि अनेक तरह की समस्याओं को जन्म देगा।

अतः आज आवश्यकता है, एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जो व्यक्ति के आन्तरिक और बाह्य वातावरण में सन्तुलन स्थापित कर सके क्योंकि आज का मनुष्य एक सुखी जीवन की चाहत के लिये खड़ा हैं और उसका मार्ग उसके अपने स्वयं में किए गये कर्म में निहित है। उसे अपने इस कर्म के रहस्य को जानना होगा। श्रीमदभगवद्गीता में “निष्काम कर्म” का उपदेश दिया गया है, क्योंकि कर्म करते समय वह अन्य बातों पर अगर ध्यान देता देता है। तो वह अपने लक्ष्य से भटक सकता हैं और यदि मनुष्य अपने कर्म को करते समय आनंदमय होकर अपना कर्म करे तो उसकी समस्त शक्तियाँ केंद्रीभूत हो जाती हैं। तथा उसमें आध्यात्मिक ऊर्जा जागृत हो जाती हैं। आध्यात्मिक ऊर्जा से विहीन कर्म मानव जाति के लिये श्रेष्ठ एवं उपयोगी नहीं हो सकता हैं और ऐसा करने के लिये उसे कुछ विशेष प्रयास नहीं करना हैं उसे केवल रोजमर्रा के कार्यों को अनासक्त भाव से करते हुए श्री गीता जी के उपदेशों अपने जीवन में आत्सात करता हुआ वह अपने परम उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता हैं तो केवल श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं को ग्रहण करते हुए अपने कर्म को अनासक्त भाव से करते हुए उसे अपने कर्म को श्रेष्ठ बनाने की है जैसे—कमल जल में रहकर भी जल से अलग रहता हैं। ठीक वैसे ही श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं को लेकर व्यक्ति समाज में रहते हुए अपने विकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, छल, कपट, अहंकार आदि जैसे दुष्प्रभावों से दूर होकर एक नये समाज का निर्माण कर सकेगा। इसके बाद उसका प्रत्येक कर्म मानव जाति के लिये समृद्धि ही लाएगा। और ऐसा करने के लिये उसे न तो संसार का त्याग करना पड़ता है और न ही वैराग्य धारण करना पड़ता हैं। उसे—

‘तन संसारी मन वैरागी’।

जैसी धारणा को अपनाते हुए अपने नित्य धर्म और स्वधर्म में सन्तुलन स्थापित करने की आवश्यकता होती हैं और ऐसा सिर्फ श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं को अपने जीवन में आत्मसात करके ही संभव हैं, श्रीमदभगवद्गीता केवल जीवन जीने की कला में ही प्रवीण नहीं कराती इसके साथ ही श्रीमदभगवद्गीता हमारे जीवन के परम उद्देश्य का ज्ञान भी कराती है। श्रीमदभगवद्गीता मृत्यु का भय समाप्त करती हैं। श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं

से आत्मा अपने मूल स्वरूप को पहचान लेती हैं जिसके बाद मृत्यु उस आत्मा के लिए उत्सव बन जाती हैं जहाँ पर आत्मा अपने परम धाम को अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के पास चली जाती हैं। अपना कल्याण चाहने वाले प्रत्येक मनुष्य को इसकी शरण में जाना चाहिए। क्योंकि वर्तमान में मानव पशुतुल्य व्यवहार करने लगा है। उसे किसी भी प्राणी के लिए दया, सहानुभूती, करुणा जैसे कोमल भावों की तकनीक भी अनुभूती नहीं होती है।

तेषां न विद्या न तपो न दानं

ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।

ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः

मनुष्यरूपेण मृगार्चरन्ति॥ (नितिशतक-भर्तृहरी)

‘जो भरा नहीं भावों से जिसमें बहती रसधार नहीं।

वह हृदय नहीं पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं’॥ (गयाप्रसाद शुक्ल ‘सनेही)

वह मानव जिसकी पहचान ही उसके मानवीय गुणों जैसे कि सहानुभूति, संवेदना, दुःख-सुख आदि होती हैं। और अगर यही गुण मनुष्य में नहीं रहेंगे तो मानव और पशु में तो भेद करना असंभव हो जाएगा। हमारे समाज में आए दिन जिस प्रकार की मानवता को शर्मसार करने वाली घटनाएँ घटित हो रही हैं। यह वास्तव में हमारे संवेदनहीन हो रहे समाज को प्रदर्शित करती हैं। हाल के कुछ वर्षों में असंख्य दुःखद घटनाएँ घटित हुई हैं जिसमें मानवता शर्मसार हुई, अतः यह सभी घटनाएँ हमारी शिक्षा व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं। ऐसी दुःखद घटनाओं के पीछे चाहे कैसी भी परिस्थितियाँ रही हो या कुछ भी कारण रहे हो लेकिन इतनी निर्दयता इतनी नृशंसता हमारे वर्तमान समाज के नैतिक पतन को इंगित करती हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था कागज फूलों के समान हो गई है। जिसमें कोई सुगंध नहीं है, वह केवल सजाने की वस्तु मात्र रह गयी है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था केवल पेट भरने का एक माध्यम बनकर रह चुकी है। जिसका एक कारण यह भी है कि (परा-अपरा) शिक्षा का सही सामंजस्य नहीं हो पा रहा है। इसके एक पक्ष पर विशेष बल दिया जा रहा है। तथा दूसरे पक्ष को इतना विशेष महत्व नहीं दिया जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप आध्यत्मिक शिक्षा के अभाव में भौतिक शिक्षा विषपुंज बन कर रह गई है।

प्राचीन काल में शिक्षा वेदों पर आधारित थी जिसमें वेद, उपनिषद, पुराण, श्री भगवद्गीता आदि का ज्ञान प्रदान किया जाता था, जिसमें भौतिक-सह-आध्यात्मिक शिक्षा दोनों को साथ में प्रदान किया जाता था। जिससे व्यक्ति आंतरिक रूप से मजबूत बन जाता था, परन्तु अब ऐसा नहीं हो पा रहा है। जीवन के छोटे-छोटे दुःख उसे तोड़ने में सक्षम हैं। प्रायः देखा गया है कि अति विद्वान व्यक्ति भी प्रतिकूल परिस्थिति आने पर या तो नैतिक स्तर से गिर जाते हैं या फिर अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर बैठते हैं, परन्तु श्री भगवद्गीता की शिक्षाएँ हमें आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से मजबूत बनाती है।

- भारतीय ज्ञान परंपरा और श्रीमद्भगवद्गीता में अन्तरसम्बन्ध श्रीमद्भगवद्गीता का भारतीय ज्ञान परंपरा में केन्द्रीय स्थान है इसलिए इसका स्थान भारतीय साहित्य में सर्वोपरि है। श्रीमद्भगवद्गीता सम्पूर्ण वेदों का सार है। तथा भारतीय साहित्य की आत्मा है। यह केवल धर्मिक ही ग्रन्थ ही नहीं है। बल्कि कर्म, भक्ति, ज्ञान, अनुशासन, और जीवन-व्यवस्था का दार्शनिक मार्गदर्शक भी है।
- भारतीय ज्ञान प्रणाली गीता, वेद, उपनिषद और दर्शन की परंपरा को सरल और संवादात्मक रूप में

प्रस्तुत करती हैं।

- इसके स्वधर्म और नित्यधर्म जैसे श्रेष्ठ व प्रेरणादायक विचार सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन दोनों के लिए दिशा देते हैं।
- श्रीमदभगवद्गीता को भारतीय चिंतन शिक्षा और जीवन-दर्शन का महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। श्रीमदभगवद्गीता मूल रूप से ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत के भीष्म पर्व के 42वें अध्याय में 700 संस्कृत श्लोकों के रूप में प्रकट महाकाव्य है।

प्रस्तावना -

जो आज वर्तमान शिक्षा का सम्प्रत्यय हैं उसकी गुणवत्ता एवं स्वरूप में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है क्योंकि शिक्षा के विकास का आज जो अभिप्राय है। वह तकनीकी, व्यावसायिक एवं वैज्ञानिक बहाव की ओर प्रवाहित हो रहा है। जिसमें नैतिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं संस्कारिक शिक्षा का दशा और दिशा में अप्रत्याशित परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे है। और भविष्य में ऐसा परिवर्तन समाज और समुदाय तथा राष्ट्र के लिये नकारात्मक सिद्ध होगा इसका अनुमान लगाना बहुत सरल हो चुका है जो की अनेक तरह की समस्याओं को जन्म देगा। अतः आज आवश्यकता है, एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जो व्यक्ति के आन्तरिक और बाह्य वातावरण में सन्तुलन स्थापित कर सके क्योंकि आज का मनुष्य एक सुखी जीवन की चाहत के लिये खड़ा है और उसका मार्ग उसके अपने स्वयं में किए गये कर्म में निहित है। उसे अपने इस कर्म के रहस्य को जानना होगा।

श्रीमदभगवद्गीता में निष्काम कर्म का उपदेश दिया गया है, क्योंकि कर्म करते समय वह अन्य बातों पर अगर ध्यान देता देता है। तो वह अपने लक्ष्य से भटक सकता है और यदि मनुष्य अपने कर्म को करते समय आनंदमय होकर अपना कर्म करे तो उसकी समस्त शक्तियाँ केंद्रीभूत हो जाती हैं तथा उसमें आध्यात्मिक ऊर्जा जागृत हो जाती हैं। आध्यात्मिक ऊर्जा से विहीन कर्म मानव जाति के लिये श्रेष्ठ एवं उपयोगी नहीं हो सकता है और ऐसा करने के लिये उसे कुछ विशेष प्रयास नहीं करना है उसे केवल रोजमर्रा के कार्यों को अनासक्त भाव से करते हुए श्री गीता जी के उपदेशको अपने जीवन में आत्सात करके वह अपने परम उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता केवल श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं को ग्रहण करते हुए अपने कर्म को अनासक्ती रहित होकर उसे अपने कर्म को श्रेष्ठ बनाने की आवश्यकता है जैसे—कमल जल में रहकर भी जल से अलग रहता है। ठीक वैसे ही श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं को लेकर व्यक्ति समाज में रहते हुए अपने विकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, छल, कपट, अहंकार आदि जैसे दुष्प्रभावों से दूर होकर एक नये समाज का निर्माण कर सकेगा। इसके बाद उसका प्रत्येक कर्म मानव जाति के लिये समृद्धि ही लाएगा। और करने के लिये उसे न तो संसार का त्याग करना पड़ता है और न ही वैराग्य धारण करना पड़ता है।

उसे केवल **‘केवल तन संसारी मन वैरागी’**। जैसी धारणा को अपनाते हुए अपने नित्य धर्म और स्वधर्म में सन्तुलन स्थापित करने की आवश्यकता होती है और ऐसा सिर्फ श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं को अपने जीवन में आत्मसात करके ही संभव है, श्रीमदभगवद्गीता केवल जीवन जीने की कला में ही प्रवीण नहीं कराती इसके साथ ही श्रीमदभगवद्गीता हमारे जीवन के परम उद्देश्य का ज्ञान भी कराती है। श्रीमदभगवद्गीता मृत्यु का भय समाप्त करती है। श्रीमदभगवद्गीता शिक्षाओं को आत्मा अपने स्वरूप को पहचान लेती है जिसके बाद मृत्यु उस आत्मा के लिए उत्सव बन जाती है जहाँ पर आत्मा अपने परम धाम को अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के पास चली जाती है। अपना कल्याण चाहने वाले प्रत्येक मनुष्य को इसकी शरण में जाना चाहिए। क्योंकि वर्तमान

में मानव पशुतुल्य व्यवहार करने लगा है। उसे किसी भी प्राणी के लिए दया, सहानुभूति, करुणा जैसे कोमल भाव की तनिक भी अनुभूति नहीं होती है।

श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाएँ और भारतीय ज्ञान परंपरा का समन्वय –

भारतीय ज्ञान परंपरा में दर्शन, धर्म, राजनीतिक, समाजिक, नैतिकता, कुटनीति, कला आदि सभी क्षेत्रों का सम्मिलित है, तथा श्रीमदभगवद्गीता में भी –

- दर्शन सिद्धांत (आत्मा, ब्रह्म, माया)
- नैतिक शिक्षा (धर्म, सत्य, अहिंसा, त्याग)
- राजनीतिक शिक्षा (प्रबंधन और नेतृत्व के सिद्धांत, (निर्णय, कर्तव्य, संकट, प्रबंधक)
- आध्यात्मिक साधना (ध्यान, भक्ति, आत्मा, नियन्ता (ईश्वर)। सभी एक साथ मिलते हैं। और

इसलिए कहा जाता है कि गीता भारतीय ज्ञान परंपरा का संक्षिप्त एवं पूर्ण सार है। भारतीय ज्ञान परंपरा एवं श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं की मूल अवधारणा एक ही है।

श्रीमदभगवद्गीता की भारतीय ज्ञान परंपरा का दर्शनिक और व्यावहारिक मार्गदर्शन है, जो उसके मूल सिद्धांतों – आत्मज्ञान, कर्तव्य, समरसता और जीवन की समग्रता को सबसे स्पष्ट और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती है।

1. **समग्र विकास** – श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं और भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल लक्ष्य संज्ञानात्मक कौशल ही नहीं बल्कि नैतिक, चारित्रिक और सामाजिक भावनात्मक विकास भी विकसित करना जिसने विद्यार्थी छात्रा (वसुधैव कुटुम्बकमवासुदेव कटुम्बम्)– “पूरी पृथ्वी एक परिवार है”। विकास भी करना एक परिवार के विचार को समझे।
2. **सांस्कृतिक जुड़ाव** – श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाएँ छात्रों को अपनी संस्कृति की जड़ों से जोड़ती हैं। जिससे अपने देश और संस्कृति के प्रति गौरव बोध और जुड़ाव पैदा होता है।
3. **आधुनिकता का समन्वय** – गीता के प्रबंधन एवं आधुनिक विज्ञान, प्रबंधन और प्रौद्योगिकी को एक साथ एकीकृत करके पढ़ाने से छात्रों का दृष्टिकोण व्यापक होगा।
4. **पाठ्यक्रम में एकीकरण** – श्रीमदभगवद्गीता की परा-अपरा विद्या के शिक्षा शैक्षिक तत्वों को वर्तमान पाठ्यक्रम में शामिल करके जब छात्रों को पढ़ाया जायेगा तब उनमें सके ताकि अन्तर-विषयक को समझ विकसित हो सके।

भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में श्रीमदभगवद्गीता की प्रासंगिकता :

1. **लोकसंग्रह** – गीता व्यक्ति को समाज से अलग रहकर संन्यास लेने की प्रेरणा नहीं देती है। यह लोक संग्रह का सिद्धांत समाज का कल्याण करने और व्यवस्था बनाए रखने पर विशेष ध्यान देता है। भगवान श्रीकृष्ण जी स्वयं कहते हैं। कि उनके लिए कुछ पाना शेष नहीं फिर भी वे समाज की भलाई के लिए निरंतर कर्म करते हैं।
2. **आत्म प्रबंधन और नेतृत्व** – गीता का ‘स्थितप्रज्ञ’ का सिद्धांत एक आदर्श नेता के गुण बताता है। जो लालच, भय और क्रोध से मुक्त निर्णय लेता और भारतीय ज्ञान परंपरा भी मानती है, की दूसरों पर शासन करने से पहले खुद पर नियंत्रण जरूरी है।
3. **परिस्थितिक संतुलन** – गीता के अध्याय तीसरे में यज्ञ चक्र का वर्णन है जो प्रकृति और मनुष्यों के बीच

परस्पर निर्भरता को दर्शाता मनुष्यों द्वारा प्रकृति को देना और प्रकृति द्वारा मनुष्यों को पोषण देना यही चक्र पर्यावरण का संरक्षण का प्राचीनतम भारतीय सिद्धांत है।

4. समकालीन शिक्षा और राष्ट्रीय नीति (NEP 2020) में प्रासंगिकता – भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति। भारतीय ज्ञान परंपरा को मुख्यधारा की शिक्षा में शामिल करने पर जोर देती है। इस संदर्भ में भी श्रीमदभगवद्गीता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष –

भारतीय ज्ञान प्रणाली में श्रीमदभगवद्गीता की भूमिका एक मार्गदर्शक ग्रन्थ की है, जो मनुष्य में आशा का संचार करती है। उसे एक सकारात्मक सोच प्रदान कर देती है। उसे बताती है कि जो खो गया, उससे सीखो जो मिला है, उसका सम्मान करो तथा जो आने वाला है उस पर विश्वास रखो।

श्रीमदभगवद्गीता ज्ञान जो व्यक्ति को सही विचार, सही कर्म और सही जीवन दृष्टि की ओर ले जाता है। श्रीमदभगवद्गीता के उत्कर्ष की घोषणा करती है इसकी मानव शिक्षाएँ मानव जाति के उत्थान की पथ प्रदर्शिका हैं।

वर्तमान में क्षण-प्रतिक्षण टूट रहे हैं, रिश्ते-नाते, अशांति, अराजकता, राष्ट्रदोह, अनुशासनहीनता इन सबका मूल कारण हैं। वह बाहर नहीं बल्कि हैं, भीतर छिपा हुआ है। वह प्रतिक्षण आन्तरिक शांति और शकुन की खोज में हैं, व्यक्ति उस शकुन की खोज को किसी किसी व्यक्ति, निजी स्थान या किसी विशेष परिस्थिति में ढूँढता है। विजय उसे अपने मन पर पानी है, बाहर नहीं। श्रीगीता जी की शिक्षाओं को पाठ्यक्रम में शामिल करके, विद्यार्थी में रजोगुण, तमोगुण गुण के प्रभाव को कम करके उनमें सतोगुणों का विकास कर सकते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा और श्रीमदभगवद्गीता की शिक्षाओं का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाये तो यह केवल शिक्षा की गुणवत्ता में ही सुधार नहीं करेगी बल्कि भारत को वैश्विक ज्ञान और नेतृत्व की दिशा में भी अग्रसर करेगी।

भारतीय ज्ञान परंपरा आधारित शिक्षा, आत्मनिर्भर भारत, नैतिक नागरिकता और सतत विकास के लक्ष्यों की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। श्रीमदभगवद्गीता भारतीय ज्ञान परंपरा का हृदय है। यह प्राचीन ज्ञान को अत्यंत सरल और व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत करती है। वर्तमान वैश्विक संकटों, नैतिक पतन और मानसिक अशांति का समाधान गीता दर्शन में निहित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. गीता-महात्म्य, श्लोक सं. 04
2. शर्मा ज्योति, फरवरी 2026, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (N.E.P. 2020) और भारतीय ज्ञान परंपरा, Volume 4, ISSN : 2583-973X/Website:www.thecademic.in/International Journal of Multidisciplinary Research
3. नीतिशतकम्-भृत्हरि।
4. श्रीमदभगवद्गीता : गीता प्रेस गोरखपुर।
5. तिलक, बाल गंगाधर, गीता रहस्य डायमण्ड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. 30 ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया फ़्रेज-11

6. भक्ति वेदान्त स्वामी, प्रभुपाद, ए.सी. भगवत गीता ज्ञान प्रोबोधिनी भाग-1 वेदान्त बुक ट्रस्ट इन्टरनेशनल (2008)
7. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद ए.सी गीता सारांश (2011) भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट इन्टरनेशनल ।
8. शुक्ल शिक्षा की दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि (2008) भण्डार आगरा ।
1. श्रीमदभगवद्गीता – गीता प्रेस गोरखपुर ।
2. तिलक, बाल गंगाधर, गीता रहस्य डायमण्ड पॉकेट बुक्स (प्रा) लि.-30 ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया फ्रेज-11
3. भक्ति वेदान्त स्वामी, प्रभुपाद, ए.सी. भगवद्गीता ज्ञान प्रोबोधिनी भाग-1 वेदान्त बुक ट्रस्ट इन्टरनेशनल (2008)
4. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद ए.सी गीता सारांश (2011) भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट इन्टरनेशनल ।
5. शुक्ल शिक्षा की दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि (2008) भण्डार आगरा ।

विज्ञान आणि तंत्रज्ञान क्षेत्रातील 'आत्मनिर्भर भारत'ची भूमिका

प्रा. डॉ. प्रभाकर गणपत गावंड

(इतिहास विभागप्रमुख)

सुंदरराव मोरे महाविद्यालय, पोलादपूर-रायगड

गोषवारा -

'आत्मनिर्भर भारत' ही संकल्पना भारताला आर्थिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक आणि तांत्रिकदृष्ट्या स्वावलंबी बनविण्याचे राष्ट्रीय ध्येय आहे. १२ मे २०२० रोजी पंतप्रधान नरेंद्र मोदी यांनी या अभियानाची घोषणा केली. याचा अर्थ जगापासून अलिप्त राहणे नसून, देशातील संशोधन, नवोपक्रम, उत्पादन आणि कौशल्यविकास यांच्या बळावर भारताला जागतिक स्तरावर सक्षम आणि स्पर्धात्मक बनविणे हा आहे.

विज्ञान आणि तंत्रज्ञान हे या अभियानाचे मुख्य आधारस्तंभ आहेत. आधुनिक राष्ट्रांच्या प्रगतीसाठी वैज्ञानिक संशोधन, तांत्रिक नवकल्पना आणि स्वदेशी उत्पादन यांचे महत्त्व अत्यंत मोठे आहे.

कीवर्ड्स - (Keywords)

आत्मनिर्भर भारत, विज्ञान व तंत्रज्ञान, संशोधन व विकास, अवकाश संशोधन, संरक्षण तंत्रज्ञान, जैवतंत्रज्ञान, डिजिटल भारत, सेमीकंडक्टर उद्योग, नवीकरणीय ऊर्जा, कृषी तंत्रज्ञान, स्टार्टअप, कौशल्य विकास, शाश्वत विकास, स्वदेशीकरण, नवोपक्रम, रोजगारनिर्मिती.

प्रस्तावना -

'आत्मनिर्भर भारत' ही संकल्पना केवळ आर्थिक स्वावलंबनापुरती मर्यादित नसून वैज्ञानिक, तांत्रिक, औद्योगिक, संरक्षण, आरोग्य आणि सामाजिक क्षेत्रांचा समन्वय साधत भारताला सर्वांगीण सक्षम राष्ट्र बनविण्याचे व्यापक ध्येय मांडते. १२ मे २०२० रोजी पंतप्रधान नरेंद्र मोदी यांनी कोविड-१९ संकटाच्या पार्श्वभूमीवर या अभियानाची घोषणा करताना आत्मनिर्भरतेचे पाच स्तंभ - अर्थव्यवस्था, पायाभूत सुविधा, प्रणाली, लोकसंख्या आणि मागणी यांवर विशेष भर दिला.

या अभियानाचा उद्देश जगापासून अलिप्त राहणे किंवा परकीय व्यापार तोडणे असा नसून, 'लोकल ते ग्लोबल' या दृष्टिकोनातून स्वदेशी क्षमतांचे बळकटीकरण करून भारताला जागतिक स्पर्धेत अग्रस्थानी नेणे असा आहे. ख,ख, विज्ञान आणि तंत्रज्ञान हे या दृष्टिकोनाचे मुख्य आधारस्तंभ असून संशोधन, नवोपक्रम आणि स्वदेशी उत्पादन यांच्या माध्यमातून देशाच्या विकासाला नवे परिमाण प्राप्त होते.

संशोधनाची उद्दिष्टे -

या शोधनिबंधाचा मुख्य उद्देश 'आत्मनिर्भर भारत' अभियानाच्या संदर्भात विज्ञान आणि तंत्रज्ञान क्षेत्रातील

भूमिकेचा सर्वांगीण अभ्यास करणे हा आहे. यास पूरक म्हणून खालील उपउद्दिष्टे निश्चित केले आहेत.

- १ भारताच्या विज्ञान व तंत्रज्ञान धोरणांमध्ये आत्मनिर्भरतेच्या संकल्पनेने घडविलेल्या बदलांचा आढावा घेणे.
- २ संशोधन व विकास, अवकाश विज्ञान, संरक्षण क्षेत्र, आरोग्य व जैवतंत्रज्ञान, डिजिटल तंत्रज्ञान, सेमीकंडक्टर, नवीकरणीय ऊर्जा, कृषी तंत्रज्ञान आणि स्टार्टअप इकोसिस्टम यांसारख्या प्रमुख क्षेत्रांतील उपक्रमांचे विश्लेषण करणे.
- ३ या अभियानामुळे उद्भवणारे आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय व धोरणात्मक फायदे आणि मर्यादा नोंदविणे.
- ४ संशोधनासाठी आवश्यक गुंतवणूक, मानव संसाधन विकास, पायाभूत सुविधा, उद्योग-शैक्षणिक क्षेत्र समन्वय आणि जागतिक स्पर्धेला तोंड देण्यासाठी आवश्यक उपाययोजना प्रस्तावित करणे.

‘आत्मनिर्भर भारत’ची भूमिका

१) संशोधन व विकास आणि नवोपक्रम -

कोणत्याही आधुनिक राष्ट्राच्या प्रगतीचा पाया संशोधन आणि विकास यावर उभा असतो, आणि भारताने गेल्या दशकात विज्ञान-तंत्रज्ञान धोरणांद्वारे त्-क् क्षमतांमध्ये लक्षणीय वाढ केली आहे. भारतातील विद्यापीठे, राष्ट्रीय प्रयोगशाळा, CSIR, DRDO, ISRO, DBT, DST, इत्यादी संस्थांनी उद्योग क्षेत्राशी सहकार्य करून कृत्रिम बुद्धिमत्ता, रोबोटिक्स, जैवतंत्रज्ञान, नॅनोतंत्रज्ञान, क्वांटम तंत्रज्ञान आणि मशीन लर्निंग यांसारख्या अत्याधुनिक क्षेत्रात संशोधनाचा वेग वाढविला आहे. ‘Science, Technology and Innovation Policy (STIP)’ आणि विविध नवोपक्रम कार्यक्रमांद्वारे देशात संशोधन अनुदान, औद्योगिक संशोधन सहयोग आणि स्टार्टअप इन्क्युबेशनला प्रोत्साहन दिले जात आहे, ज्यामुळे प्रयोगशाळेतील ज्ञान उद्योगात हस्तांतरित होऊन आर्थिक मूल्यनिर्मिती होते.

२) अवकाश विज्ञानातील आत्मनिर्भरता -

भारतीय अवकाश संशोधन संस्थेने (ISRO) स्वदेशी तंत्रज्ञानाच्या आधारे लॉंच वाहन, उपग्रह निर्मिती आणि अवकाश मोहिमांमध्ये जगभरात विशिष्ट स्थान निर्माण केले आहे. मंगळयान, चांद्रयान मालिकेतील मोहिमा, तसेच हवामान अंदाज, दळणवळण, नेव्हिगेशन आणि आपत्ती व्यवस्थापनासाठी कार्यरत उपग्रह हे आत्मनिर्भरतेचे उत्कृष्ट उदाहरण मानले जातात.

खासगी क्षेत्राला अवकाश तंत्रज्ञानात सहभागी करून ‘आत्मनिर्भर भारत’अवकाश उद्योगातील स्वदेशी उत्पादन, डेटा सेवा आणि संशोधनाला नवीन दिशा देत आहे, ज्यामुळे परकीय सेवा आयातीवरील अवलंबित्व कमी होऊन भारत जागतिक अवकाश बाजारात स्पर्धात्मक बनत आहे.

३) संरक्षण क्षेत्रातील स्वावलंबन -

राष्ट्रीय सुरक्षा हे आत्मनिर्भरतेचे महत्त्वपूर्ण परिमाण असून संरक्षण क्षेत्रात स्वदेशी उत्पादन वाढविण्यासाठी अनेक धोरणात्मक बदल करण्यात आले आहेत. क्षेपणास्त्रे, रडार, युद्धनौका, टँक, लढाऊ विमाने, ड्रोन, कम्युनिकेशन सिस्टम आणि विविध संरक्षण उपकरणे यांच्या निर्मितीत DRDO आणि भारतीय उद्योगांनी स्वदेशी तंत्रज्ञान विकसित करून आयात पर्यायांना मर्यादित करण्याचा प्रयत्न केला आहे. ‘डिफेन्स इंडिजिनायझेशन’ आणि ‘मेक इन इंडिया’ उपक्रमांमुळे परकीय चलनाची बचत, रणनीतिक स्वावलंबन आणि तंत्रज्ञानांतर्गत ज्ञानसंचय वाढत असून छोट्या व मध्यम उद्योगांना (MSME) संरक्षण क्षेत्रात नवी संधी उपलब्ध होत आहे.

४) आरोग्य क्षेत्र आणि जैवतंत्रज्ञान -

कोविड-१९ महामारीच्या काळात भारताने स्वदेशी लस, औषधे, निदान किट्स आणि वैद्यकीय उपकरणे विकसित करून 'फार्मा हब' म्हणून आपली ओळख बळकट केली. जैवतंत्रज्ञान विभाग (DBT), BIRAC आणि विविध फार्मा कंपन्यांनी लसीकरण, जैवऔषधे, जीनोमिक्स, डायग्नोस्टिक तंत्रज्ञान आणि आरोग्य संशोधनात आत्मनिर्भर भारताच्या दृष्टीने महत्त्वपूर्ण कार्य केले आहे.

आरोग्य क्षेत्रात स्वदेशी तंत्रज्ञानामुळे परवडणारी आरोग्य सेवा, आरोग्य डेटा व्यवस्थापन, टेलीमेडिसिन आणि सार्वजनिक आरोग्य कार्यक्रमांची कार्यक्षमता वाढून सामाजिक न्याय आणि सर्वसमावेशक विकासाला बळकटी मिळते.

५) डिजिटल भारत आणि माहिती तंत्रज्ञान -

डिजिटल भारत, भारतनेट, UPI, आधार, डिजिटल पेमेंट्स, ई-गव्हर्नन्स आणि सायबर सुरक्षा यांसारख्या डिजिटल उपक्रमांनी आत्मनिर्भर भारताचे तांत्रिक पायाभूत आधारभूत मजबूत केले आहेत. माहिती तंत्रज्ञान आणि IT/ITeS क्षेत्रात भारताने जागतिक स्तरावर स्पर्धात्मक स्थान मिळविले असून कृत्रिम बुद्धिमत्ता, क्लाउड कॉम्प्युटिंग, 5G, ब्लॉकचेन, आयओटी आणि डेटा ॲनॅलिटिक्स यांसारख्या क्षेत्रांत भारतीय स्टार्टअप्स आणि उद्योग वेगाने उभे राहत आहेत.

डिजिटल पायाभूत सुविधा वाढल्यामुळे शासन, शिक्षण, बँकिंग, आरोग्य आणि उद्योग क्षेत्रातील व्यवहार सुलभ, पारदर्शक आणि कमी खर्चिक होत आहेत, ज्यामुळे आर्थिक उत्पादकता आणि तंत्रज्ञानावरील लोकांचा विश्वास वाढत आहे.

६) इलेक्ट्रॉनिक्स आणि सेमीकंडक्टर उद्योग -

मोबाईल, संगणक, दूरसंचार, ऑटोमोबाइल आणि संरक्षण क्षेत्रातील सर्व तंत्रज्ञानाचा मुख्य आधार असलेल्या सेमीकंडक्टर आणि इलेक्ट्रॉनिक्स निर्मितीत भारत दीर्घकाळ परकीय आयातीवर अवलंबून राहिला होता. आत्मनिर्भर भारताच्या चौकटीत 'India Semiconductor Mission' आणि उत्पादन प्रोत्साहन योजना (PLI) यांच्या माध्यमातून देशांतर्गत चिप निर्मिती, इलेक्ट्रॉनिक उत्पादन आणि हार्डवेअर डिझाइन क्षमतांच्या विकासावर भर दिला जात आहे.

यामुळे तंत्रज्ञान पुरवठा साखळी अधिक सुरक्षित, स्थिर आणि स्वदेशी बनण्याची प्रक्रिया सुरू झाली असून भविष्यातील कृत्रिम बुद्धिमत्ता, 5G, इलेक्ट्रिक वाहन आणि औद्योगिक ऑटोमेशनसाठी आवश्यक हार्डवेअरचा मोठा भाग भारतात विकसित होण्याची शक्यता निर्माण झाली आहे.

७) नवीकरणीय ऊर्जा आणि पर्यावरणीय शाश्वतता -

सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, बायोमास, हरित हायड्रोजन आणि ऊर्जा साठवण तंत्रज्ञानाच्या विकासाद्वारे भारत ऊर्जाक्षेत्रात स्वावलंबन आणि पर्यावरणीय शाश्वतता साधण्याचा प्रयत्न करत आहे. 'National Hydrogen Mission' आणि विविध सौर-पवन ऊर्जा प्रकल्पांमुळे स्वच्छ ऊर्जा उत्पादनात भारत अग्रस्थानी येत असून कोळसा आणि पेट्रोलियमवरील अवलंबित्व क्रमशः कमी करण्याचे लक्ष्य आहे.

नवीकरणीय ऊर्जेचा वाढता वापर हे कार्बन उत्सर्जन नियंत्रण, हवामान बदलाचे परिणाम कमी करणे आणि ऊर्जा सुरक्षेसाठी अत्यावश्यक असून आत्मनिर्भर भारताच्या संकल्पनेला पर्यावरणीय आधार प्रदान करतो.

८) कृषी क्षेत्रातील तंत्रज्ञान -

भारताच्या अर्थव्यवस्थेत कृषी क्षेत्राचे योगदान मोठे असून शाश्वत आणि उत्पादक शेतीसाठी तंत्रज्ञानाचा प्रभावी वापर आत्मनिर्भरतेसाठी अनिवार्य आहे. ड्रोन, सेन्सर, स्मार्ट सिंचन, हवामान अंदाज प्रणाली, जैवतंत्रज्ञान आधारित बियाणे, माती आरोग्य कार्ड आणि डिजिटल कृषी प्लॅटफॉर्म यांसारख्या तंत्रज्ञानाचा वापर शेतकऱ्यांना अधिक उत्पादन, कमी खर्च आणि धोका व्यवस्थापनासाठी सहाय्य देत आहे.

कृषी तंत्रज्ञानामुळे ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होऊन अन्नसुरक्षा, पोषणसुरक्षा आणि ग्रामीण रोजगार यांना नवे आधारस्तंभ मिळतात, जे आत्मनिर्भर भारताच्या 'सर्वसमावेशक विकास' या उद्दिष्टाशी घट्ट निगडित आहेत.

९) स्टार्टअप, नवोपक्रम आणि उद्योजकता -

भारत आज जगातील सर्वात वेगाने वाढणाऱ्या स्टार्टअप परिसंस्थांपैकी एक म्हणून ओळखला जात असून नवोपक्रम आणि उद्योजकतेतून आत्मनिर्भरतेचा मार्ग शोधत आहे. 'Startup India', 'Atal Innovation Mission', विविध मंत्रालयांचे नवोपक्रम चॅलेंजेस, इन्क्युबेशन केंद्रे आणि व्हेंचर कॅपिटल सहाय्य यांच्या माध्यमातून विज्ञान व तंत्रज्ञानाधारित स्टार्टअप्सना प्रोत्साहन दिले जात आहे.

या स्टार्टअप्स आरोग्य, शिक्षण, कृषी, ऊर्जा, अवकाश, संरक्षण, डिजिटल सेवा इत्यादी क्षेत्रात स्वदेशी तंत्रज्ञानावर आधारित नाविन्यपूर्ण समाधान देत आहेत, ज्यामुळे रोजगारनिर्मिती, मूल्यवर्धन आणि जागतिक स्पर्धात्मकता वाढत आहे.

१०) कौशल्य विकास आणि मानव संसाधन -

आत्मनिर्भर भारताचे स्वप्न साकार करण्यासाठी उच्च दर्जाचे वैज्ञानिक, अभियंते, तंत्रज्ञ आणि कौशल्यपूर्ण मनुष्यबळ तयार करणे अत्यावश्यक आहे. राष्ट्रीय कौशल्य विकास अभियान, विविध तांत्रिक प्रशिक्षण कार्यक्रम, ऑनलाइन कोर्सेस आणि उद्योग-शैक्षणिक संस्थांमधील भागीदारी यांद्वारे उदयोन्मुख तंत्रज्ञानांसाठी आवश्यक कौशल्यांच्या विकासावर भर दिला जात आहे.

कौशल्यपूर्ण मानव संसाधन हे संशोधन, उत्पादन, सेवा आणि व्यवस्थापन क्षेत्रात आत्मनिर्भर भारताच्या उद्दिष्टांना वास्तवात उतरविणारे प्रमुख घटक आहेत.

फायदे आणि आव्हाने -

आत्मनिर्भर भारताचे मुख्य फायदे - स्वदेशी उद्योग, संशोधन संस्था आणि स्टार्टअप्सना प्रोत्साहन मिळून देशांतर्गत मूल्यसाखळी मजबूत होते.

आयातीवरील अवलंबित्व कमी होऊन परकीय चलनाची बचत, व्यापार तूट कमी होणे आणि रणनीतिक स्वावलंबन साध्य होतो.

- विज्ञान व तंत्रज्ञानाधारित रोजगारनिर्मिती वाढून युवकांना नवे करिअर मार्ग उपलब्ध होतात.
- राष्ट्रीय सुरक्षा, आरोग्य, ऊर्जा आणि अन्नसुरक्षा यांसारख्या महत्त्वाच्या क्षेत्रांत स्वदेशी तंत्रज्ञानामुळे धोका व्यवस्थापन क्षमता वाढते.
- शाश्वत विकास, पर्यावरण संरक्षण आणि ग्रामीण-शहरी समतोल विकासाला बळकटी मिळते.

प्रमुख आव्हाने -

- उच्चस्तरीय संशोधनासाठी GDP चा अधिक टक्का R-D मध्ये गुंतवणे आवश्यक आहे.
- जागतिक दर्जाचे वैज्ञानिक, तंत्रज्ञ आणि संशोधक घडवण्यासाठी शिक्षणव्यवस्था, प्रयोगशाळा आणि करियर संरचना अधिक सक्षम करावी लागेल.
- अत्याधुनिक प्रयोगशाळा, टेस्टिंग सुविधा, पायलट प्लान्ट्स आणि डिजिटल पायाभूत सुविधा सर्व भागात उपलब्ध करणे आव्हानात्मक आहे.
- उद्योग-शैक्षणिक-संस्था-सरकार यांच्यातील समन्वय अधिक परिणामकारक करण्यासाठी प्रशासकीय सुलभीकरण आणि धोरणात्मक लवचिकता आवश्यक आहे.
- जागतिक तांत्रिक स्पर्धेत टिकून राहण्यासाठी सतत नवोपक्रम, दर्जा नियंत्रण आणि बौद्धिक संपदा संरक्षणावर भर देणे आवश्यक आहे.

उपाययोजना -

१. संशोधन व विकासासाठी सार्वजनिक आणि खासगी दोन्ही क्षेत्रातून अधिक निधी उपलब्ध करून R-D खर्च वाढविणे.
२. विद्यापीठे, संशोधन संस्था, उद्योग आणि सरकारी यंत्रणा यांच्यात 'ट्रिपल हेलिक्स' मॉडेलवर आधारित दीर्घकालीन सहकार्य संरचना विकसित करणे.
३. स्टार्टअप्स, डेडमे आणि नवोपक्रम प्रकल्पांना कर सवलती, सॉफ्ट लोन, ग्रॅन्ट्स आणि इन्क्युबेशन सुविधा उपलब्ध करून त्यांची जोखीम कमी करणे.
४. डिजिटल पायाभूत सुविधा - हाय-स्पीड इंटरनेट, क्लाउड प्लॅटफॉर्म, डेटा सेंटर, सायबर सुरक्षा-मजबूत करून देशभर ज्ञान आणि तंत्रज्ञानाचा समान प्रवेश सुनिश्चित करणे.
५. शालेय ते उच्च शिक्षण स्तरावर विज्ञान शिक्षण, प्रयोगाधारित शिक्षण, संशोधनाभिमुख अभ्यासक्रम आणि कौशल्य विकासाला प्राधान्य देणे.
६. स्वदेशी तंत्रज्ञानाचा वापर सरकारी खरेदी धोरणांतून प्रोत्साहन देऊन स्थानिक उद्योगांना बाजार हमी प्रदान करणे.

निष्कर्ष -

विज्ञान आणि तंत्रज्ञान हे आत्मनिर्भर भारताच्या संकल्पनेचे प्रमुख आधारस्तंभ असून संशोधन, नवोपक्रम, डिजिटल तंत्रज्ञान, अवकाश, संरक्षण, जैवतंत्रज्ञान, इलेक्ट्रॉनिक्स, नवीकरणीय ऊर्जा, कृषी तंत्रज्ञान आणि कौशल्य विकास या विविध क्षेत्रांतून भारत स्वावलंबी आणि सक्षम राष्ट्र बनण्याच्या दिशेने निर्णायक पावले टाकत आहे. 'आत्मनिर्भर भारत' हे अभियान देशाला केवळ आर्थिक दृष्ट्या नाही तर वैज्ञानिक आणि तांत्रिक दृष्ट्याही स्वावलंबी बनवून जागतिक पातळीवर भारताची भूमिका मजबूत करण्याची क्षमता बाळगते.

संशोधनासाठी अधिक गुंतवणूक, मानव संसाधन विकास, उद्योग-शैक्षणिक समन्वय आणि पर्यावरणीय शाश्वततेच्या दिशेने ठोस पावले उचलल्यास भारत आपल्या गरजा स्वयंपुरवी करण्यासोबतच जगासाठी तंत्रज्ञान आणि नवोपक्रमाचे महत्त्वाचे केंद्र बनू शकतो. अशा प्रकारे विज्ञान आणि तंत्रज्ञानाचा प्रभावी, न्याय्य आणि शाश्वत

उपयोग हा आत्मनिर्भर भारताच्या यशाचा कळीचा घटक ठरतो.

संदर्भ साधने --

1. भारत सरकार, 'आत्मनिर्भर भारत अभियान – घोषणापत्र आणि धोरण दस्तऐवज'.
2. Department of Science & Technology (DST), 'Science, Technology and Innovation Policy (STIP), 2020'.
3. Press Information Bureau (PIB), 'Technology Panorama for Aatmanirbhar Bharat – A Decade of Science'.
4. NITI Aayog, 'Powering Aatmanirbhar Bharat through Innovation and Entrepreneurship'.
5. India Science & Technology Portal, 'Science-Society-Setu for Aatma Nirbhar Bharat' अहवाल.
6. DST, CSIR, DRDO, DBT, ISRO आदी संस्थांचे अधिकृत अहवाल आणि प्रसिद्धिपत्रके – R-D, अवकाश, संरक्षण, जैवतंत्रज्ञान, डिजिटल तंत्रज्ञान व ऊर्जा क्षेत्रातील उपक्रम.

Email : pggawand@gmail.com

Mobile : 9423382078

20वीं शताब्दी का 'हिन्दी काव्य और युगीवाद'

डॉ. निर्मला जोशी

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत, उत्तराखंड।

मानव ज्ञान, उसकी आवश्यकताओं, युगीन परिस्थितियों तथा विश्वव्यापी घटनाओं के कारण मानव की विचारधारा में परिवर्तन आना तथा उसके सोचने विचारने के ढंग में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। विचारधारा प्रत्येक युग की उपज होती है जो एक प्रकार की भी हो सकती है और अनेक प्रकार की भी, जो विचारधारा सम्बद्ध ग्राह्यता एवं उपयोगी होते हैं वह 'वाद' का रूप ले लेती है। 'वाद' का रूप ले लेने वाली विचारधारा समय के बीतने के साथ-साथ यद्यपि अपनी उपयोगिता खोती चली जाती है फिर भी वह किसी विशेष काल तक सीमित न रहकर व्यापक बन जाती है।

विभिन्न विचारधाराओं तथावादों का ज्ञान ऐतिहासिक विकास क्रम को समझने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। साहित्य के उद्देश्यता को इन्हें जान लेना अनिवार्य ही नहीं आवश्यक भी है। प्रत्येक साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती विचारों से प्रभावित हो अथवा नहीं लेकिन समकालीन विचारों से अवश्य ही प्रभावित होता है। यह दूसरी बात है कि साहित्यकार किसी विचारधारा से कम अथवा किसी से अधिक प्रभावित हो जो विचारधारा व्यक्ति के जीवन मूल्यों तथा आदर्शों के अधिक निकट होती है, उसका सब पर अपेक्षाकृत अधिक गहरा और अमिट प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत पुस्तक का सम्बन्ध छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य से है। अतः भूमिका के अन्तर्गत केवल बीसवीं शताब्दी के प्रमुख विचारधाराओं के सन्दर्भ में ही हिन्दी काव्य का विवेचन किया जा रहा है। हिन्दी साहित्य के उद्भव काल से ही यदि हम विविधवादों के सन्दर्भ में हिन्दी काव्य का अध्ययन करना भी चाहें तो हमें बीसवीं शताब्दी कीवादों की भाँति विचारों की कोई सुस्पष्ट परम्परा प्राप्त नहीं होती क्योंकि प्रारम्भ में साहित्य को युग की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर विभिन्न धाराओं जैसे वीरगाथा काल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल में विभक्त किया गया। भक्ति के सन्दर्भ में रहस्यवाद का विवेचन, विश्लेषण व्यापक रूप में अवश्य हुआ है। इसके अतिरिक्त अवतारवाद जैसी विचारधारा अधिक व्यापक नहीं हो सकी।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में विज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति, उद्योग तथा संसार के क्षेत्रों में ऐसी विश्वव्यापी क्रान्तियाँ हुई जिससे मानव के सोचने विचारने के ढंग में पर्याप्त अन्तर आया। इन विभिन्न क्रान्तियों के फलस्वरूप विभिन्न विचारकों ने जो विचार व्यक्त किये थे वे व्यवस्थित तर्क संगत व जनमन को प्रेरित तथा प्रभावित करने वाले भी थे। अतः बीसवीं शताब्दी कोवादों की शताब्दी कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। हिन्दी

साहित्य व काव्य के क्षेत्र में मुख्यतः आधुनिकता के सन्दर्भ में भारतेन्दु युग प्रवेश द्वार के रूप में प्रतिष्ठान है, भारतेन्दु एक ऐसे साहित्यकार हैं जो प्राचीन व नवीन के संगम पर खड़े हैं। उन्हें एक नवीन युग के जन्मदाता के रूप में हिन्दी जगत में पर्याप्त सम्मान प्राप्त है।

छायावाद :

बीसवीं शताब्दी के प्रमुख वाद जिन्होंने गद्य तथा पद्य साहित्य को समान रूप से प्रभावित किया है। छायावाद, साम्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, मनोविश्लेषणवाद, यथार्थवाद आदि। "सन् 1915 से आधुनिक हिन्दी काव्य एक नयी दिशा की ओर मुड़ता है और 1935 तक एक धारा में बंधकर चलता है। इस काल में भारतेन्दु अथवा महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाँति कोई एक ऐसा व्यक्तित्व नहीं है जो सब पर छा जाय और अन्य व्यक्ति उससे प्रेरणा ग्रहण करें। इसी से इस काल का नामकरण किसी एक व्यक्ति के नाम पर न होकर एक प्रमुख प्रवृत्ति के नाम पर हुआ है। बीस वर्ष के इस काल को 'छायावाद काल' कहते हैं। विश्वम्भर मानव जी ने यह माना है कि छायावाद का नामकरण एक प्रवृत्ति विशेष के आधार पर किया गया है। छायावाद का जन्म द्विवेदी युगीन नीरस आदर्शवाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ था।

गाँधीवाद :

जिन दिनों छायावाद काव्य के क्षेत्र में अवतरित हुआ उन्हीं दिनों भारतीय राजनीति में गाँधी का प्रवेश भी हुआ जो भारतीय भारतीय इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है भारतीय राजनीति को गाँधी ने सत्य और अहिंसा के अस्त्र प्रदान कर नवीन दिशा दिखाना प्रारम्भ किया था। गाँधी के विचार किसी साँचे में ढले या परम्परागत नहीं थे वरन् उनके मौलिक चिन्तन का परिणाम थे। गाँधी के विचारों के महत्व पर अपने विचार प्रकट करते हुए कथाकार हिमांशु जोशी ने ठीक ही लिखा है कि "मार्क्सवाद के बाद जिस विचारधारा ने दुनिया के लोगों को प्रभावित किया उनमें गाँधीवाद प्रमुख है। गाँधी दर्शन ने अल्बर्ट स्वाइटर सर, सूमरेवर, रोम्या रोला, मार्टिन लूथर किंग जैसे अनेक विभूतियों को प्रभावित किया। लगभग ऐसा ही विचार विश्वम्भर मानव का भी है। उन्होंने लिखा है कि "मार्क्स के समान ही गाँधी जी ने विराट जीवन को देखने के लिए एक विराट दृष्टि दी— एक जीवन—दर्शन दिया। उनका प्रभाव राजनीति, धर्म समाज सभी पर पड़ा। इतना होते हुए भी गाँधीवाद कवि इस युग में बहुत थोड़े हुए— उदाहरण के लिए माखनलाल चतर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी आदि।"

जब गाँधी भारतीय राजनीति में सक्रिय थे और अपने सत्य और अहिंसा सम्बन्धी विचारों से जन—जन को प्रेरित और प्रभावित कर रहे थे तब यह नहीं कहा जा सकता कि केवल पूर्व उल्लिखित चार कवि ही गाँधीवादी विचारों से प्रभावित थे। कुछ ऐसे कवि भी थे जो गाँधी के विचारों से सहानुभूति रखते थे, उनके समर्थक और पोषक थे लेकिन गाँधीवाद की सीमा में बंधकर नहीं रहे "वे थे जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा। इनमें से कोई एक भी उन चार कवियों से जिनके नाम उन पर गिनाये गये हैं तौल में भारी बैठेगा।" गाँधी के हिन्दी काव्य पर पड़े प्रभाव तथा उनके विचारों से प्रभावित हिन्दी भाषा के विधियों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गाँधी के विचारों से प्रभावित लोग भारत में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में हैं भले ही वे अपने को गाँधीवादी कहें अथवा न कहें। गाँधी के विचार कितने उच्च थे इस सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य कोशकार ने लिखा है कि "गाँधीवादी के मूल स्तम्भ दो हैं— सत्य और अहिंसा। सत्य का ही दूसरा नाम उन्होंने परमेश्वर माना है तथा सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही तत्व की व्याप्ति स्वीकार

कर ईश्वर और मनुष्य तथा मनुष्य एवं अन्य जीवधारियों की एकता स्वीकार की है। इस अन्तरभूत एकत्व के कारण ही उन्होंने माना था कि जो घटना एक शरीरधारी पर घटती है उसका समग्र जड़ पदार्थ पर और उसकी आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार सत्य के साक्षात्कार से सम्मति प्राप्त होती है और सम्मति से सबके प्रति अहिंसा का भाव उत्पन्न हो जाता है।" साहित्य कोशकार के उपर्युक्त कथन से गाँधी के विचारों की व्यपकता, उच्चता और प्रभावित करने की शक्ति स्वतः स्पष्ट हो जाती है। अतः कहा जा सकता है कि गाँधी के विचारों से गाँधी के जीवन काल में ही विचारों को किसी ने गाँधी दर्शन के रूप में और किसी ने मानवतावादी दर्शन के रूप में स्वीकार अवश्य किया है।

साम्यवाद प्रगतिवाद :

बीसवीं शताब्दी की प्रमुख विचारधाराओं में साम्यवाद प्रमुख है। राजनीति के क्षेत्र में जिसे साम्यवाद कहते हैं हिन्दी साहित्य में उसी को प्रगतिवाद कहा जाता है। इस साम्यवाद अथवा प्रगतिवाद का आधार मुख्यतः मार्क्स के विचार हैं। "मार्क्स कहता है कि मानव जीवन तथा ऐतिहासिक घटनाओं का आधार मनुष्य की दैनिक आवश्यकताएँ हैं। ज्यों-त्यों इनमें परिवर्तन होता है त्यों-त्यों सामूहिक जीवन भी बदलता है।" साम्यवाद और मार्क्स के विचारों का आधार समानता की भावना है इस सम्बन्ध में नोथल का विचार है कि "साम्यवाद जीवन के ऐक्य कारक हैं और जीवन का ऐक्य ही साम्यवाद की नींव है।" साम्यवाद सम्बन्धी उपर्युक्त एक दो मतों के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि साम्यवादी सम्पत्ति को सामाजिक तथा सर्वजन सुलभ बनाने के पक्षधर थे और मानव की आवश्यकताओं पर सदैव ध्यान देते थे।

आज साम्यवाद जिस रूप में प्रचलित है वह प्राचीन साम्यवाद से पर्याप्त भिन्न है। प्राचीन साम्यवाद में धर्म तथा राजनीति प्रमुख थी जबकि आज के साम्यवाद का उद्देश्य आर्थिक समानता की स्थापना, उत्पादन वृद्धि तथा लोगों के जीवन स्तर को सुधारना है। साम्यवादियों की दृष्टि में उत्पादन वृद्धि का कितना महत्व है और उत्पादन की शक्ति पर नियन्त्रण खो देना कितना घातक है। इस पर प्रकाश डालते हुए डॉ० केशरी नारायण शुक्ल लिखते हैं कि "जो शक्ति मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है उसे उत्पादन शक्ति कहते हैं। उत्पादन शक्ति का विकास ही इतिहास की प्रक्रिया का संचालन करता है। आज तक संसार में जितने भी युद्ध क्रान्ति तथा विद्रोह हुए हैं उनके मूल में यही भावना रही है उत्पादन की शक्ति को अपने अधिकार में रखा जाये।"

पुस्तक के भूमिका भाग के प्रस्तुत अंश में साम्यवाद पर अधिक विस्तार से विचार करना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि इस अंश में हिन्दी काव्य के संदर्भ में विविध वादों का संक्षिप्त परिचय मात्र दिया जा रहा है। अतः यहाँ साम्यवाद के प्रगतिवादी रूप का हिन्दी काव्य के संदर्भ में संक्षिप्त परिचय देना ही उचित होगा। "हिन्दी में सर्वप्रथम इसमें प्रकाशित रचनाओं द्वारा साम्यवाद का प्रचार हुआ। फिर धीरे-धीरे कहानी, कविता, उपन्यास के क्षेत्र में अनेक नयी प्रतिभाओं का उदय हुआ। जिन्होंने साम्यवाद अथवा प्रगतिवाद को हिन्दी की एक सशक्त प्रवृत्ति बना दिया।"

हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद का प्रारम्भ जिस जोर-शोर के साथ हुआ था उसकी प्रगति उतनी ही मन्द रखी इसका कारण यह था कि कोई भी कवि इस काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करने के लिए आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं दिखा रहा था क्योंकि छायावाद के आधार कवि प्रसाद, पन्त निराला और महादेवी अपने को इस प्रकार स्थापित कर चुके थे कि उनके मुकाबले प्रगतिवादी काव्यधारा की बागडोर संभालने की हिम्मत कोई नहीं जुटा

पा रहा था। "अतः प्रगतिवाद को सफल बनाने के लिए एक मार्ग यह शेष रह गया थाकि छायावादी कवियों में से ही कोई आगे बढ़कर उस पक्ष को पुष्ट करे और यह मानना पड़ेगा कि जब पन्त जी इधर झुके तो प्रगतिवाद का पौधा लड़खड़ाने लगा था।" पन्त के अतिरिक्त नागार्जुन, नेमीचन्द्र जैन, नरेश मेहता आदि उल्लेखनीय हैं। छायावाद और प्रगतिवाद को जोड़ने वाली एक कड़ी के रूप में विश्वम्भर मानव ने बच्चन का उल्लेख भी किया है। "मानव" जी ने लिखा है कि "छायावाद-युग और प्रगतिवाद-युग के बीच की एक साहित्यिक कड़ी है और उस कड़ी को जोड़ने वाला केवल एक ही व्यक्ति है और अपनी भिन्न प्रवृत्ति के कारण वह अकेला ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह व्यक्ति है— "बच्चन"।

प्रगतिवादी काव्य धारा हिन्दी में सन् 1935 के बाद प्रयोगवाद के व्यापक प्रचलन तक निर्विवाद रूप से रचना करने वाले तथा प्रगतिवादी आलोचक पर्याप्त मात्रा में हैं। हिन्दी काव्य पर प्रगतिवाद का पर्याप्त प्रभाव भी है। साम्यवाद अथवा प्रगतिवाद का जो सबसे व्यापक प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा है, वह है साहित्य की सामाजिक परिणति अर्थात् प्रगतिवाद के कारण हिन्दी साहित्य में सामाजिक आयामों का विकास हुआ है, यथार्थवाद पनपता है, जीवनवाद को तरजीह मिली है, मानववाद का प्रचार हुआ है, शोषण और अत्याचार का विरोध हुआ है और शोषित को सहानुभूति मिली है।" केवल कविता के क्षेत्र में ही नहीं समीक्षा के क्षेत्र में भी प्रगतिवादी विचारों का प्रभाव पड़ा है। प्रगतिवाद ने हिन्दी में एक नयी पद्धति भी विकसित की है। प्रगतिवादी समीक्षकों में शिवदान सिंह चौहान, राम विलास शर्मा, रागेंय राघव, अमृतराय और प्रकाश चन्द्र गुप्त के नाम प्रसिद्ध हैं।"

छायावादी कवियों में सुमित्रानन्दन पन्त अपने प्रतियोगिता के लिए विख्यात हैं। 'पन्त की प्रकृति के चरण हैं— ईश्वर, प्रकृति, प्रणय, जीवन और संस्कृति अर्थात् रहस्यवाद, प्रकृतिवाद, रोमांचवाद, प्रगतिवाद और भविष्यवाद। युगान्त के प्रारम्भ से ही प्रगतिवाद उनके काव्य में प्रारम्भ हो जाता है और युगवाणी तथा ग्राम्या में वह अपनी जड़ें जमा लेता है।" प्रगतिवादी कवि के रस में भूमिका के अन्तर्गत अन्य कवियों तथा पन्त जी का उल्लेख मात्र किया गया है और किसी भी कवि की प्रगतिवादी आधार भूमि तथा प्रगतिवाद के सन्दर्भ में उल्लेख काव्य में विशेषताओं का उल्लेख नहीं किया गया है। क्योंकि पुस्तक का प्रथम तथा तृतीय अध्याय प्रगतिवाद के सम्यक् विवेचन विश्लेषण से सम्बन्धित है। अतः उन्हीं अध्यायों में प्रगतिवाद का विशद विवेचन करना उचित होगा।

प्रयोगवाद :

प्रगतिवाद के उपरान्त जिस वाद का हिन्दी काव्य में प्रचलन हुआ उसे प्रयोगवाद के नाम से अभिहित किया जाता है। प्रयोगवाद का आरम्भ द्वितीय विश्व युद्ध के आसपास हुआ इस सम्बन्ध में विश्वम्भर मानव ने लिखा है कि "इस वाद का प्रारम्भ सन् 1943 अर्थात् 'तार-सप्तक' के प्रकाशन काल से मानना चाहिए। प्रगतिवाद पर जैसे मार्क्स दर्शन का प्रभाव है वैसे ही प्रयोगवाद पर फ्रायड का।" विश्वम्भर मानव के अतिरिक्त डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त ने भी अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक मानते हुए प्रयोगवाद के प्रारम्भ के सन्दर्भ में लगभग वैसा ही मत व्यक्त किया है जैसा कि विश्वम्भर मानव ने गुप्त जी के अनुसार "इस अति यथार्थवादी आन्दोलन का प्रवर्तन सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' 1943 के प्रकाशन के द्वारा हुआ।" प्रयोगवाद हिन्दी काव्य में किन परिस्थितियों में आया और प्रयोगवाद की प्रमुख विशेषतायें क्या हैं इस सम्बन्ध में। डॉ० भगीरथ मिश्र ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है— "छायावाद की कलात्मक विशेषता जो प्रगतिवाद के

रूप में प्रकट हो रही है। इसमें नवीनता हो रही है। विलक्षणता और चमत्कार की दृष्टि प्रधान है।" डा० गणपति चन्द्र गुप्त अपने ग्रन्थ 'साहित्यिक निबन्ध' में प्रयोगवाद की इस प्रवृत्ति की ओर संकेत करना नहीं भूले हैं कि "परम्परागत" प्रतीकों पर्व उपनामों के स्थान पर उन्होंने प्रयोगवादियों के आधुनिक युग के उपकरणों विशेषतः वैज्ञानिक साधनों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है।"

प्रयोगवाद के उद्भव तथा उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का विद्वानों की सम्मति के परिप्रेक्ष्य में संक्षिप्त अध्ययन करने के उपरान्त प्रमुख प्रयोगवादी कवियों तथा उनकी काव्यगत विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर लेना अनुचित न होगा। "अज्ञेय"—तार—सप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक द्वारा प्रयोगवाद के अनेक कवियों को जनता के सामने लाये हैं। अज्ञेय के अतिरिक्त प्रयोगवाद के कवियों में धर्मवीर भारतीय, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, कुंवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सकसेना, केदारनाथ सिंह कीर्ति चौधरी आदि प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।" उपर्युक्त प्रयोगवादी कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रयोगवादी कवि भी हुए हैं लेकिन उनका सम्बन्ध सप्तकों से नहीं रहा। ऐसे प्रमुख कवि हैं— शमशेर बहादुर सिंह, राजेन्द्र किशोर, लक्ष्मीकान्त वर्मा और अजीत कुमार आदि। प्रयोगवादी काव्य में भाषा, छन्द, अलंकार में कवियों ने कला पक्ष के संदर्भ में कुछ नवीन प्रयोग भी किये हैं।

निष्कर्ष :

"20वीं शताब्दी का हिन्दी काव्य और युगीनवाद" शीर्षक भूमिका के अन्तर्गत अध्ययन की सीमा और पुस्तक के आकार दोनों को ध्यान में रखते हुए बीसवीं शताब्दी के ही प्रमुखवादों के सन्दर्भ में हिन्दी काव्य पर प्रकाश डाला गया है। छायावादी कवियों के काव्य में रहस्यवाद और रहस्यवादी संकेत मिलते हैं लेकिन भूमिका भाग के अन्तर्गत पन्त की स्थिति को ध्यान में रखते हुए रहस्यवाद का विवेचन इसलिए नहीं किया गया क्योंकि पन्त के काव्य क्षेत्र में पदार्पण करने के साथ ही रहस्यवाद का युग समाप्त हो चुका था। इससे स्पष्ट है कि रहस्यवाद पन्त के युग की विचारधारा न होकर उसकी पूर्ववर्ती विचारधारा थी। इस प्रकार भूमिका के अन्तर्गत छायावाद, गाँधीवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का ही अध्ययन बीसवीं शताब्दी की प्रमुख विचारधाराओं के रूप में किया गया है। पुस्तक पन्त के काव्य पर केन्द्रित होने के कारण मनोविश्लेषणवाद तथा यथार्थवाद पर भी भूमिका भाग में विवाद नहीं किया गया है। जिन विभिन्नवादों के संदर्भ में हिन्दी काव्य का अध्ययन किया गया है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि विविधवादों का जन्म एक-दूसरे की प्रतिक्रिया स्वरूप, समय की आवश्यकता के कारण या विश्वव्यापी परिवर्तनों के फलस्वरूप ही हुआ है और प्रत्येकवाद ने काव्य को नयी गति और नयी दिशा प्रदान की है। विभिन्नवादों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध काव्य ही नहीं दिया वरन् असंख्या प्रतिभाशाली और युग दृष्टा साहित्यकार भी प्रदान किये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सुमित्रानन्दन पन्त, विश्वम्भर मानव, पृ० 16।
2. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, जयन्ती अंक, गाँधीवाद वर्तन सन्दर्भ में लेखक हिमांशु जोशी, 2 अक्टूबर 1977।
3. सुमित्रानन्दन पन्त, विश्वम्भर मानव, पृ० 17।
4. वही।
5. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, प्रधान सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 257।

6. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, चतुर्दश भाग, प्रधान सम्पादक डॉ० हरवंश लाल शर्मा, पृ 54 ।
7. वही, पृ० 154 ।
8. वही, पृ० 154 ।
9. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, प्रधान सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 844 ।
10. सुमित्रानन्दन पन्त, विश्वम्भर मानव, पृ० 18 ।
11. वही पृ० 28-29 ।
12. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, प्रधान सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 844 ।
13. वहीं पृ० 844 ।
14. सुमित्रानन्दन पन्त, विश्वम्भर मानव, पृ० 130 ।
15. वही पृ० 29 ।
16. साहित्यिक निबन्ध, डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त, पृ० 528 ।
17. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० 352 ।
18. साहित्यिक निबन्ध, डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त, पृ० 528 ।
19. सुमित्रानन्दन पन्त, विश्वम्भर मानव, पृ० 30 ।

Ecocritical Perspectives and Environmental Awareness in Ancient Indian Literature

Dr. Mangesh Madhukar Gore

Head, Department of English

Sundarrao More ACS College, Poladpur, Dist Raigad, M.S.-402303

Abstract -

The relationship between literature and the environment has become increasingly important in light of today's global ecological challenges. Ecocriticism, which examines how literature interacts with the natural world, offers a crucial lens for re-examining classic texts. This essay delves into the deep environmental awareness found in ancient Indian literature. From the sacred hymns of the Vedas and the thoughtful discussions in the Upanishads to the epic narratives of the great Indian Epics and the lyrical charm of classical Sanskrit poetry, these texts are filled with significant ecological insights. Through an ecocritical perspective, this paper contends that the ancient Indian worldview saw humanity and nature not as separate entities but as deeply interconnected. By venerating natural elements and weaving environmental ethics into the concept of Dharma, ancient Indian literature presents a timeless framework for achieving ecological balance and sustainable living—an approach that is strikingly relevant to today's environmental conversations.

Keywords :

Ecocriticism, Ancient Indian Literature, Environmental Awareness, Deep Ecology, Vedas, Upanishads, Dharma, Nature.

Objectives :

This essay sets out to accomplish the following goals :

1. Define and delineate the scope of ecocriticism in relation to ancient Indian literature within a non-Western context.
2. Examine the ecological insights and environmental awareness found in key Indian texts, such as the Vedas, Upanishads, Epics, and classical poetry.
3. Investigate the philosophical notion of cosmic interconnectedness and the reverence for nature

in ancient Indian thought.

4. Highlight the importance of ancient Indian ecological principles (Eco-Dharma) in addressing today's global environmental challenges.

Discussion :

Introduction to Ecocriticism and the Indian Context :

Ecocriticism, a term introduced by William Rueckert in 1978 and further developed by scholars like Cheryll Glotfelty in the 1990s, examines how literature portrays the natural world and influences human perspectives toward it. Though it originated primarily as a Western academic field, applying ecocriticism to ancient Eastern philosophies uncovers a rich tradition of "deep ecology." This concept emphasizes the intrinsic value of all living beings, independent of their usefulness to humans. In the context of ancient Indian literature, this idea is not merely theoretical but serves as the foundational principle of existence. Unlike the clear distinction between "man" and "nature" typical of post-Enlightenment Western thought, ancient Indian traditions embrace a holistic view where humans, plants, animals, and natural elements exist in a cohesive universe, united by an invisible cosmic order.

The Vedic View: A Foundation for Ecological Balance :

The Vedas, often acknowledged as some of the earliest texts in human history, can be seen as an extended tribute to nature. Analyzing the Rig Veda from an ecocritical perspective reveals it as a notable example of early awareness regarding the environment. The sages, or Rishis, of the Vedic era didn't just coexist with nature; they engaged with it, held it in high esteem, and even worshiped its various components.

Natural elements were personified as deities, each representing a powerful force: Agni (fire), Vayu (wind), Surya (sun), Varuna (water/ocean), and Bhumi (earth). This act of deification served a significant purpose; it not only expressed profound spiritual appreciation but also set clear moral guidelines against the exploitation of nature's resources. The concept of Rita, which symbolizes cosmic and moral order in the Vedas, asserts that all entities in the universe must work in unison. Any disruption to the natural world was perceived as a breach of this order.

One of the most articulate expressions of environmental awareness in Vedic literature can be found in the Bhumi Sukta (Hymn to the Earth) in the Atharva Veda. This hymn, comprising 63 verses, serves as a beautifully crafted call for ecological mindfulness. The seer poignantly states, "Mata Bhumi Putroham Prithivyah" (The Earth is my mother, and I am her son). This text earnestly advocates for the protection of mountains, rivers, and forests, while seeking forgiveness from the Earth for any harm caused by human activities. It underscores the planet's delicate state and its vital role in sustaining life, a thought that precedes modern environmentalism by countless centuries.

The Upanishads: A Philosophy of Connection :

Shifting from the ceremonial and reverential tone of the Vedas, the Upanishads delve into a profound metaphysical investigation of existence. From an ecocritical viewpoint, the insights found in Upanishadic texts are invaluable as they challenge the human-centered perspective of the world.

At the core of the Upanishads is the principle of monism—the idea that everything in the universe is a manifestation of a single ultimate reality, known as Brahman. The famous Mahavakya (great saying) "Tat Tvam Asi" (Thou Art That) succinctly captures the understanding that the individual self (Atman) is inseparable from the universal essence (Brahman). In ecological terms, this means that harming a tree, an animal, or a river equates to hurting oneself since they all embody the same divine essence.

The Isha Upanishad starts with an essential ecological principle: "Isha vasyam idam sarvam yat kincha jagatyam jagat" (All that exists in this moving world is enveloped by the Lord). It encourages individuals to appreciate the world through renunciation, advising against coveting the possessions of others. This can be interpreted as a caution against overconsumption and human greed. It advocates for a model of sustainable living, where people take only what is necessary for their survival, allowing nature to remain undisturbed to maintain ecological balance.

The Epics : Viewing Nature as a Living Entity :

The Ramayana and the Mahabharata, two monumental epics from ancient India, intricately weave environmental awareness into the fabric of their cultural and ethical narratives. In these tales, nature is not just a silent backdrop; it plays an active role, responsive to the moral actions of the human characters.

In Valmiki's Ramayana, the wilderness (Aranya) symbolizes spiritual transformation and purity. During Rama's exile, the Dandakaranya forest transforms into his sanctuary, with the epic detailing the rich diversity of plants and animals found there. The bond between humans and animals is portrayed as profoundly interconnected. Unlike mere beasts, characters such as Jatayu the vulture and Hanuman the vanara display remarkable wisdom, loyalty, and agency, joining forces with humans to uphold Dharma (righteousness). The Ramayana presents an ideal society (Ram Rajya) where nature and human civilization coexist in perfect harmony.

The Mahabharata, too, conveys ecological ethics through the lens of Dharma. This epic features various stories and discussions that stress the importance of safeguarding trees and wildlife. In the Shanti Parva, the sage Bhrigu teaches Bharadwaja that trees are alive; they experience pain and joy. The text categorically denounces the pointless destruction of trees and the contamination of water sources, deeming such actions sinful. The episode of Khandava Dahan (the burning of the Khandava forest) illustrates the severe repercussions of environmental devastation, reminding us of the inherent

violence that often accompanies human progress.

Classical Sanskrit Literature : A Practical Approach to Deep Ecology :

Classical Sanskrit literature, especially the enchanting writings of the renowned poet and playwright Kalidasa, offers a rich aesthetic and emotional connection to nature that resonates with today's ecocritical perspectives. Instead of simply depicting the natural world, Kalidasa weaves human feelings into the fabric of the landscape, giving rise to what we now call the "eco-poem."

In his masterpiece, *Abhijnanasakuntalam* (The Recognition of Shakuntala), the central character Shakuntala is the adopted daughter of sage Kanva, but she embodies a deeper connection as a child of the forest. The hermitage where she spends her upbringing is depicted as a pristine ecological paradise. Shakuntala speaks of the vine-like plants as her sisters and the young deer as her offspring. She chooses not to drink water until the plants have been quenched, and she refrains from gathering fresh leaves for decorations to spare the plants any distress. When she departs the forest for the king's palace, it's not just the humans who grieve; nature itself mourns. The deer drop the grass they were nibbling, the peacocks cease their dance, and the creepers weep, releasing yellow leaves. This deep emotional connection erodes the boundary between human and nature, illustrating a profound embodiment of deep ecology.

In a similar vein, *Meghaduta* (The Cloud Messenger) sees Kalidasa transforming a natural phenomenon—a cloud—into an emotional companion and messenger. The cloud's journey over mountains, rivers, and cities is described with such vivid geographical and botanical detail that it reflects an impressive awareness of and respect for the environment.

Eco-Dharma: Sustainability as a Moral Obligation :

One significant theme that arises from examining these ancient texts is the idea of "Eco-Dharma." In ancient Indian culture, taking care of the environment was not seen simply as a practical task; it was regarded as a moral and spiritual duty. The term "Dharma," which can be understood as duty or righteousness, encompasses more than just interactions between people; it also extends to our relationship with nature.

Acts such as planting trees, digging wells, and safeguarding animals were considered forms of high spiritual merit or *Punya*. In contrast, actions like polluting water, cutting down trees that bear fruit, or hunting for pleasure were deemed sinful or *Paap*. This deep-rooted integration of ecological principles into the everyday religious and cultural practices of the people played a crucial role in preserving biodiversity and ensuring the sustainable management of resources.

Conclusion :

Ecocriticism, though a relatively new academic approach, resonates deeply with the ancient literary traditions of India. A thorough examination of texts such as the Vedas, Upanishads, Epics, and

classical poetry shows that environmental awareness was not an idea imported from elsewhere; rather, it was central to the very fabric of Indian civilization. The sages and poets of ancient India understood that humanity is just one part of a larger, interconnected web of life in the cosmos.

In today's world, as we face urgent challenges like climate change, deforestation, and the decline of biodiversity—largely fueled by an anthropocentric mindset and unchecked capitalism—the ecological insights found in ancient Indian literature are more relevant than ever. These works remind us that the Earth is not just a resource to be exploited, but a vibrant entity that deserves our respect, compassion, and protection. By embracing the ideals of interconnectedness, sustainable living, and Eco-Dharma found in these ancient texts, contemporary society can find the philosophical and ethical guidance needed to confront the current environmental crisis and restore a sense of balance between humankind and the natural world.

References :

1. Prime, Ranchor. (1992). *Hinduism and Ecology: Seeds of Truth*. Cassell.
2. Glotfelty, Cheryl, and Harold Fromm, eds. (1996). *The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology*. University of Georgia Press.
3. Radhakrishnan, S. (1953). *The Principal Upanishads*. HarperCollins.
4. Griffith, Ralph T.H. (Trans.). (1895). *The Hymns of the Atharva Veda*. E.J. Lazarus and Co.
5. Ryder, Arthur W. (Trans.). (1912). *Kalidasa: Translations of Shakuntala and Other Works*. J.M. Dent & Sons.
6. Dwivedi, O. P., and B. N. Tiwari. (1987). *Environmental Crisis and Hindu Religion*. Gitanjali Publishing House.
7. Devall, Bill, and George Sessions. (1985). *Deep Ecology: Living as if Nature Mattered*. Gibbs Smith.
8. Valmiki. *The Ramayana*. Trans. Robert P. Goldman. Princeton University Press, 1984.

हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक परिवेश

डॉ. प्रदीप कुमार

हिन्दी अध्यापक (संविदा शिक्षक)

राजकीय उच्च विद्यालय, बनसुधार (सिरसा) हरियाणा।

भूमिका :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के ऐसे बहुआयामी साहित्यकार हैं, द्विवेदी जी ने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति को केवल अतीत की गौरवपूर्ण स्मृति के रूप में स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे एक गतिशील और विकासशील प्रक्रिया के रूप में देखा। उनके अनुसार संस्कृति मनुष्य के जीवन-मूल्यों, विचारों, आचरण और सामाजिक चेतना से निर्मित होती है। इसलिए उनके साहित्य में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का अध्ययन केवल सांस्कृतिक परंपराओं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसमें सामाजिक संबंधों, मानवीय मूल्यों, धार्मिक दृष्टिकोण, लोकजीवन और ऐतिहासिक चेतना का भी समावेश दिखाई देता है।

भारतीय सांस्कृतिक परिवेश :

भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को समझने के लिए सर्वप्रथम संस्कृति की अवधारणा को समझना आवश्यक है, क्योंकि समाज की जीवन-पद्धति, विचारधारा, विश्वास, परंपराएँ और मूल्य ही संस्कृति का निर्माण करते हैं। संस्कृति किसी राष्ट्र या समाज की आंतरिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है।

‘संस्कृति’ शब्द संस्कृत भाषा से निर्मित है। रामचंद्र वर्मा के अनुसार संस्कृति शब्द की उत्पत्ति ‘सम्’ उपसर्ग के साथ ‘कृ’ धातु में ‘क्तिन्’ प्रत्यय लगाने से मानी जाती है। संस्कृत व्याकरण परंपरा में संस्कृति का संबंध परिष्कार, शिष्टता और सौजन्य से जोड़ा गया है। भारतीय चिंतन परंपरा में संस्कृति को केवल बाहरी विकास का साधन नहीं माना गया, बल्कि इसे मनुष्य के आंतरिक परिष्कार और चेतना के विकास से संबंधित माना गया है।

भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने संस्कृति को मनुष्य के स्वभाव, मानसिक संतुलन, आत्मिक शांति और जीवन में माधुर्य उत्पन्न करने वाली शक्ति माना है। उनके अनुसार संस्कृति व्यक्ति के भीतर श्रेष्ठ गुणों का विकास करती है और उसे उच्च मानवीय मूल्यों की ओर प्रेरित करती है।

इतिहासकार गोविन्द चन्द्र पाण्डेय संस्कृति को एक मूल्य-व्यवस्था के रूप में देखते हैं। टायलर की संस्कृति संबंधी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वे मानते हैं कि संस्कृति अथवा सभ्यता में ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, रीति-रिवाज तथा समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित विभिन्न योग्यताएँ सम्मिलित

होती हैं। इस दृष्टि से संस्कृति मनुष्य के संपूर्ण सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृति को सभ्यता के आंतरिक स्वरूप के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार सभ्यता समाज की बाहरी व्यवस्थाओं से संबंधित होती है, जबकि संस्कृति व्यक्ति के आंतरिक विकास और चेतना से जुड़ी होती है। सभ्यता परिवर्तनशील और बाह्य होती है, जबकि संस्कृति स्थायी और आंतरिक स्वरूप वाली होती है। इस अंतर को स्पष्ट करते हुए वे बताते हैं कि सभ्यता की उपयोगिता वर्तमान की सुविधाओं से जुड़ी होती है, जबकि संस्कृति मनुष्य के दीर्घकालीन जीवन-मूल्यों को संरक्षित करती है।

इसी संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि सभ्यता के भौतिक साधन समय के साथ नष्ट हो सकते हैं, किंतु संस्कृति के मूल मूल्य लंबे समय तक समाज को दिशा प्रदान करते रहते हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने भी संस्कृति की इसी स्थायित्व शक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि संस्कृति सभ्यता के भीतर उसी प्रकार विद्यमान रहती है जैसे दूध में मक्खन और फूलों में सुगंध।

भारतीय पुरातत्त्ववेत्ता वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भविष्य के जीवन का समग्र रूप है। मनुष्य जिस प्रकार जीवन व्यतीत करता है, वही उसकी संस्कृति का स्वरूप निर्धारित करता है। इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए बाबू गुलाब राय ने 'जातीय संस्कारों को संस्कृति का आधार माना है।' महादेवी वर्मा ने 'संस्कृति को जीवन-पद्धति के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है कि यह ऐसी व्यवस्था है, जिसमें प्राकृतिक और मानव निर्मित परिवेश के बीच सामंजस्य स्थापित होता है। संस्कृति केवल बाहरी जीवन-व्यवहार नहीं है और न ही केवल आंतरिक विचारों तक सीमित है, बल्कि यह मनुष्य के विचार, भावना, कल्पना और व्यवहार का समन्वित रूप है।'

इस प्रकार भारतीय संस्कृति का स्वरूप व्यापक और बहुआयामी है। इसमें जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों का समावेश होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी व्यापक सांस्कृतिक दृष्टि को अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। उनके लिए भारतीय संस्कृति मानव जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों की अभिव्यक्ति है, जो विभिन्न परंपराओं और विचारधाराओं के समन्वय से विकसित हुई है।

द्विवेदी जी ने भारतीय लोकजीवन को अपनी रचनाओं में विशेष स्थान दिया है। वे मानते थे कि 'भारतीय संस्कृति का वास्तविक स्वरूप लोकजीवन में सुरक्षित है। ग्रामीण जीवन, लोकविश्वास, लोकाचार और जनसामान्य की संवेदनाएँ उनकी रचनाओं में जीवंत रूप से प्रस्तुत हुई हैं।'

उनके उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के साथ-साथ भारतीय परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों का भी चित्रण मिलता है। बाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा, चारुचंद्रलेख और अनामदास का पोथा जैसी रचनाओं में इतिहास के माध्यम से भारतीय समाज और संस्कृति के विविध पक्षों को उजागर किया गया है।

द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के धार्मिक उदार स्वरूप के समर्थक थे। वे धर्म को संकीर्ण आस्थाओं तक सीमित नहीं मानते थे, बल्कि उसे नैतिकता और मानव कल्याण से जोड़ते थे। उनके साहित्य में विभिन्न धार्मिक परंपराओं के प्रति सम्मान और सहिष्णुता की भावना दिखाई देती है।

उन्होंने भक्ति आंदोलन और संत परंपरा का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट किया कि भारतीय संस्कृति की शक्ति उसकी उदारता और समन्वय क्षमता में निहित है। कबीर, नाथ परंपरा और अन्य संतों के विचारों के प्रति उनकी विशेष रुचि इसी सांस्कृतिक दृष्टि का परिणाम है।

भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्त्व :

प्राचीनता और निरंतरता :

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता उसकी प्राचीनता और निरंतरता है। विश्व की अनेक प्राचीन संस्कृतियाँ समय के साथ समाप्त हो गईं, लेकिन भारतीय संस्कृति आज भी जीवित है। इसका प्रमुख कारण इसकी परिवर्तनशीलता और नवीन परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालने की क्षमता है।

द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति की इस निरंतरता को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार संस्कृति स्थिर नहीं होती, बल्कि समय के साथ विकसित होती रहती है। इसी विकासशीलता के कारण भारतीय संस्कृति हजारों वर्षों बाद भी अपनी पहचान बनाए हुए है।

समन्वय की भावना :

भारतीय संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण गुण उसकी समन्वयवादी प्रवृत्ति है। इसमें विभिन्न जातियों, धर्मों और संस्कृतियों के तत्वों को आत्मसात करने की क्षमता रही है। द्विवेदी जी के अनुसार भारतीय संस्कृति का निर्माण केवल किसी एक समुदाय द्वारा नहीं हुआ, बल्कि अनेक सांस्कृतिक धाराओं के सम्मिलित योगदान से हुआ है।

उन्होंने आर्य और आर्येतर दोनों परंपराओं को भारतीय संस्कृति के विकास में समान रूप से महत्वपूर्ण माना। यही समन्वयवादी दृष्टि उनके साहित्य की मूल विशेषता है।

सहिष्णुता और उदारता :

भारतीय संस्कृति में विभिन्न विचारों और मतों के प्रति सम्मान की भावना रही है। द्विवेदी जी इस सहिष्णुता को भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण शक्ति मानते हैं। उनके साहित्य में धार्मिक और सामाजिक विविधताओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास दिखाई देता है।

सर्वभूतहित की भावना :

भारतीय संस्कृति केवल व्यक्तिगत विकास की बात नहीं करती, बल्कि समस्त प्राणियों के कल्याण की भावना रखती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श इसी व्यापक दृष्टि का प्रतीक है।

द्विवेदी जी के साहित्य में भी लोकमंगल और मानव कल्याण की भावना प्रमुख है। वे संस्कृति को मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाली शक्ति मानते हैं।

आध्यात्मिकता :

भारतीय संस्कृति का आधार आध्यात्मिक चिंतन भी रहा है। धर्म, दर्शन, साहित्य और कला के विकास में आध्यात्मिक चेतना की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। द्विवेदी जी भारतीय आध्यात्मिक परंपरा को मानव जीवन के नैतिक और सांस्कृतिक विकास से जोड़ते हैं।

सार्वभौमिकता :

भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता उसकी सार्वभौमिक दृष्टि है। इसमें केवल अपने समाज के कल्याण की नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व के कल्याण की भावना निहित है। द्विवेदी जी इसी व्यापक दृष्टिकोण के समर्थक थे। उनके साहित्य में विश्वबंधुत्व और मानव एकता की भावना दिखाई देती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का स्वरूप अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। उन्होंने भारतीय संस्कृति की परंपराओं को आधुनिक मानवीय दृष्टि से समझते हुए उसके उदार, समन्वयवादी और

विकासशील स्वरूप को प्रस्तुत किया। उनका साहित्य भारतीय सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक मूल्यों का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

निष्कर्ष :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य केवल अपने समय की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण नहीं करता, बल्कि वर्तमान युग की अनेक समस्याओं के समाधान के लिए भी मार्गदर्शन प्रदान करता है। आज जब वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और तीव्र सामाजिक परिवर्तन के कारण सांस्कृतिक पहचान, मानवीय संबंधों और सामाजिक मूल्यों पर नए प्रश्न उपस्थित हो रहे हैं, तब द्विवेदी जी की सांस्कृतिक दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। वे भारतीय संस्कृति को किसी एक धर्म, जाति या वर्ग तक सीमित नहीं मानते, बल्कि उसे विभिन्न परंपराओं और विचारधाराओं के सम्मिलित विकास का परिणाम मानते हैं। उनकी यह दृष्टि आज के बहुसांस्कृतिक समाज के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। द्विवेदी जी ने संस्कृति को स्थिर और जड़ व्यवस्था न मानकर निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा। वर्तमान युग में जब परंपरा और आधुनिकता के बीच संघर्ष दिखाई देता है, तब उनका विचार महत्वपूर्ण हो जाता है। वे मानते हैं कि समाज को अपनी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखते हुए नवीन विचारों और परिवर्तनों को स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार उनका चिंतन अतीत और वर्तमान के बीच संतुलन स्थापित करने की प्रेरणा देता है। अतः कहा जा सकता है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का स्वरूप व्यापक, गतिशील और मानव-केंद्रित है।

संदर्भ सूची :

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, अशोक के फूल।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कुटज।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, बाणभट्ट की आत्मकथा।
4. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, पुनर्नवा।
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, चारुचंद्रलेख।
6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, अनामदास का पोथा।
7. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय।
8. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय संस्कृति के आधार।
9. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय दर्शन एवं संस्कृति संबंधी लेख।
10. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, भारतीय संस्कृति पर अध्ययन।
11. वर्मा, रामचंद्र, मानक हिंदी कोश।
12. गुलाब राय, बाबू, भारतीय संस्कृति संबंधी निबंध।

हिंदी कहानियों का सिनेमा में रूपांतरण : एक यात्रा

डॉ. विश्वनाथ चंद्रकांत पटेकर

हिंदी विभागाध्यक्ष

महात्मा फुले कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, पनवेल.

व्यक्ति को समाज में कथा कहने और सुनने की परंपरा बहुत पुरानी है। किस्सा, कहानी, आँखों देखी, आपबीती आदि को मनुष्य भाषा के उदय काल से परस्पर एक दूसरे को सुनाता रहा है। धार्मिक कथाएँ, काल्पनिक कथाएँ, विभिन्न समाजों में विकसित ऐतिहासिक एवं दन्तकथाओं की सुदीर्घ परंपरा विश्व में रही है। कहानी पहले मौखिक माध्यम से ही प्रसारित होती थी। कहानी श्रोता को प्रभावित करती है। यह प्रभाव कथा की प्रस्तुति पर आधारित होता है। प्रस्तुति जितनी प्रभावशाली, आकर्षक और रोचक होगी प्रभाव उतना ही तीव्र होता है। इस दृष्टि से रंगमंच और नाटक विधा दृश्य और श्रव्य माध्यम का प्रथम प्रारूप है, जिसके द्वारा पौराणिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक कथाएँ प्रचलित हुईं। इसके बाद का युग सिनेमा नामक एक तकनीकी माध्यम का युग आया जिसने आधुनिक युग में किस्सागोई के स्वरूप को आमूलचूल बदलकर जनमानस को तीव्र रूप में उद्वेलित किया। भारत में सिनेमा के आगमन से पूर्व से ही शृंखलाबद्ध चित्रों के माध्यम से कथाएँ कहने का चलन रहा है।

हिन्दी कहानियों पर आधारित हिन्दी फिल्म यह सिनेमा और साहित्य के संबंधों को विकसित एवं स्वयं पूर्ण बनाती है। कहानी जैसी विधा को एक विशेष समय, घटना या विविध छोटे-छोटे प्रसंगों को इस माध्यम से प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य है। कहानी में निर्देशक विभिन्न प्रसंगों को लेते हुए समय को बांधता है, सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं, उत्कंठाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। "आज हिंदी कहानियों पर आधारित अनेक फिल्में हैं जिन्हें राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा एवं पुरस्कृत किया गया है।"¹

ऐसा कहाँ जाता है कि "साहित्य और सिनेमा यह अभिव्यक्ति के दो माध्यम हैं और प्रभाव की दृष्टि से कौन ज्यादा ताकतवर है यह कह पाना थोड़ा मुश्किल है। साहित्य अभिव्यक्ति का आदिम माध्यम है, जबकि सिनेमा तकनीक आधारित बिल्कुल नया। साहित्य को सिनेमा की जरूरत है क्योंकि हर कथाकार यह चाहता है कि उसकी कहानी पर फिल्म बने, उसकी बात जन जन तक पहुँचे। लेकिन सिनेमा को साहित्य की जरूरत है या नहीं, कहना मुश्किल है। दोनों ही भिन्न और अपनी-अपनी तरह के बेजोड़ कला-माध्यम हैं। दोनों की प्रकृति, रचना विधान और इसलिए दोनों के असर और समाज निर्माण की फितरतें भी अलग-अलग हैं। तभी तो आज तक कोई भी साहित्य को पढ़कर डाकू या बलात्कारी नहीं बना, जबकि सिनेमा से यह भी हो सका है। कहने की आवश्यकता नहीं साहित्य का उद्देश्य व्यवसाय नहीं है, लेकिन सिनेमा काम बिना व्यवसाय के चल नहीं

सकता। यह भी सत्य है कि दोनों ही एक दूसरे से रस खींचने का प्रयास करते रहे हैं।²

एक कहानी 'मिल' जोकि मजदूरों की व्यथा पर आधारित थी। फिल्मों ने बोलना अभी शुरू ही किया था। प्रेमचंद की कहानी पर मोहन भावनानी के निर्देशन में फिल्म 'मिल मजदूर' बनी। निर्देशक ने मूल कहानी में बदलाव किए जो प्रेमचंद को पसंद नहीं थे। फिर अंग्रेजों के सेंसर ने फिल्म में काफी काँट-छाँट कर दी। इसके बाद फिल्म का, जो रूप सामने आया उसे देख प्रेमचंद को काफी धक्का लगा। उन्होंने कहा यह प्रेमचंद की हत्या है। प्रेमचंद की यह कहानी फिल्म के निर्देशक और मालिक की कहानी है। इस फिल्म पर मुंबई में प्रतिबंध लग गया और पंजाब में यह 'गरीब मजदूर' के नाम से प्रदर्शित हुई।³

मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर 'द चेस प्लेयर्स' नाम से सत्य जीत रे ने फिल्म बनाई थी। यह कहानी 1957 के ब्रिटिश भारत की पृष्ठभूमि पर है। फिल्म में मुख्य किरदारों में संजीव कुमार और शबाना आजमी थे। राय ने मूल कहानी के कथ्य को सुरक्षित रखते हुए कहानी के शब्दों में झलकने वाले समय और स्थान विशेष को वैसा ही पर्दे पर उतार दिया है। "कहानी मूल कलेवर में छोटी है और उसमें परोक्ष रूप से ही ऐतिहासिकता के दर्शन होते हैं। कहानी में नबाबों की अय्याशी और उसके सामयिक परिवेश को प्रेमचंद ने प्रमुखता से उभारा है।"⁴

प्रेमचंद के ही कहानी 'सद्गति' के नाम से ही सत्यजीत रे ने 1981 में फिल्म बनाई थी। इसमें ओमपुरी और स्मिता पाटिल ने मुख्य भूमिका निभाई थी। यह फिल्म भारतीय जाति-व्यवस्था पर गहरा प्रहार करती है। कृष्ण चौपड़ा ने 'दो बैलों की कथा' पर 'हीरा मोती' नाम से फिल्म बनाई। 1979 में सत्येन बोस के निर्देशन में बनी 'सांच को आंच नहीं' का मूल आधार भी प्रेमचंद की कहानी 'पंच परमेश्वर' से था।

मौनी भट्टाचार्य ने पं. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' पर इसी नाम से फिल्म का निर्माण किया। इसमें सुनील दत्त और नंदा मुख्य भूमिका में थे। "फिल्म 'तीसरी कसम' राजकपूर और वहीदा रहमान की ये फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर आधारित है। इसे शैलेंद्र ने प्रोड्यूस किया और बासु भट्टाचार्य ने निर्देशित। जिसकी पटकथा और संवाद खुद रेणु ने लिखे। मित्रता के नाते राज कपूर व वहीदा रहमान जैसे सितारों ने फिल्म में काम किया।"⁵

निर्मल वर्मा की कहानी 'माया दर्पण' पर प्रसिद्ध फिल्म निर्माता और निर्देशक कुमार शाहनी ने इसी नाम से फिल्म बनाई। एच.के.वर्मा ने अमृता प्रीतम की कहानी 'कादम्बरी' पर इसी नाम से फिल्म बनाई। "निर्देशक मणिकौल ने हिंदी हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार मोहन राकेश की कहानी 'उसकी रोटी' पर इसी नाम से फिल्म बनाई।"⁶

हिन्दी सिनेमा में जब हम गुलजार साहब की बात करते हैं तो पता चलता है कि वे सबसे भिन्न निर्देशक थे। वे स्वतंत्र साहित्यकार थे और कथा वाचन की बारीकियों को बखूबी जानते थे। "गुलजार मानवीय रिश्तों के कथाकार रहे हैं, पर स्त्री-पुरुष के प्रेम संबंधों की विविधता, जटिलता को उन्होंने जिस खूबसूरती के साथ अपनी फिल्मों में बयान किया है वह हिन्दी फिल्मों की एक बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने कमलेश्वर की दो कहानियों पर—'काली आँधी' पर 'आँधी' और 'आगामी अतीत' पर 'मौसम' बनाई और दोनों ही फिल्में मील का पत्थर साबित हुई। 'आँधी' में आरती देवी और जे.के. दोनों से अलग उन दोनों के बीच के रिश्ते फिल्म में अपनी खामोश उपस्थिति से दशकों का मन छू लेती है।"⁷

कमलेश्वर की 'तलाश' कहानी को लेकर ही निर्माता निर्देशक शिवेंद्र सिन्हा ने 'फिर भी' नामक फिल्म का

निर्माण किया। मूल रूप में तलाश कमलेश्वर की एक बहुत छोटी सी कहानी है जिसमें पात्रों के आपसी संवाद के द्वारा लेखक ने स्थान, परिस्थितियों, घटनाओं और समय को अधिक महत्व दिया है। मूल कहानी माँ और बेटी के आपसी अंतर्द्वन्द की कहानी है। बढ़ते समय के साथ-साथ जहाँ एक ओर “हिन्दी कथा-साहित्य में बदलाव आ रहा था वहीं हिन्दी भाषी फिल्मकारों की संख्या भी बढ़ रही थी। फिल्मकार बासु चटर्जी जो बांग्ला भाषी थे लेकिन उन्होंने हिन्दी साहित्य का गहरा अध्ययन किया था। उन्होंने मन्नू भंडारी की प्रसिद्ध कहानी ‘यही सच है’ पर आधारित एक बहुत खूबसूरत फिल्म ‘रजनीगंधा’ का निर्माण किया जो काफी लोकप्रिय साबित हुई। हिन्दी फिल्मों की इस नई धारा को समांतर सिनेमा भी कहा गया।”⁸

सामांतर फिल्मों के आरंभिक दौर के फिल्म निर्देशकों में सत्यजित राय, ऋत्विक् घटक, बिमलराय, मृणाल सेन, तपन सिन्हा, ख्वाजा अहमद अब्बास, चेतन आनंद, गुरु दत्त, वी. शांताराम आदि थे। “इसे निस्संदेह भारतीय सिनेमा का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस दौर में फिल्मों ने प्रायः उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया, जिसके चलते साहित्य की तरह फिल्मों ने भी समाज का यथार्थ पेश कर अपना राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व निभाया।”⁹

इसी दौर के “हिन्दी साहित्य को सबसे ज्यादा महत्व और निष्ठाभरी समझ फिल्मकार कुमार शाहनी ने निर्मल वर्मा की कहानी ‘माया दर्पण’ पर इसी नाम से फिल्म बनाई। इसके इलावा दामुल, परिणिति, पतंग, कोख जैसी फिल्में भी साहित्यिक रचनाओं पर बनी।”¹⁰

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बहुत-सी कहानी साहित्य पर जो-जो फिल्में बनी हैं वे सुपर हिट तो बनी हैं लेकिन उसी के साथ-साथ साहित्य को भी गहरे रिश्ते में दर्शा रही हैं। अगर कहें तो जब, साहित्यिक फिल्में बनती हैं जो बराबर फिल्मकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती रही हैं। इस तरह कहानी साहित्य की फिल्म यात्रा काफी बृहत दिखाई देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. हरीश कुमार-सिनेमा और साहित्य, संजय प्रकाशन, 1998, पृ. 84
2. गोपेश्वर सिंह-साहित्य का अनुवाद नहीं है सिनेमा, जनसत्ता, 21 मई, 2017, पृ. 7
3. हरीश कुमार-सिनेमा और साहित्य, संजय प्रकाशन, 1998, पृ. 116
4. श्रीशचंद्रमिश्र-हिन्दी साहित्य का फिल्मों से जुड़ा नहीं गहरा नाता, जनसत्ता, 9 जून, 2017, पृ. 14
5. हरीश कुमार-सिनेमा और साहित्य, संजय प्रकाशन, 1998, पृ. 88
6. अशोक भौमिक- सत्तर का सिनेमा और गुलजार, जनसत्ता, 29 मई, 2016, पृ. 7
7. साकेत सहाय - साहित्य, सिनेमा और समाज, जनसत्ता 11 दिसंबर, 2016, पृ. 4
8. अशोक भौमिक - सत्तर का सिनेमा और गुलजार, जनसत्ता, 29 मई, 2016, पृ. 7
9. साकेत सहाय - साहित्य, सिनेमा और समाज, जनसत्ता, 11 दिसंबर, 2016, पृ. 4

ईमेल - vishwanathpatekar87@gmail.com

संपर्क नं. - 9011933917

महिलाओं की बदलती सामाजिक स्थिति में भारतीय संविधान प्रदत्त अधिकारों की भूमिका : एक अध्ययन

प्रा. प्रफुल इ. ढोके

मातोश्री अंजनाबाई मुन्दाफले समाजकार्य महाविद्यालय, नरखेड
जिल्हा – नागपूर. राज्य – महाराष्ट्र.

सारांश –

26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान को अपनाए जाने के बाद से, शासन के तीन स्तंभों 'विधायिका, न्यायपालिका और नौकरशाही' ने संविधान निर्माताओं द्वारा परिकल्पित सिद्धांतों को लागू करने का काम किया है। इसने समाज के वंचित वर्गों को ऊपर उठाने और महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली असमानताओं को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस प्रकार, भारतीय संविधान में निहित भारतीय महिलाओं के अधिकारों को साकार किया गया है। संविधान से मिली शक्तियों के कारण भारतीय महिलाओं की स्थिति में आए बदलावों का अध्ययन करने के लिए, किताबें, वेबसाइट, समाचार पत्रों और पत्रिकाओं जैसे स्रोतों से डेटा इकट्ठा किया गया है। निष्कर्ष निकालने के लिए इकट्ठा किए गए डेटा का विश्लेषण किया गयाय यह अध्ययन व्यवहार-संबंधी प्रकृति का है। इस अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त होते ही कि, भारतीय संविधान से मिले मौलिक अधिकार लिंग-आधारित असमानता को खत्म करने और पुरुषों व महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिलाने में मदद कर रहे हैं। महिलाओं का सामाजिक स्तर बेहतर हुआ है। सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक- सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है।

कुंजी शब्द – भारतीय संविधान-महिला, अधिकार, भूमिका, कानून, सामाजिक स्थिति.

परिचय –

भारत के संविधान को दुनिया का सबसे बड़ा संविधान माना जाता है। संविधान की प्रारूप समिति ने भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं – जैसे जाति, धर्म, भाषा, संप्रदाय, आर्थिक स्थिति और लिंग – को ध्यान में रखते हुए इस संविधान का मसौदा तैयार किया। नतीजतन, संविधान का मसौदा तैयार करने में लगभग दो साल का समय लगा। संविधान निर्माताओं ने दुनिया भर के विभिन्न संविधानों का गहन अध्ययन किया। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ने इस प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाई। उनकी समर्पित कोशिशों की बदौलत ही हमें, यानी भारत के लोगों को, एक बेहतरीन संविधान मिला है। लिंग-आधारित असमानता न केवल भारतीय समाज में, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी मौजूद थी। संविधान निर्माताओं ने इस असमानता को खत्म करने और अधिकारों के मामले में पुरुषों और महिलाओं को समान स्तर पर लाने का काम किया। महिलाओं को संविधान

के माध्यम से अपने अधिकार मिले। यह शोध-पत्र इसी पहलू पर प्रकाश डालता है।

अध्ययन के उद्देश्य :-

इस शोध कार्य के उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

- 1) भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए दिए गए अधिकारों का अध्ययन करना।
- 2) संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों के कारण महिलाओं के जीवन में आए बदलावों की जांच करना।

पद्धति शास्त्र :-

इस रिसर्च के लिए, इंटरनेट, किताबें, अखबार और मैगजीन जैसे स्रोतों का इस्तेमाल करके सेकेंडरी डेटा इकट्ठा किया गया है।

विषय विश्लेषण -

आजकल जेंडर इक्वालिटी (स्त्री-पुरुष समानता) की बात हो रही है, लेकिन पहले ऐसा नहीं था। पितृसत्तात्मक संस्कृति का बोलबाला था। महिलाओं को बुनियादी अधिकारों से वंचित रखा जाता था और समाज में उन्हें दोगुना दर्जे का माना जाता था। परिवार के भीतर उनकी स्थिति गौण (कम महत्वपूर्ण) थी और अक्सर उनके साथ बुरा बर्ताव किया जाता था। शिक्षा के प्रति बहुत कम रुझान था और वे आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर थीं। उनसे उम्मीद की जाती थी कि वे अपने पतियों के काम में मदद करें और उनके पास आर्थिक आजादी नहीं थी। महिलाएँ घरेलू हिंसा का शिकार होती थीं और उन्हें अपने फैसले खुद लेने का बहुत कम अधिकार था। महिलाओं के सामने आने वाली कई समस्याएँ सिर्फ इसलिए थीं क्योंकि वे महिलाएँ थीं। उन्हें अपने अधिकारों के बारे में जानकारी नहीं थी और उन्हें काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता था। हालाँकि, वैश्विक नारीवादी आंदोलनों और समाज सुधारकों की कोशिशों के कारण महिलाओं की स्थिति में बदलाव आया। इस दिशा में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग और महिलाओं की स्थिति पर बने आयोग ने भी अहम भूमिका निभाई।

भारत की आजादी से पहले महिलाओं की हालत बहुत खराब थी। भारतीय संविधान बना। इसमें महिलाओं को पुरुषों की तरह सभी मूलभूत अधिकार दिए गए। राज्य के संविधान के जरिए जेंडर असमानता के अंतर को कम करने की पूरी कोशिश की गई। इसी संविधान के आधार पर महिलाओं की सुरक्षा के लिए कई कानून बनाए गए। साथ ही, महिलाओं के विकास के लिए कई योजनाएं भी शुरू की गईं। खास बात यह है कि भारत का राज्य संविधान बनाते समय संविधान सभा में 15 महिलाएं सदस्य थीं। इसे एक अहम बदलाव कहा जा सकता है। आज संसद में यह संख्या बढ़ी हुई दिख रही है।

अलग-अलग आर्टिकल की स्टडी से पता चलता है कि संविधान में महिलाओं को अधिकार दिए गए हैं। आर्टिकल 14 के मुताबिक, कानून के सामने सभी बराबर हैं और कानून पुरुषों और महिलाओं में कोई भेदभाव नहीं करेगा। इसमें कहा गया है कि कानून के सामने पुरुष और महिला दोनों बराबर हैं। पुरुष होने की वजह से कानून में कोई और छूट नहीं होगी और महिला होने की वजह से कानून में कोई भेदभाव नहीं होगा। कानून का बराबर बचाव मिलेगा, आर्टिकल 15 (1) के मुताबिक, राज्य जेंडर के आधार पर ऐसा कोई भेदभाव नहीं करेगा जो किसी भी नागरिक के लिए नुकसानदायक हो। इसलिए, इस सेक्शन के तहत जेंडर के आधार पर भेदभाव मना है।

सेक्शन 15 (2)(a) के मुताबिक, दुकानों, पब्लिक रेस्टोरेंट, होटलों और पब्लिक एंटरटेनमेंट की जगहों पर सिर्फ जेंडर के आधार पर एंट्री से मना नहीं किया जा सकता। यानी, महिलाओं को इस सेक्शन के तहत इन

जगहों पर आने-जाने का फंडामेंटल राइट संविधान ने दिया है।

सेक्शन 15 (2) (इ) के मुताबिक, ऐसे कुएं जो पूरी तरह या कुछ हद तक राज्य के खर्च पर मेंटेन किए जाते हैं या आम जनता के इस्तेमाल के लिए खास तौर पर बनाए गए हैं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों और सार्वजनिक जगहों के इस्तेमाल को लेकर लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता। साथ ही, यह भी तय किया गया है कि राज्य के पास ऐसी जगहों पर महिलाओं के लिए खास प्रावधान करने का पूरा अधिकार है।

अनुच्छेद 16(1) राज्य के अधीन किसी भी पद पर नियुक्ति या रोजगार के मामलों में सभी नागरिकों के लिए समान अवसर की गारंटी देता है। अनुच्छेद 16(2) यह पक्का करता है कि किसी भी नागरिक को केवल लिंग के आधार पर राज्य के अधीन किसी भी रोजगार या पद के लिए अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा और न ही उसके साथ भेदभाव किया जाएगा।

अनुच्छेद 19 भारत के सभी नागरिकों 'जिनमें महिलाएं भी शामिल हैं' को बोलने और अपनी बात रखने की आजादीय शांतिपूर्वक और बिना हथियारों के इकट्ठा होने, संगठन या यूनियन बनाने, पूरे भारत में कहीं भी आने-जाने, भारत के किसी भी हिस्से में रहने और बसने, और कोई भी पेशा, काम, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार देता है। इस तरह, संविधान महिलाओं को आजादी का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 24 खतरनाक जगहों पर महिलाओं के काम करने पर रोक लगाता है।

अनुच्छेद 23 कानून के तहत मानव तस्करी, गुलामी, देवदासी प्रथा और वेश्यावृत्ति पर रोक लगाता है। दूसरे शब्दों में, संविधान उन प्रथाओं पर रोक लगाता है जो महिलाओं के लिए नुकसानदेह हैं, और इस तरह उन्हें गुलामी से आजाद करता है। पुरुषों की तरह, महिलाओं को भी अन्याय होने पर संवैधानिक उपचार का अधिकार दिया गया है।

भारतीय संविधान नागरिकों के लिए कुछ मौलिक कर्तव्यों का भी उल्लेख करता है। यह नागरिकों से उन प्रथाओं को छोड़ने का आह्वान करता है जो महिलाओं की गरिमा को कम करती हैं।

संविधान राज्य की नीति के कुछ निर्देशक सिद्धांतों को भी निर्धारित करता है। संविधान निर्माताओं को उम्मीद थी कि शासन चलाते समय राज्य इन सिद्धांतों का पालन करेगा।

अनुच्छेद 36(ब) में यह प्रावधान है कि पुरुष और महिला नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधनों का समान अधिकार होना चाहिए। अनुच्छेद 36(क) राज्य को यह सुनिश्चित करने के लिए उचित प्रावधान करने का निर्देश देता है कि पुरुषों और महिलाओं दोनों को समान काम के लिए समान वेतन मिले।

भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं को दिए गए अधिकारों की रक्षा के लिए समय-समय पर विभिन्न सुरक्षात्मक कानून बनाए गए हैं। इनमें फैमिली कोर्ट्स एक्ट, स्पेशल मैरिज एक्ट, हिंदू मैरिज एक्ट, हिंदू सक्सेशन एक्ट, इमोरल ट्रैफिक (प्रिवेंशन) एक्ट, मैटरनिटी बेनिफिट एक्ट, मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेग्नेंसी एक्ट, कॉन्ट्रैक्ट लेबर एक्ट, इक्वल रेमुनेशन एक्ट, प्रोहिबिशन ऑफ चाइल्ड मैरिज एक्ट, क्रिमिनल लॉ (अमेंडमेंट) एक्ट, इंडीसेंट रिप्रेजेंटेशन ऑफ विमेन एक्ट, कमीशन ऑफ सती (प्रिवेंशन) एक्ट, प्रोटेक्शन ऑफ विमेन फ्रॉम डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट और सेक्सुअल हैरेसमेंट ऑफ विमेन एट वर्कप्लेस (प्रिवेंशन, प्रोहिबिशन एंड रिड्रेसल) एक्ट शामिल हैं। महिलाओं की सुरक्षा के लिए ऐसे कई कानून बनाए गए। भारत में, 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई। यह भारत सरकार द्वारा 1992 में भारतीय संविधान के प्रावधानों के अनुसार स्थापित एक वैधानिक

निकाय है। इसकी स्थापना राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 के तहत की गई थी। महिला आयोग के कार्यों में महिलाओं के लिए संवैधानिक और कानूनी सुरक्षा उपायों की समीक्षा करना, इस संबंध में विधायिका को सिफारिशें करना, महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी नीतिगत मामलों पर सरकार को सलाह देना, संविधान और अन्य कानूनों में महिलाओं के लिए उपलब्ध सुरक्षा उपायों की जांच करना, महिलाओं को जिन अधिकारों से वंचित रखा गया है उन्हें संबंधित अधिकारी के ध्यान में लाना, योजना प्रक्रिया में भाग लेना और सलाह देना, जेल में रिमांड पर रखी गई महिलाओं के स्थानों का समय-समय पर निरीक्षण करना और समाधान सुझाना, बलात्कार पीड़ितों की मदद और पुनर्वास करना, विभिन्न स्थानों पर महिलाओं के शोषण को रोकना आदि शामिल हैं।

भारत के संविधान ने महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। संविधान ने महिलाओं को पुरुषों की तरह वोट देने का अधिकार दिया। इसलिए, महिलाएं भी उपयुक्त प्रतिनिधियों को चुनने और खुद चुनाव लड़ने की पात्र बन गई हैं। उन्हें संविधान से इस तरह का भरोसा मिला। संविधान में संशोधन करके पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण दिया गया। इससे महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण में मदद मिली। संविधान के माध्यम से शक्ति प्राप्त करने के बाद, महिला अभिनेत्रियां, पायलट, खिलाड़ी, शिक्षा, रोजगार, राजनीति, प्रशासन, खेल, विज्ञान, व्यवसाय और अन्य क्षेत्रों अपनी सफलता साबित कर रही हैं और अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं।

निष्कर्ष -

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान ने महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक स्थिति में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संविधान द्वारा महिलाओं को समानता, स्वतंत्रता, समान अवसर, गरिमा, शिक्षा, रोजगार तथा राजनीतिक सहभागिता से संबंधित अधिकार प्रदान किए गए हैं। अनुच्छेद 14, 15, 16, 19, 23, 24 तथा नीति-निर्देशक तत्वों के माध्यम से महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव को समाप्त करने तथा उन्हें समान अवसर उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है। साथ ही, महिलाओं की सुरक्षा और अधिकारों के संरक्षण के लिए समय-समय पर अनेक कानूनों का निर्माण किया गया है।

संवैधानिक अधिकारों और कानूनी प्रावधानों के परिणामस्वरूप भारतीय महिलाओं की स्थिति में पहले की अपेक्षा उल्लेखनीय सुधार हुआ है। महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, राजनीति, प्रशासन, खेल, विज्ञान, व्यवसाय और अन्य क्षेत्रों में भागीदारी लगातार बढ़ी है। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण ने उनके राजनीतिक सशक्तिकरण को नई दिशा प्रदान की है। इससे महिलाओं में नेतृत्व क्षमता, निर्णय लेने की क्षमता तथा सामाजिक सहभागिता का विकास हुआ है।

इसके बावजूद, संवैधानिक अधिकार प्राप्त होना और उनका वास्तविक रूप से लाभ मिलना दो अलग-अलग बातें हैं। आज भी पितृसत्तात्मक सोच, लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, यौन उत्पीड़न, आर्थिक निर्भरता, शिक्षा में असमानता तथा महिलाओं के प्रति सामाजिक पूर्वाग्रह जैसी समस्याएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। ग्रामीण एवं वंचित वर्ग की महिलाओं के सामने इन समस्याओं की गंभीरता और अधिक दिखाई देती है। इसलिए केवल कानूनों का निर्माण पर्याप्त नहीं है, उनके प्रभावी क्रियान्वयन के साथ महिलाओं को उनके संवैधानिक एवं कानूनी अधिकारों के प्रति जागरूक करना भी आवश्यक है।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान महिलाओं के सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन

का एक महत्वपूर्ण आधार है। संविधान ने महिलाओं को समान नागरिक के रूप में अधिकार और गरिमा प्रदान करने की मजबूत नींव रखी है। वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि संवैधानिक प्रावधानों, कानूनों, सरकारी योजनाओं और सामाजिक जागरूकता को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए। इससे महिलाओं की भागीदारी और आत्मनिर्भरता को और बढ़ावा मिलेगा तथा एक अधिक समान, न्यायपूर्ण और लैंगिक भेदभाव से मुक्त समाज के निर्माण का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा।

संदर्भ सूची :

1. महिला कल्याण और विकास – प्रो. माधवी कवि, विद्या प्रकाशन, नागपुर।
2. भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति – सुधारानी श्रीवास्तव, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. भारत का संविधान।
4. <https://ijrrsonline.in/HTMLPaper.aspx?Journal>
5. https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_
6. <https://agriculture.vikaspedia.in/viewcontent/social-welfare/>
7. <https://www.journalofpoliticalscience.com/archives/2025.v7.i11.C.790>

मो.न. ६६७५३६८३४०



गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित
ISSN : 2321-0540



KANCHANLATA कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

Leveraging Education and Technology for Women's Socio-Economic Empowerment

Dr. Anamika Sahani

Assistant Professor, School of Education
Babu Banarasi Das University, Lucknow.

Abstract :

Women's empowerment is a fundamental prerequisite for achieving sustainable development, social justice, and inclusive economic growth. Over the past few decades, education and technology have emerged as two of the most influential drivers of women's empowerment across the world. Education equips women with knowledge, skills, confidence, and critical thinking abilities, enabling them to participate actively in social, economic, and political processes. Simultaneously, technological advancements, particularly in information and communication technology (ICT), digital learning, financial technology, and online entrepreneurship, have created unprecedented opportunities for women to access education, employment, healthcare, and financial services. Together, education and technology foster independence, reduce gender disparities, and promote equal opportunities.

Despite significant progress, women continue to face multiple barriers, including unequal access to quality education, digital exclusion, socio-cultural discrimination, inadequate technological infrastructure, and limited digital literacy. These challenges are particularly evident in rural and economically disadvantaged communities. Government initiatives such as the National Education Policy (2020), Digital India, Beti Bachao Beti Padhao, Skill India, and various women-centric entrepreneurship programmes have contributed significantly to improving educational access and digital inclusion for women.

This paper examines the transformative role of education and technology in women's empowerment by exploring their impact on economic independence, social participation, leadership, health awareness, political engagement, and entrepreneurship. It also highlights major challenges and proposes practical recommendations for strengthening women's empowerment through equitable educational opportunities and inclusive technological development. The study concludes that

sustainable women's empowerment can only be achieved through the integrated promotion of education and technology supported by effective policies, institutional collaboration, and community participation.

Keywords : Women's Empowerment, Education, Technology, Digital Literacy, Gender Equality, Digital Inclusion, Sustainable Development.

1. Introduction :

Women's empowerment has become one of the most significant global development priorities in the twenty-first century. It is widely recognized as a key determinant of social progress, economic prosperity, and sustainable development. Empowering women means enabling them to exercise their rights, make independent decisions, access equal opportunities, and participate fully in all aspects of life. International organizations such as the United Nations identify gender equality and women's empowerment as essential for achieving the Sustainable Development Goals (SDGs), particularly SDG 4 (Quality Education), SDG 5 (Gender Equality), and SDG 10 (Reduced Inequalities).

Education has traditionally been regarded as the most effective instrument for empowering women. It enhances literacy, develops professional competencies, promotes self-confidence, and encourages informed decision-making. Educated women contribute significantly to family welfare, children's education, healthcare, community development, and national economic growth. Numerous studies indicate that higher levels of female education are associated with lower poverty rates, improved health outcomes, delayed marriage, and greater labour force participation.

In recent years, technology has emerged as another powerful catalyst for women's empowerment. The rapid expansion of digital technologies, smartphones, internet connectivity, artificial intelligence, and online learning platforms has transformed access to information, education, employment, and entrepreneurship. Women can now acquire new skills through online courses, establish digital businesses, access financial services through mobile banking, and participate in remote work opportunities regardless of geographical barriers.

The integration of education and technology has created a transformative ecosystem that enhances women's capabilities and expands their opportunities. Digital education enables lifelong learning, while technological innovations facilitate economic participation, financial inclusion, healthcare awareness, and civic engagement. However, significant challenges such as the digital gender divide, inadequate infrastructure, limited digital literacy, and socio-cultural barriers continue to restrict women's full participation in the digital economy.

This paper explores the multidimensional role of education and technology in women's empowerment by examining their contributions, existing challenges, government initiatives, and future prospects for creating a more equitable and inclusive society.

2. Concept of Women's Empowerment :

Women's empowerment refers to the process of enhancing women's ability to make strategic life choices, exercise their rights, and participate equally in social, economic, political, and cultural spheres. It involves improving women's access to education, healthcare, employment, financial resources, technology, and decision-making opportunities while eliminating gender-based discrimination and inequality.

According to UN Women, women's empowerment is the process through which women gain equal opportunities, develop confidence and leadership, and actively contribute to sustainable development. Empowerment extends beyond economic independence; it encompasses freedom, dignity, self-esteem, legal rights, and equal participation in society.

Women's empowerment can be understood through the following dimensions :

- **Educational Empowerment :** Access to quality education and lifelong learning opportunities.
- **Economic Empowerment :** Equal employment opportunities, entrepreneurship, and financial independence.
- **Social Empowerment :** Freedom from discrimination, violence, and harmful social practices.
- **Political Empowerment :** Equal representation in governance and decision-making.
- **Technological Empowerment :** Access to digital technologies, digital literacy, and online resources.

Education and technology play a pivotal role in strengthening each of these dimensions by equipping women with knowledge, skills, confidence, and opportunities.

3. Role of Education in Women's Empowerment :

Education is universally acknowledged as the most powerful instrument for empowering women. It enhances knowledge, develops critical thinking, promotes confidence, and enables women to make informed decisions regarding their personal, professional, and social lives. An educated woman is more likely to participate in economic activities, ensure better healthcare for her family, support children's education, and contribute to community development.

3.1 Enhancing Knowledge and Awareness :

Education enables women to understand their legal rights, constitutional protections, health issues, financial management, and civic responsibilities. It increases awareness about gender equality, reproductive health, environmental sustainability, and social justice, enabling women to challenge discriminatory practices and advocate for their rights.

3.2 Economic Independence :

Education significantly improves women's employability by equipping them with professional knowledge and vocational skills. Higher educational attainment increases access to better-paying

jobs, entrepreneurship, and leadership positions. Financial independence strengthens women's bargaining power within households and society, reducing dependence on others and improving overall quality of life.

3.3 Improved Health and Well-being :

Educated women are more likely to adopt healthy lifestyles, seek timely medical care, and make informed decisions regarding maternal and child health. They possess greater awareness of nutrition, hygiene, immunisation, family planning, and preventive healthcare, leading to healthier families and communities.

3.4 Leadership and Decision-Making :

Education nurtures leadership qualities, communication skills, problem-solving abilities, and self-confidence. Educated women actively participate in local governance, educational institutions, civil society organisations, and political processes. Their participation strengthens democratic values and promotes inclusive decision-making.

3.5 Reduction of Gender Inequality :

Education challenges traditional gender stereotypes by encouraging equal participation of women in science, technology, engineering, business, and public administration. It contributes to reducing practices such as child marriage, gender-based violence, and workplace discrimination while promoting respect for women's rights and dignity.

Table 1. Major Contributions of Education to Women's Empowerment

S.N.	Dimension	Contribution
1.	Educational	Improves literacy, knowledge, and lifelong learning
2.	Economic	Enhances employability and financial independence
3.	Social	Promotes gender equality and social participation
4.	Political	Encourages leadership and democratic participation
5.	Health	Improves maternal health, nutrition, and family well-being
6.	Psychological	Builds self-confidence, self-esteem, and resilience

3.6 Education and Sustainable Development :

Women's education contributes significantly to sustainable development by reducing poverty, improving family income, promoting environmental awareness, and enhancing social cohesion. Educated women are more likely to invest in their children's education, creating a positive cycle of intergenerational development. Consequently, investing in girls' and women's education is recognised as one of the most effective strategies for achieving inclusive and sustainable national development.

4. Role of Technology in Women's Empowerment :

Technology has emerged as a transformative force in promoting women's empowerment by expanding access to education, employment, healthcare, financial services, and social participation. The rapid growth of digital technologies, including smartphones, internet connectivity, artificial intelligence (AI), online learning platforms, and financial technologies (FinTech), has enabled women to overcome geographical, social, and economic barriers. Technology not only enhances access to information but also creates opportunities for skill development, entrepreneurship, leadership, and lifelong learning.

4.1 Digital Education and Skill Development :

Digital technology has revolutionised education by making learning more flexible, accessible, and affordable. Online learning platforms, virtual classrooms, webinars, and Massive Open Online Courses (MOOCs) enable women to continue their education regardless of age, location, or family responsibilities. These platforms provide opportunities to acquire professional qualifications, digital competencies, language skills, and vocational training, thereby improving employability and career prospects.

4.2 Economic Empowerment through Digital Entrepreneurship :

Technology has opened new avenues for women entrepreneurs. E-commerce platforms, digital marketing, social media, and online marketplaces allow women to establish and manage businesses from their homes. Women engaged in handicrafts, agriculture, food processing, fashion, and other small-scale enterprises can now access national and international markets through digital platforms. Online payment systems and digital banking have further facilitated secure financial transactions and improved financial independence.

4.3 Financial Inclusion :

Financial technology has significantly enhanced women's access to banking and financial services. Mobile banking, digital wallets, internet banking, and Unified Payments Interface (UPI) services have enabled women to save money, receive government benefits, make digital payments, and manage personal finances efficiently. Financial inclusion strengthens economic security and promotes independent decision-making.

4.4 Access to Information and Awareness :

The internet provides women with instant access to educational resources, legal information, healthcare guidance, employment opportunities, government welfare schemes, and entrepreneurial support programmes. Digital platforms increase awareness regarding women's rights, health, nutrition, cyber safety, and financial literacy, enabling women to make informed decisions in their personal and professional lives.

4.5 Healthcare and Telemedicine :

Technology has improved women's healthcare through telemedicine, mobile health applications, online consultations, and digital health awareness campaigns. Women living in rural and remote areas can consult healthcare professionals, receive maternal healthcare guidance, access mental health services, and obtain reliable medical information without travelling long distances. These services contribute to improved health outcomes and enhanced quality of life.

4.6 Social and Political Participation :

Social media platforms have strengthened women's voices by providing spaces for communication, networking, advocacy, and leadership. Women actively participate in awareness campaigns, professional communities, educational forums, and social movements. Digital platforms also encourage civic engagement by increasing awareness of voting rights, public policies, and governance, thereby promoting greater political participation.

Table 2. Role of Technology in Women's Empowerment

S.N.	Area	Contribution of Technology
1.	Education	Online learning, digital classrooms, skill development
2.	Employment	Remote work, freelancing, digital careers
3.	Entrepreneurship	E-commerce, digital marketing, online businesses
4.	Finance	Digital banking, UPI, mobile payments, financial inclusion
5.	Healthcare	Telemedicine, health applications, awareness programmes
6.	Governance	Digital access to government services and welfare schemes

5. Synergistic Impact of Education and Technology :

Education and technology complement each other in accelerating women's empowerment. Education develops knowledge, critical thinking, and confidence, while technology provides practical tools and platforms to apply these competencies in real-life situations. Together, they create opportunities for inclusive development and lifelong learning.

Technology enhances educational access through digital classrooms, virtual laboratories, educational applications, and online certification programmes. Women who may have discontinued formal education due to social or economic reasons can continue learning through flexible digital platforms. Likewise, educated women are better equipped to utilise technology effectively for employment, entrepreneurship, research, innovation, and leadership.

The combined impact of education and technology is particularly significant in rural communities. Digital literacy programmes, community learning centres, and mobile-based educational initiatives enable women to access information, improve agricultural practices, manage finances, participate in self-help groups, and engage in entrepreneurial activities. These initiatives contribute to poverty reduction, social inclusion, and community development.

Furthermore, education and technology foster innovation by encouraging women to participate in Science, Technology, Engineering, and Mathematics (STEM) education. Increased representation of women in STEM fields contributes to scientific advancement, technological innovation, and economic growth while reducing gender disparities in high-skilled professions.

The integration of education and technology also promotes lifelong learning, enabling women to continuously upgrade their skills in response to changing labour market demands. As industries increasingly adopt digital technologies and artificial intelligence, continuous learning becomes essential for career advancement and economic resilience.

Overall, education and technology together strengthen women's confidence, expand opportunities, improve productivity, enhance leadership, and promote active participation in sustainable development.

6. Government Initiatives and Policies Supporting Women's Empowerment :

The Government of India has introduced several policies and programmes to enhance women's

empowerment through education, digital inclusion, skill development, and entrepreneurship. These initiatives aim to improve educational attainment, promote digital literacy, strengthen financial inclusion, and increase women's participation in the workforce.

6.1 National Education Policy (NEP) 2020 :

The National Education Policy (2020) recognises gender inclusion as a fundamental objective of educational reform. The policy emphasises equitable access to quality education, reduction of gender disparities, promotion of digital learning, vocational education, and lifelong learning opportunities. The establishment of the Gender Inclusion Fund is intended to support the education of girls and women, particularly those belonging to disadvantaged communities.

6.2 Beti Bachao, Beti Padhao (BBBP) :

Launched in 2015, the Beti Bachao, Beti Padhao initiative aims to improve the child sex ratio while promoting girls' education and empowerment. The programme has generated awareness regarding the importance of educating girls and discouraging gender discrimination and child marriage.

6.3 Digital India Mission :

The Digital India Mission seeks to transform India into a digitally empowered society by expanding internet connectivity, promoting digital literacy, and improving access to digital services. Women benefit through online education, e-governance services, digital financial transactions, telemedicine, and employment opportunities.

6.4 Skill India Mission :

The Skill India Mission provides vocational training and industry-relevant skills to enhance women's employability and entrepreneurship. Training programmes in information technology, healthcare, hospitality, retail, handicrafts, and digital services have enabled women to achieve greater economic independence.

6.5 Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY) :

The Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana has significantly improved women's financial inclusion by encouraging bank account ownership and facilitating direct benefit transfers. Access to formal banking services has strengthened women's economic security and financial decision-making.

Table 3. Major Government Initiatives for Women's Empowerment

S.N.	Initiative	Major Objective	Contribution to Women's Empowerment
1.	National Education Policy (2020)	Inclusive and equitable education	Promotes girls' education, digital learning, and lifelong learning
2.	Beti Bachao Beti Padhao	Girl child protection and education	Increases awareness and educational participation
3.	Digital India	Digital inclusion	Expands digital literacy and online services
4.	Skill India Mission	Skill development	Enhances employability and entrepreneurship
5.	PM Jan Dhan Yojana	Financial inclusion	Strengthens economic independence through banking access

7. Challenges to Women's Empowerment through Education and Technology

Despite significant progress, several barriers continue to hinder women's empowerment.

7.1 Gender Inequality :

Deep-rooted patriarchal norms, gender stereotypes, and discriminatory social practices continue to restrict women's educational and professional opportunities.

7.2 Digital Gender Divide :

Many women, particularly in rural and economically weaker sections, have limited access to smartphones, computers, reliable internet connectivity, and digital infrastructure.

7.3 Limited Digital Literacy :

A lack of digital skills prevents many women from effectively utilising online educational resources, digital banking, e-governance services, and employment opportunities.

7.4 Economic Constraints :

Poverty and financial limitations often force families to prioritise boys' education over girls', limiting educational attainment and access to technology.

7.5 Safety and Cybersecurity Concerns :

Cyber harassment, online fraud, identity theft, and privacy concerns discourage many women from actively participating in digital spaces.

7.6 Rural–Urban Disparities :

Urban women generally have greater access to educational institutions, internet facilities, digital devices, and employment opportunities than women living in rural and remote areas.

8. Recommendations :

To maximise the empowering potential of education and technology, the following measures are recommended :

- Ensure universal access to quality education for girls and women at all educational levels.
- Strengthen digital infrastructure and affordable internet connectivity in rural and underserved regions.
- Introduce comprehensive digital literacy programmes for women of all age groups.
- Promote women's participation in STEM (Science, Technology, Engineering, and Mathematics) education and careers.
- Encourage women-led entrepreneurship through financial assistance, mentoring, and digital business training.
- Enhance cybersecurity awareness and establish stronger mechanisms to protect women from online harassment.
- Increase collaboration among governments, educational institutions, industries, and civil society organisations to promote inclusive development.
- Develop gender-responsive educational policies that integrate technology into teaching and learning processes.

9. Conclusion :

Women's empowerment is indispensable for achieving inclusive growth, social justice, and sustainable development. Education and technology have emerged as two of the most powerful instruments for enabling women to realise their full potential. Education equips women with knowledge, confidence, leadership skills, and economic opportunities, while technology expands access to information, digital learning, financial services, healthcare, and entrepreneurship.

The integration of education and technology has transformed the lives of millions of women by reducing inequalities, enhancing employability, promoting innovation, and strengthening

participation in economic, social, and political life. However, persistent challenges such as gender discrimination, digital inequality, limited digital literacy, and socio-economic barriers continue to impede progress.

A coordinated approach involving governments, educational institutions, communities, and the private sector is essential to ensure equitable access to education and technology for all women. Investments in quality education, digital infrastructure, skill development, and gender-sensitive policies will not only empower women but also contribute significantly to national development and the achievement of the Sustainable Development Goals. Empowering women through education and technology is therefore not merely a developmental priority but a fundamental requirement for building an equitable, inclusive, and knowledge-based society.

References :

- Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.
- Government of India. (2015). Beti Bachao Beti Padhao: Guidelines. Ministry of Women and Child Development.
- Ministry of Electronics and Information Technology. (2023). Digital India Programme.
- Ministry of Skill Development and Entrepreneurship. (2023). Skill India Mission Report.
- United Nations. (2015). Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development.
- UNESCO. (2024). Global Education Monitoring Report.
- UN Women. (2023). Progress on the Sustainable Development Goals: The Gender Snapshot.
- World Bank. (2024). Women, Business and the Law 2024.
- International Telecommunication Union. (2023). Measuring Digital Development: Facts and Figures.
- NITI Aayog. (2023). National Multidimensional Poverty Index Report.

Libraries and Knowledge Management in Ancient South India : Characteristics and Historical Overview (8th to 17th Century)

Sudhakar Sakharam Kamble

Sundarrao More College, Poladpur, Dist. Raigad-40230

Abstract :

This study dives into how libraries functioned as hubs for knowledge management in South India, specifically from the 8th to the 17th centuries. It turns out, rulers from the Pallava, Chola, Vijayanagara, and Maratha dynasties were quite supportive of libraries in places like Chidambaram, Kanchipuram, Tanjore, Sringeri, and Nagai. These ancient libraries weren't just piles of books; they had a well-thought-out system for gathering, keeping, organizing, and sharing information. They even had specific ways to protect palm-leaf manuscripts, make copies, and categorize them by topic. Honestly, this research offers some really valuable insights for modern library science, drawing from these old traditions.

Keywords : Libraries, Knowledge Management, Palm-leaf Manuscripts, Preservation, Classification, Royal Support, Librarians, Temples and Monasteries, Copying and Cultural Centres

Introduction :

India has long been known as a place of learning, and South India, in particular, had a strong tradition of not just keeping knowledge safe but also spreading it around. The period between the 8th and 17th centuries was a really significant time for this, especially with powerful dynasties like the Pallavas, Cholas, Vijayanagaras, and Marathas in charge. These rulers, you see, actively encouraged the growth of libraries. Places like Chidambaram, Kanchipuram, Tanjore, Sringeri, and Nagai became major centers for this. Imagine, King Krishnadevaraya of Vijayanagara and the Chola kings actually gifted vast tracts of land to these libraries! They even set up dedicated funding to ensure everything ran smoothly. Librarians back then held a respected position, much like teachers do today. Books were primarily written on palm leaves and copper plates, and these libraries were crucial for their

preservation. These institutions were vital in disseminating knowledge across various fields, from the Vedas and Ayurveda to astrology and philosophy. Thanks to this royal backing, these libraries truly became effective centers for managing knowledge. It feels like modern library science could learn a lot from these ancient practices.

Importance of the Research :

It's fascinating to think that these libraries weren't just storage spaces for books; they were dynamic centers of learning. Inscriptions on copper plates and stone clearly show they were called things like 'Saraswati-Bhandar' or 'Pustaka-Bhandar,' essentially dedicating them to Saraswati, the goddess of knowledge. Their very existence and upkeep relied heavily on the patronage of kings, monasteries, and affluent individuals. The role of a librarian was often hereditary, and the fact that they received land grants and salaries speaks volumes about their esteemed status. Palm-leaf manuscripts were the main medium for recording knowledge. Since these were susceptible to damage from moisture and insects, making new copies was a regular practice, creating a robust system for knowledge preservation and dissemination. This paper offers a comprehensive look at South Indian libraries from the 8th to the 17th centuries. Many of these libraries were closely linked to temples and monasteries, like the Sringeri Matha. They weren't just for religious texts, though; they were vibrant centers for diverse subjects such as the Vedas, Smritis, Puranas, logic, and grammar. A prime example of their dedication to collecting and preserving palm-leaf manuscripts is the Saraswati Mahal Library in Tanjore. Librarians were more than just caretakers; they were scholars themselves. An inscription found in Nagai even highlights their high standing, showing they received land grants similar to other respected teachers. These libraries were remarkably inclusive, welcoming scholars of all castes and religions, and even providing free lodging and food for students who traveled from afar.

Objectives of the Research :

- **Historical Snapshot :** To really dig into the different types of libraries – those connected to temples, monasteries, and royal courts – and understand their specific roles.
- **Cultural Impact :** To show how these libraries acted as catalysts for creating knowledge, fostering education, and reviving cultural practices.
- **Management Secrets :** To uncover the actual methods and rules they followed for creating, preserving, organizing, and maintaining their collections.
- **Bridging the Past and Present :** To draw clear connections between ancient knowledge management strategies and the principles of modern library science and information technology.

Methodology of the Research :

To really get a handle on South Indian libraries from the 8th to the 17th centuries, we're taking

an interdisciplinary approach. This means we'll be looking at things like inscriptions (epigraphy), the study of manuscripts (manuscriptology), and historical-linguistic methods. Our main sources will include actual inscriptions, ancient law books (Dharmashastras), and existing libraries. We'll use evidence like the Nagai inscription and the Saraswati Mahal Library to understand how librarians were appointed, how land grants worked, and how books were preserved. The research will involve paleography (the study of old handwriting), textual criticism, and historical analysis to shed light on the different library types, the high status of librarians, the process of copying palm-leaf manuscripts, and how these libraries were managed through grants from rulers and religious institutions. Ultimately, this will demonstrate that these libraries were far more than just book repositories; they were well-organized, financially sound, and socially respected centers of knowledge management.

The characteristics of libraries and knowledge management in ancient South India are as follows :

Historical Overview (8th to 17th Century)

Thinking back to ancient South India, specifically between the 8th and 17th centuries, libraries weren't just dusty rooms full of books; they were vibrant hubs of knowledge, often tied to monasteries, temples, and the generosity of royalty. You know, ancient texts like the Paushkara Samhita, dating back before the 11th century, actually laid out rules for how to set up a proper library. There's a cool inscription from Nagai from 1058 AD that mentions six librarians being appointed to a big school called a Ghatikasthanam – and get this, they were even given land as a grant! The Saraswati Mahal Library in Tanjore, a place we still know today, got its start with the Nayak kings in the 16th century, and later the Maratha kings really expanded it. Mostly, these places held onto Sanskrit manuscripts, but they also collected works in Tamil, Telugu, and Marathi. These centers, connected to religious sites, really kept the tradition of learning alive. Royal backing meant libraries had the financial stability they needed. It's interesting how, during this time, they evolved from purely religious spaces to become real educational centers.

Social and Cultural Role :

Beyond just holding books, these libraries were considered the very dwelling of Saraswati, the goddess of knowledge itself. They were affectionately called 'Saraswati Bhandar,' and around them sprung up this rich cultural scene with scholars, poets, musicians, and artists. Govinda Dikshita in Tanjore was particularly known for fostering this during his time. These libraries, often linked to temples and royal courts, were where new ideas were presented and intellectual debates truly flourished. For anyone studying scriptures, they were absolutely essential. And get this, there was this ancient practice of offering free information services to everyone, no matter their background. Libraries were actively creating new knowledge and reviving culture, which, honestly, is how knowledge

really spreads. They also championed the arts, music, and drama, becoming a fundamental part of social and cultural life.

Management Methods (Creation, Preservation, Classification, and Maintenance of Books)

So, how did they manage all these books? Well, mostly they were palm-leaf and paper manuscripts. To keep them safe, they'd regularly make copies – essentially, rewriting them. Books were sorted by subject, by their type, and by language. In some Jain 'Jnana Bhandars,' they even had a numbering system based on the names of Tirthankaras! The librarian role was often passed down through families, and since they received land grants as payment, their status was pretty much on par with teachers and scholars. To protect these precious manuscripts from pesky insects and dampness, they were wrapped in cloth and tucked away in wooden boxes or wall niches. They even held festivals, like 'Ujmana,' to get the public involved and raise awareness. Special funds were set aside for upkeep, usually coming from kings, nobles, and religious groups. It's this organized approach that really allowed the knowledge tradition to keep going without a hitch.

Connection with Modern Knowledge Management :

It's pretty fascinating how much of what we do in modern knowledge management has roots in these ancient practices. The way they classified things is basically the bedrock of modern library science. You can see the beginnings of subject indexing and reference services right there. And that respect they gave to the 'Saraswati Bhandarika,' the librarian? That feeling of importance is still relevant today. The idea of a hereditary role and financial security for librarians back then is like an early version of our modern professional librarianship. The meticulous preservation and copying of ancient texts mirror our modern knowledge management cycles. Passing knowledge down through generations is still a huge deal, of course. The Saraswati Mahal Library in Tanjore, with its massive collection of around 49,000 manuscripts, is just incredible. And their online catalog today? It's like a living link to that ancient tradition in our digital world. Honestly, it feels like our modern information technology can really learn from those ancient management techniques. The concept of a professional librarian existed way back then, and both ancient and modern systems totally align on the core issues of preserving and sharing knowledge. Ancient libraries really do offer a lot of inspiration for how we manage knowledge today.

Findings & Suggestions :

Looking back, it's clear ancient South Indian libraries had this really solid system for collecting, safeguarding, and sharing knowledge. They had solid backing from kings, temples, and monasteries, which gave them the financial stability they needed. Those palm-leaf manuscripts were carefully looked after, with regular copying and protection from pests and moisture. Books were neatly organized by subject, language, and type, and librarians held a respected place in society. These weren't just

places to store books; they were active hubs for learning, culture, and lively discussions.

Modern libraries could really learn a thing or two from those ancient preservation and copying methods to better protect old manuscripts. We should keep up the tradition of respecting and financially supporting librarians. Digitizing ancient manuscripts is a must to ensure they survive for future generations. Libraries should aim to be those vibrant cultural and educational centers again, like they were in the past. And honestly, governments and private groups should step up with more funding and support, just like the kings did back then.

What this research really shows is that ancient South Indian libraries were far more than just book repositories. They were sophisticated centers that managed knowledge in a really planned way, with an effective system for gathering, protecting, copying, and distributing it. Librarians back then were highly esteemed, earning the same respect as teachers. Royal backing with land and financial support provided them with a stable life, highlighting the immense value placed on knowledge and its management during that era.

They had special ways to protect palm-leaf manuscripts, using regular copying, subject-based classification, and careful preservation techniques, which is why so many valuable texts have survived. These libraries were key centers for religious, educational, and social activities, and their close ties to temples, monasteries, and educational institutions meant people from all walks of life could benefit.

Conclusion :

This whole study offers some really useful insights for modern library science, drawing from ancient traditions. The way they managed collections, protected manuscripts, and the professionalism of librarians are still incredibly relevant and worth emulating today.

References :

1. Saraswathi Mahal Library. In Wikipedia. Retrieved July 30, 2026, from <https://en.m.wikipedia.org/wiki/SaraswatiMahalLibrary>
2. Encyclopaedia Britannica.
3. Sastri, N. K. (1955). History of South India
4. Nair, R. R. (1991). Public library systems in ancient South India. *ILA Bulletin*, 69–72.
5. Rajadurai, S. (2021). Inscription terms and contrasting picture in the history of Cholas. *International Journal of Early Childhood Special Education*,
6. Colas, G. (2023). Palm-leaf manuscripts in libraries. In *Manuscripts and Libraries in South India* (pp. 136–140). De Gruyter. <https://doi.org/10.1515/9783110779653-00>

srksudha19@gmail.com

पुनरावृत्त पठन तकनीक और अंग्रेजी मौखिक पठन प्रवाहिता : एक क्रियात्मक विश्लेषण

Pratibha Raman

Research Scholar Batch 2026 (Education)

Vardhman Mahaveer Open University, Kota, Rajasthan.

सार :

अंग्रेजी मौखिक पठन में सहजता तब विकसित होती है जब विद्यार्थी शब्दों को पहचानने के साथ उनका स्पष्ट उच्चारण करें, उचित स्थान पर विराम लें और पूरे वाक्य को स्वाभाविक लय में पढ़ सकें। शब्दों पर रुकना, बार-बार उच्चारण सुधारना और पढ़ते समय वाक्य की लय टूटना प्रवाहपूर्ण पठन में प्रमुख बाधाएँ बनती हैं। पुनरावृत्त पठन तकनीक नियमित अभ्यास के माध्यम से इन कठिनाइयों को कम करने की व्यावहारिक दिशा देती है। इसमें चयनित पाठ का शिक्षक के मार्गदर्शन में बार-बार मौखिक पठन कराया जाता है। शिक्षक सही उच्चारण और पठन शैली प्रस्तुत करता है तथा पढ़ते समय आने वाली त्रुटियों पर तत्काल प्रतिक्रिया देता है। लगातार अभ्यास से शब्द-पहचान अधिक सहज होती है, अनावश्यक रुकावट घटती है और विद्यार्थी वाक्यों को बेहतर लय तथा स्पष्टता के साथ पढ़ने लगते हैं। पठन की गति के साथ शुद्धता, उच्चारण, वाक्यांशबद्धता और भावपूर्ण प्रस्तुति में आने वाला सुधार मौखिक प्रवाहिता को मजबूत आधार देता है। कक्षा में स्तरानुकूल पाठ, नियमित पुनर्पठन, शिक्षक की सक्रिय प्रतिक्रिया और प्रगति के सतत आकलन को साथ रखकर अंग्रेजी पठन को अधिक सहज, स्पष्ट और आत्मविश्वासपूर्ण बनाया जा सकता है। इस प्रकार पुनरावृत्त पठन अंग्रेजी सीखने वाले विद्यार्थियों के लिए मौखिक पठन कौशल को क्रमिक रूप से विकसित करने की सरल और उपयोगी शिक्षण प्रक्रिया बनती है।

मुख्य शब्द : पुनरावृत्त पठन, अंग्रेजी मौखिक पठन, पठन प्रवाहिता, शुद्धता, उच्चारण, पठन कौशल।

1. पठन की वास्तविक कठिनाई :

प्राथमिक और मध्य कक्षाओं में कई विद्यार्थी अंग्रेजी शब्द पहचान लेते हैं, फिर भी जुड़ा हुआ पाठ रुक-रुककर पढ़ते हैं। हर शब्द पर अलग श्रम लगने से वाक्य का अर्थ टूट जाता है। स्वचालितता सिद्धांत के अनुसार शब्द-पहचान जब कम मानसिक प्रयास में होने लगती है, तब ध्यान अर्थ, संबंध और भाव पर टिकता है।¹ इसी आधार पर सैमुअल्स ने पुनरावृत्त पठन को ऐसी शिक्षण विधि के रूप में रखा जिसमें विद्यार्थी एक ही पाठ को निर्धारित स्तर तक बार-बार पढ़ता है।²

मौखिक पठन प्रवाहिता के 3 जुड़े पक्ष हैं— शुद्धता, गति और भावपूर्ण प्रस्तुति। केवल गति बढ़ाना पर्याप्त नहीं है। गलत शब्द, अनुचित विराम और सपाट स्वर अर्थ को बिगाड़ सकते हैं। सही शब्द प्रति मिनट विद्यार्थी की जुड़े हुए पाठ को पढ़ने की दक्षता का उपयोगी संकेतक है और व्यापक पठन-क्षमता से इसका निकट संबंध पाया गया है।⁶ प्रवाहिता शब्द-पहचान और बोध के बीच सेतु का कार्य करती है।¹⁰

2. पुनरावृत्त पठन का शैक्षिक आधार :

एक पाठ का नियोजित पुनर्पठन विद्यार्थी को कठिन शब्दों से परिचित करता है, वाक्यांशों की पहचान मजबूत करता है और हिचक कम करता है। रैशोट और टॉर्गेसन ने समान तथा साझा शब्दों वाले नए पाठों तक अभ्यास के लाभ का परीक्षण किया।³ डाउहावर के कक्षा 2 के पाठकों में गति, शुद्धता, वाक्यांशबद्धता और बोध में सुधार दर्ज हुआ।⁴ रासिंस्की के परीक्षण में पुनर्पठन तथा सुनते हुए पढ़ने, दोनों से गति और शब्द-पहचान बढ़ी।⁵

प्रभावी प्रक्रिया में विद्यार्थी को अकेला छोड़कर बार-बार पढ़ने के लिए कहना पर्याप्त नहीं होता। शिक्षक का धाराप्रवाह प्रतिमान, लक्ष्य, त्रुटि पर तुरंत संकेत, पुनः उच्चारण और प्रगति का अभिलेख साथ चलना चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं तथा पठन-कठिनाई वाले विद्यार्थियों पर किए गए संश्लेषणों में प्रतिमान और बारंबार अभ्यास को मुख्य घटक माना गया।⁷ प्रवाहिता संबंधी विकासात्मक समीक्षा ने भी निर्देशित मौखिक अभ्यास को उपयोगी पाया।⁸ पुनरावृत्त पठन के मेटा-विश्लेषण में अभ्यास किए गए पाठ पर बड़ा और नए पाठ पर अपेक्षाकृत छोटा लाभ मिला, इसलिए स्थानांतरण की अलग जाँच आवश्यक है।⁹

3. उद्देश्य :

इस क्रियात्मक विश्लेषण के उद्देश्य पुनरावृत्त पठन के दौरान अंग्रेजी मौखिक पठन गति और शुद्धता में हुए परिवर्तन की गणना करना, कक्षा-प्रक्रिया के प्रभावी घटकों को स्पष्ट करना तथा बहुभाषी भारतीय विद्यालयों के लिए मापन-आधारित कार्यविधि तैयार करना हैं।

4. ऑकड़े और विश्लेषण-विधि :

आधार अध्ययन टिनोक केंद्रीय विद्यालय, टिनोक, इफुगाओ, फिलीपींस में कक्षा 4 के 21 विद्यार्थियों पर किया गया। समूह में 10 बालक और 11 बालिकाएँ थीं तथा आयु 9 से 11 वर्ष थी। हस्तक्षेप 6 सप्ताह चला। मध्य मापन 3 सप्ताह बाद और अंतिम मापन अगले 3 सप्ताह बाद किया गया। कम प्रवाहिता वाले विद्यार्थियों को व्यक्तिगत सहायता तथा अन्य जोखिम-समूहों को समूह सहायता मिली। प्रत्येक सत्र लगभग 20 से 30 मिनट चला।¹⁸

सही शब्द प्रति मिनट की गणना इस प्रकार की गई —

सही शब्द प्रति मिनट = 1 मिनट में पढ़े गए कुल शब्द - उच्चारण, छूट और जोड़ संबंधी त्रुटियाँ
 शुद्धता = सही पढ़े गए शब्द ÷ कुल पढ़े गए शब्द × 100

प्रकाशित व्यक्तिगत अंकों से तीनों चरणों का औसत पुनः निकाला गया। शुद्धता के औसत मूल सारणी से लिए गए।

मापन चरण	औसत सही शब्द प्रति मिनट	औसत शुद्धता
आरंभिक	70.10	86.72%
मध्य	84.10	90.65%

अंतिम	104.52	94.85%
कुल परिवर्तन	34.43	8.13 प्रतिशत—बिंदु

आरंभ से अंत तक सही पठन गति 49.12% बढ़ी। 21 में से 20 विद्यार्थियों के अंतिम सही—शब्द अंक आरंभिक अंक से ऊपर रहे। शुद्धता के तीनों औसतों के बीच प्रसरण—परीक्षण का मान 6.493 और आंशिक प्रभाव—मान 0.245 था, जिसे बड़ा प्रभाव माना गया।¹⁸

5. परिणामों का क्रियात्मक अर्थ :

पहला परिवर्तन गति में आया। आरंभिक 70.10 से मध्य 84.10 तक 14 शब्द प्रति मिनट की वृद्धि हुई। दूसरे चरण में औसत 20.43 शब्द और बढ़ा। अभ्यास का लाभ आरंभिक परिचय तक सीमित नहीं रहा। लगातार मार्गदर्शन के साथ पढ़ने की सहजता आगे भी बढ़ती रही।

दूसरा परिवर्तन शुद्धता में था। औसत 86.72% से 94.85% तक पहुँचा। गति बढ़ने के साथ शुद्धता का बढ़ना महत्वपूर्ण है, क्योंकि जल्दबाजी से प्राप्त अधिक शब्द—संख्या प्रवाहिता नहीं मानी जा सकती। राष्ट्रीय पठन पैनल के मेटा—विश्लेषण में निर्देशित मौखिक पुनर्पठन का समग्र भारित प्रभाव 0.41, प्रवाहिता पर 0.44 और बोध पर 0.35 था।¹⁹

तीसरा परिवर्तन शिक्षक—प्रतिक्रिया से जुड़ा है। सही उच्चारण सुनना, गलत शब्द तुरंत सुधारना और उसी वाक्यांश को पुनः पढ़ना अभ्यास को लक्ष्यपूर्ण बनाता है। थेरियन और क्यूबिना ने स्पष्ट लक्ष्य, प्रदर्शन—प्रतिक्रिया और कई पाठों पर अभ्यास को उपयोगी कार्यविधि माना।¹¹ वियतनाम के अंग्रेजी विदेशी—भाषा विद्यार्थियों में पुनरावृत्त पठन से पठन गति और बोध का विकास हुआ।¹² चांग के तुलनात्मक कार्य में समयबद्ध पठन और पुनरावृत्त मौखिक पठन ने अलग मार्गों से अंग्रेजी पढ़ने की गति को मजबूत किया।¹⁶

प्रकाशित हस्तक्षेप में पुनरावृत्त पठन के साथ बड़े आकार की सचित्र पुस्तकें भी प्रयुक्त हुईं और तीनों मापनों में वही जाँच—पाठ दोहराया गया। इसलिए प्राप्त वृद्धि संयुक्त कक्षा—व्यवस्था की वृद्धि है। शुद्ध पुनरावृत्त पठन का स्वतंत्र प्रभाव जानने के लिए समान कठिनाई वाले नए, अप्रशिक्षित पाठ पर अंतिम जाँच जरूरी है। चर्ड और सहयोगियों ने घटकों की स्पष्ट सूचना तथा प्रक्रिया—निष्ठा को प्रमाण की गुणवत्ता से जोड़ा।¹⁴ ली और यून के 34 अध्ययनों वाले मेटा—विश्लेषण में प्रारंभिक स्तर के विद्यार्थियों तथा श्रव्य प्रतिमान वाले हस्तक्षेपों में अपेक्षाकृत मजबूत प्रभाव मिला।¹⁷

6. भारतीय कक्षा के लिए कार्यविधि :

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने कक्षा 3 तक आधारभूत साक्षरता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी और सतत, अनुकूलनशील आकलन द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति पर नजर रखने की व्यवस्था रखी।²⁰ अंग्रेजी मौखिक पठन के लिए इसी दिशा में 6 सप्ताह का चक्र अपनाया जा सकता है।

पहले दिन समान स्तर का अपरिचित पाठ 1 मिनट पढ़वाकर सही शब्द, त्रुटियाँ और शुद्धता दर्ज की जाए। शिक्षक अगले चरण में पाठ का स्वाभाविक उच्चारण, विराम और वाक्यांशबद्धता प्रस्तुत करे। विद्यार्थी पाठ को 3 से 4 बार पढ़ें। हर पठन के बाद केवल वास्तविक त्रुटियों पर संक्षिप्त प्रतिक्रिया मिले। सप्ताह के अंत में अभ्यास—पाठ और समान कठिनाई वाले नए पाठ, दोनों पर मापन किया जाए। नया पाठ यह बताएगा कि दक्षता केवल याद किए गए अंश तक सीमित है या स्वतंत्र पढ़ने में भी पहुँची है।^{2, 11, 17}

विद्यार्थियों को एक ही गति—मान से बाँधने के स्थान पर उनके आरंभिक स्तर के अनुसार व्यक्तिगत लक्ष्य

देना अधिक उचित है। कम शुद्धता वाले विद्यार्थी के लिए पहले शब्द-पहचान और उच्चारण, फिर गति निर्धारित की जाए। पर्याप्त शुद्धता वाले विद्यार्थी के लिए वाक्यांश, स्वर और समय लक्ष्य रखा जाए। वादासी और सैंडर्स ने कम उपलब्धि वाले कक्षा 4 और 5 के विद्यार्थियों में व्यवस्थित पुनर्पठन से लाभ दर्ज किया।¹³ केरल के एक अंग्रेजी-माध्यम विद्यालय में कक्षा 3, 5, 7 और 9 के 193 विद्यार्थियों की पठन गति तुलनात्मक रूप से ठीक होने पर भी बोध कमजोर रहा, जिससे गति के साथ शब्दार्थ और बोध-जाँच की आवश्यकता सामने आती है।¹⁵

प्रगति-अभिलेख में 4 सूचनाएँ रखी जाएँ — कुल पढ़े शब्द, सही शब्द, त्रुटियों की संख्या और शुद्धता। स्वर, विराम तथा वाक्यांशबद्धता के लिए अलग संक्षिप्त श्रेणी रखी जा सकती है। इससे शिक्षक केवल अंतिम अंक नहीं देखता, बल्कि यह भी पहचानता है कि विद्यार्थी की कठिनाई शब्द खोलने, उच्चारण, गति या भावपूर्ण प्रस्तुति में कहाँ स्थित है।

7. निष्कर्ष :

पुनरावृत्त पठन तब प्रभावी बनता है जब पुनरावृत्ति के साथ शिक्षक प्रतिमान, तत्काल त्रुटि-सुधार, स्पष्ट लक्ष्य और नियमित मापन जुड़े हों। टिनोक के 21 विद्यार्थियों में 6 सप्ताह के भीतर सही पठन गति 70.10 से 104.52 और शुद्धता 86.72% से 94.85% पहुँची। यह बदलाव कक्षा में छोटी, नियमित और मापी जा सकने वाली पठन-प्रक्रिया की उपयोगिता को पुष्ट करता है। अंतिम मापन में नया समान-स्तरीय पाठ जोड़ना, गति के साथ शुद्धता और भावपूर्ण पठन दर्ज करना तथा विद्यार्थी-विशिष्ट लक्ष्य रखना इसकी विश्वसनीयता बढ़ाता है। अंग्रेजी को दूसरी या अतिरिक्त भाषा के रूप में पढ़ने वाले भारतीय विद्यार्थियों के लिए यह कम लागत वाली, शिक्षक-नियंत्रित और प्रतिदिन लागू की जा सकने वाली तकनीक है।

संदर्भ सूची :

1. लाबर्ज, डेविड, और एस. जे. सैमुअल्स, "टुवर्ड अ थ्योरी ऑफ ऑटोमैटिक इन्फॉर्मेशन प्रोसेसिंग इन रीडिंग," कॉग्निटिव साइकोलॉजी, खंड 6, अंक 2, 1974, पृ. 293-323।
2. सैमुअल्स, एस. जे. "द मेथड ऑफ रिपीटेड रीडिंग्स," द रीडिंग टीचर, खंड 32, अंक 4, 1979, पृ. 403-408।
3. रैशोट, कैरल ए., और जोसेफ के. टॉर्गेसन, "रिपीटेड रीडिंग एंड रीडिंग फ्लुएन्सी इन लर्निंग डिसेबल्ड चिल्ड्रेन," रीडिंग रिसर्च क्वार्टरली, खंड 20, अंक 2, 1985, पृ. 180-188।
4. डाउहावर, सारा एल. "इफेक्ट्स ऑफ रिपीटेड रीडिंग ऑन सेकंड-ग्रेड ट्रांजिशनल रीडर्स फ्लुएन्सी एंड कॉम्प्रिहेंशन," रीडिंग रिसर्च क्वार्टरली, खंड 22, अंक 4, 1987, पृ. 389-406।
5. रासिंस्की, टिमोथी वी. "इफेक्ट्स ऑफ रिपीटेड रीडिंग एंड लिसनिंग-व्हाइल-रीडिंग ऑन रीडिंग फ्लुएन्सी," जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, खंड 83, अंक 3, 1990, पृ. 147-151।
6. फुक्स, लिन एस., डगलस फुक्स, मिशेल के. हॉस्प, और जोसेफ आर. जेनकिंस, "ओरल रीडिंग फ्लुएन्सी ऐज एन इंडिकेटर ऑफ रीडिंग कॉम्पिटेंस," साइंटिफिक स्टडीज ऑफ रीडिंग, खंड 5, अंक 3, 2001, पृ. 239-256।
7. चर्ड, डेविड जे., शैरन वॉन, और बेट्टी-जीन टायलर, "अ सिंथेसिस ऑफ रिसर्च ऑन इफेक्टिव इंटरवेंशन्स फॉर बिल्डिंग रीडिंग फ्लुएन्सी," जर्नल ऑफ लर्निंग डिसेबिलिटीज, खंड 35, अंक 5, 2002,

पृ. 386–406।

8. कून, मेलानी आर., और स्टीवन ए. स्टॉल, "फ्लुएंसी : अ रिव्यू ऑफ डेवलपमेंटल एंड रेमेडियल प्रैक्टिसेज," जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइकोलॉजी, खंड 95, अंक 1, 2003, पृ. 3–21।
9. थेरियन, विलियम जे. "फ्लुएंसी एंड कॉम्प्रिहेंशन गेन्स ऐज अ रिजल्ट ऑफ रिपीटेड रीडिंग," रेमेडियल एंड स्पेशल एजुकेशन, खंड 25, अंक 4, 2004, पृ. 252–261।
10. पिकुल्स्की, जॉन जे., और डेविड जे. चर्ड, "फ्लुएंसी : ब्रिज बिटवीन डिक्कोडिंग एंड रीडिंग कॉम्प्रिहेंशन," द रीडिंग टीचर, खंड 58, अंक 6, 2005, पृ. 510–519।
11. थेरियन, विलियम जे., और रिचर्ड एम. क्यूबिना, "डेवलपिंग रीडिंग फ्लुएंसी विद रिपीटेड रीडिंग," इंटरवेंशन इन स्कूल एंड क्लिनिक, खंड 41, अंक 3, 2006, पृ. 156–160।
12. गॉरसच, ग्रेटा जे., और एत्सुओ तागुची, "रिपीटेड रीडिंग फॉर डेवलपिंग रीडिंग फ्लुएंसी एंड रीडिंग कॉम्प्रिहेंशन," सिस्टम, खंड 36, अंक 2, 2008, पृ. 253–278।
13. वादासी, पैट्रिशिया एफ., और एलिजाबेथ ए. सैंडर्स, "बेनेफिट्स ऑफ रिपीटेड रीडिंग इंटरवेंशन फॉर लो-अचीविंग फोर्थ एंड फिफ्थ-ग्रेड स्टूडेंट्स," रेमेडियल एंड स्पेशल एजुकेशन, खंड 29, अंक 4, 2008, पृ. 235–249।
14. चर्ड, डेविड जे., लीन केटरलिन-गेलर, स्कॉट के. बेकर, क्रिश्चियन डोएबलर, और चनिसा अपिचाताबुत्रा, "रिपीटेड रीडिंग इंटरवेंशन्स फॉर स्टूडेंट्स विद लर्निंग डिसएबिलिटीज," एक्सेप्शनल चिल्ड्रेन, खंड 75, अंक 3, 2009, पृ. 263–281।
15. पेज, डेविड डी., विक्टोरिया स्पैग्नोली, और हॉली वुड, "लिटरेसी एक्विजिशन इन इंडियन स्टूडेंट्स," वर्ल्ड जर्नल ऑफ एजुकेशन, खंड 3, अंक 2, 2013, पृ. 11–23।
16. चांग, अन्ना सी.-एस. "इम्प्रूविंग रीडिंग रेट एक्टिविटीज फॉर इंग्लिश विदेशी-भाषा स्टूडेंट्स," रीडिंग इन अ फॉरेन लैंग्वेज, खंड 24, अंक 1, 2012, पृ. 56–83।
17. ली, जिह्यून, और सू यंग यून, "द इफेक्ट्स ऑफ रिपीटेड रीडिंग ऑन रीडिंग फ्लुएंसी फॉर स्टूडेंट्स विद रीडिंग डिसएबिलिटीज," जर्नल ऑफ लर्निंग डिसएबिलिटीज, खंड 50, अंक 2, 2017, पृ. 213–224।
18. कनूटो, पीटर पॉल, युविमिन लुमिदाओ, अलाइज बालागान, पीटर काल्या-एन जूनियर, रिशेल कैथे लाओयान, और आर्नोल्ड ओप्लास, "एनहैंसिंग एलिमेंटरी स्टूडेंट्स ओरल रीडिंग फ्लुएंसी थ्रु रिपीटेड रीडिंग एंड बिग बुक्स," इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लर्निंग, टीचिंग एंड एजुकेशनल रिसर्च, खंड 23, अंक 4, 2024, पृ. 376–393।
19. राष्ट्रीय पठन पैनल, टीचिंग चिल्ड्रेन टू रीड : फ्लुएंसी अध्याय, राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य एवं मानव विकास संस्थान, 2000, पृ. 3–1–3–43।
20. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारत सरकार, 2020, पृ. 8–14।

भारतीय ज्ञान परम्परा में किसान चेतना का महत्व एवं योगदान

प्रसेन जीत सिंह

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

सारांश :

भारतीय ज्ञान परम्परा का एक बड़ा भाग खेत, ऋतु, बीज, जल, पशु, श्रम और ग्राम-जीवन के संयुक्त अनुभव से बना है। किसान आकाश देखकर वर्षा की संभावना समझता है, मिट्टी छूकर नमी पहचानता है और नक्षत्रों के क्रम से बोआई तथा कटाई का समय तय करता है। यह ज्ञान पुस्तकीय सूचना से पहले जीवन में उतरता है। महाकवि घाघ की कृषि-सूक्तियाँ, सावन से जुड़ी लोकोक्तियाँ और रोहिणी, आर्द्रा, मृगशिरा, उत्तरा तथा हथिया से संबंधित मान्यताएँ इसी अनुभव-संपदा की वाचिक अभिव्यक्तियाँ हैं। डॉ. विवेकी राय ने किसान को अन्न-उत्पादक से आगे बढ़कर स्मृति, श्रम, आत्मसम्मान, प्रकृति-बोध और सामाजिक न्याय से जुड़ी चेतना के रूप में चित्रित किया है। उनकी रचनाओं में मौसम का बदलना किसान के घर, भोजन, ऋण, उत्सव, संबंध और भविष्य को एक साथ प्रभावित करता है। किसान चेतना भारतीय ज्ञान परम्परा को धरती से जोड़ती है और वर्तमान कृषि-चिंतन को स्थानीय अनुभव की मजबूत आधारभूमि देती है।

मुख्य शब्द : भारतीय ज्ञान परम्परा, किसान चेतना, घाघ, ग्रामीण लोकोक्ति, मौसम-बोध, सोना माटी, विवेकी राय।

1. खेत से जन्मी ज्ञान-दृष्टि :

भोर में खेत की मेड़ पर खड़ा किसान बादल के साथ हवा, मिट्टी की नमी और फसल की अवस्था को पढ़ता है। कम वर्षा, अतिवृष्टि, ओला, पाला, कीट और तेज हवा उसके अगले निर्णय को प्रभावित करते हैं। इसी सतत निरीक्षण से किसान चेतना बनती है। इसमें उत्पादन की समझ के साथ परिवार की सुरक्षा, पशुधन की देखभाल, बीज की रक्षा, जल का उपयोग, श्रम का अनुशासन और समुदाय का सहयोग जुड़ा रहता है।

घाघ की दोहात्मक कृषि-सूक्ति -

“उत्तम खेती जो हल गहा”

खेती में प्रत्यक्ष श्रम को सर्वोच्च स्थान देती है। खेत का स्वामी जब स्वयं हल पकड़ता है, तब मिट्टी की दशा, बैलों की गति और नमी का वास्तविक बोध उसके हाथों तक पहुँचता है। विवेकी राय ने इसी प्रसंग में तीन प्रकार के किसानों का उल्लेख किया है – स्वयं हल चलाने वाला, हलवाहे के साथ खेत पर रहने वाला और खेत से दूर रहने वाला। पहले किसान की चेतना श्रम और उत्तरदायित्व से बनती है। दूसरे की जागरूकता खेत पर उपस्थित रहने से बची रहती है। तीसरे किसान का भूमि से जीवित संबंध धीरे-धीरे

कमजोर पड़ जाता है।^{1, 2}

2. लोकोक्तियों में मौसम, भोजन और जीवन :

ग्रामीण लोकोक्ति – “सावन में सुग्गा भी उपवास करता है” वर्षा ऋतु के साथ आने वाले अन्न, ईंधन और आवास के संकट को एक छोटे वाक्य में बाँध देती है। सावन में पुराना अन्न घट जाता है, खेत का नया अनाज घर नहीं पहुँचता, लगातार वर्षा से ईंधन भीगता है और कच्चे घरों में चूल्हा जलाना कठिन हो जाता है। यह लोकोक्ति किसान परिवार की खाद्य-सुरक्षा और वर्षा ऋतु की वास्तविक कठिनाइयों का पूरा संकेत देती है।³

विवेकी राय किसान को आकाश पर निर्भर जीवन जीने वाला बताते हैं। कम वर्षा विनाश ला सकती है और अधिक वर्षा भी फसल बिगाड़ सकती है। ओला, पाला, कीट तथा तेज हवा अलग संकट खड़े करते हैं। किसान चेतना इसी अनिश्चितता के बीच उचित निर्णय लेने की क्षमता है। इसमें वर्षा की मात्रा के साथ उसके समय, तीव्रता और फसल की अवस्था का संबंध पहचाना जाता है।⁴

“खेती-बारी साथ-साथ” ग्रामीण पोषण और मिश्रित जीवन-व्यवस्था का सूत्र है। खेत से अन्न मिलता है, जबकि बारी से फल, साग, छाया और घर के उपयोग की अनेक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। दोनों का मेल शरीर और मन को सहारा देता है तथा परिवार के लिए भोजन के कई स्रोत तैयार करता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में यह समन्वय भूमि के संतुलित उपयोग की सीख देता है।⁵

3. नक्षत्रों का कृषि-पंचांग और सोना माटी :

डॉ. विवेकी राय के उपन्यास-संसार में किसान चेतना का सघन रूप सोना माटी में मिलता है। करइल अंचल का किसान मौसम को कैलेंडर की तारीखों से अधिक नक्षत्रों के क्रम में पढ़ता है। सोनवा अर्थात् हथिया नक्षत्र की वर्षा से बनी कीचड़ रामरूप के लिए आरम्भ में बाधा बनती है। उसी क्षण उसके भीतर किसान का अनुभव बोलता है— “पांक नहीं, यह किसान का सौभाग्य है।” समय पर आया पानी मिट्टी के लिए अमृत बनता है और कठिन रास्ता भी भविष्य की फसल का संकेत देने लगता है।⁶

रोहिणी में डाला गया धान का बीज सूखे से जूझते खेत में आशा बचाए रखता है। “रोहिणी का डाला हुआ बीज” कहने के साथ ऐसी लोककथा जुड़ती है जिसमें बार-बार नष्ट किए जाने पर भी अंकुर फिर निकल आते हैं। कथा बीज की जीवटता, समय पर बोआई और किसान की धैर्यशील प्रतीक्षा को स्मृति में सुरक्षित करती है। ज्ञान यहाँ कहानी बनकर पीढ़ी से पीढ़ी चलता है।^{7, 8}

मृगडाह की तीखी गर्मी किसान के लिए कष्ट और अगली ऋतु की तैयारी – दोनों से जुड़ी है। तपती धरती के भीतर खाद बनने का भाव भी उपस्थित रहता है। आर्द्रा का बिना वर्षा उतर जाना पूरे गाँव की चिंता बढ़ा देता है। “आर्द्रा नक्षत्र आज उतर गयी” वाक्य के भीतर सूखते खेत, टलती बोआई, घटता राशन और भारी होता समय एक साथ उपस्थित हैं।^{9, 10}

उत्तरा के बाद हथिया और फिर चित्रा का क्रम किसान के कृषि-पंचांग को आगे बढ़ाता है। घाघ की लोक-स्मृति चेताती है कि हथिया में पानी न पड़े तो खेत की आशा बुरी तरह टूट सकती है। इस समझ का केंद्र फसल के लिए उचित समय पर मिलने वाला पानी है। बादल घिरते ही गाँव में कजरी का स्वर उठता है। मिट्टी की नमी, श्रम की राहत और सांस्कृतिक उल्लास एक ही क्षण में जुड़ जाते हैं। इस प्रकार मौसम का ज्ञान गीत, श्रम और कृषिकृतीनों में जीवित रहता है।^{11, 12}

4. प्रकृति, श्रम और सामाजिक न्याय :

सोना माटी में हवा के संकेत पर हिलती धान की क्यारियाँ काव्य का अनुभव जगाती हैं। किसान चेतना में उपयोग और सौंदर्य साथ चलते हैं। वही खेत भोजन देता है, वही मन को रस देता है और वही लोकगीत को जन्म देता है। खेत की हरियाली आर्थिक संपदा के साथ सांस्कृतिक स्मृति भी है। प्रकृति से यह आत्मीय संबंध किसान को भूमि का स्वामी होने के साथ उसका संरक्षक भी बनाता है।¹³

मौसम की मार सामाजिक प्रश्न भी बनती है। “असाढ़ से एक बूँद पानी नहीं बरसा” होने पर किसान के पास फसल की आशा और नकद धन दोनों घट जाते हैं, फिर भी मालगुजारी की वसूली उसके सामने खड़ी रहती है। रामरूप का प्रतिरोध किसान चेतना को न्याय—बोध से जोड़ता है। किसान प्राकृतिक संकट सहने के साथ ऐसी व्यवस्था को भी पहचानता है जो सूखे के समय उसकी देनदारी कम करने के स्थान पर वसूली का दबाव बनाए रखती है।¹⁴

नई खेती में बिजली, डीजल, सिंचाई—यंत्र, बाजार और ऋण प्रवेश करते हैं। सुविधा तब सार्थक बनती है जब बिजली समय पर मिले, ईंधन उपलब्ध हो और लागत किसान की क्षमता के भीतर रहे। साधन बार—बार बदलने, आपूर्ति रुकने और कर्ज बढ़ने पर तकनीक किसान के लिए बोझ बन जाती है। विवेकी राय का किसान नए ज्ञान और साधनों को खेत की वास्तविक परिस्थिति के आधार पर परखता है। वह ऐसी व्यवस्था चाहता है जिसमें नया साधन खेती और किसानकृदोनों को सहारा दे।¹⁵

ग्राम—जीवन में कभी भरपूर भोजन और कभी मुट्ठी भर अन्न की स्थिति साथ चलती है। सोना माटी की लोकोक्ति इसी अस्थिरता को व्यक्त करती है। किसान परिवार उत्सव, विवाह और भोज का आयोजन भी अन्न की उपलब्धता तथा ऋतु की स्थिति देखकर करता है। तिनमगरा और पचमंगरा जैसी लोक—परम्पराएँ विवाह के समय को पंचांग तथा ग्रह—नक्षत्रों से जोड़ती हैं। किसान का समय ऋतु, फसल, संस्कार और सामुदायिक जीवन के चक्र में व्यवस्थित होता है।^{16, 17}

5. श्रम का समय और वर्तमान उपयोगिता :

“हर छोड़ देंगा विश्राम” किसान के श्रम—विन्यास की सूक्ति है। भारी काम के बाद हल्का काम विश्राम बन जाता है और कार्य की लय भी बनी रहती है। इसके विपरीत “गाँगू का हेंगा” उस काम का प्रतीक है जो आवश्यकता बीत जाने के बाद पूरा किया गया। कार्तिक में माँगा गया हेंगा चौत में पहुँचे तो उसका प्रयोजन समाप्त हो चुका होता है। दोनों कथन खेती में समय, तत्परता और कार्य—क्रम की अनिवार्यता समझाते हैं।^{18, 19}

इन कृषि—सूत्रों की उपयोगिता आज भी खेत के निर्णयों में बनी हुई है। रोहिणी, आर्द्रा, उत्तरा और हथिया जैसे ऋतु—संकेत स्थानीय मौसम—स्मृति को व्यवस्थित रखते हैं। खेती और बारी का मेल परिवार के लिए भोजन के कई स्रोत तैयार करता है। समय पर हल चलाने, हेंगा लगाने और बीज डालने की सीख श्रम तथा साधनों की बर्बादी रोकती है। स्थानीय बीज, मिट्टी की दशा और वर्षा के समय की पहचान विपरीत मौसम में किसान के धैर्य तथा निर्णय—क्षमता को मजबूत करती है। इस लोक—बोध को उपलब्ध मौसम—सूचना और सिंचाई—साधनों के साथ जोड़ने से खेती का निर्णय धरती की वास्तविक स्थिति के अधिक निकट रहता है।

निष्कर्ष :

भारतीय ज्ञान परम्परा में किसान चेतना धरती से अर्जित व्यावहारिक बुद्धि, प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण, सामुदायिक स्मृति और श्रम—नैतिकता का संयुक्त रूप है। घाघ की कृषि—सूक्ति किसान को अपने खेत से प्रत्यक्ष

संबंध रखने की सीख देती है। सावन की लोकोक्ति भोजन और आवास की असुरक्षा पहचानती है। रोहिणी, आर्द्रा, मृगशिरा, उत्तरा और हथिया से जुड़ा मौसम-बोध कृषि के सही समय को स्मृति में रखता है।

डॉ. विवेकी राय ने इन सूत्रों को जीवित पात्रों, खेतों, गीतों, संकटों और निर्णयों के भीतर रखा है। उनके उपन्यास-संसार का किसान मौसम पढ़ने वाला, श्रम का मूल्य समझने वाला, अन्याय पर प्रश्न उठाने वाला और भविष्य के लिए बीज बचाने वाला मनुष्य है। उसकी चेतना में परिवार, खेत, पशु, समाज और प्रकृति एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। यही किसान चेतना भारतीय ज्ञान परम्परा को जीवित, उपयोगी और मानवीय बनाती है।

संदर्भ-टिप्पणियाँ :

1. राय, विवेकी. किसानों का देश. प्रथम संस्करण, कर्मयोगी प्रेस, आजमगढ़, 1956, पृ. 54.
2. राय, विवेकी. किसानों का देश. प्रथम संस्करण, कर्मयोगी प्रेस, आजमगढ़, 1956, पृ. 54-55.
3. राय, विवेकी. किसानों का देश. प्रथम संस्करण, कर्मयोगी प्रेस, आजमगढ़, 1956, पृ. 53.
4. राय, विवेकी. किसानों का देश. प्रथम संस्करण, कर्मयोगी प्रेस, आजमगढ़, 1956, पृ. 136.
5. राय, विवेकी. किसानों का देश. प्रथम संस्करण, कर्मयोगी प्रेस, आजमगढ़, 1956, पृ. 115.
6. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 11.
7. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 63.
8. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 67-68.
9. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 311.
10. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 350-351.
11. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 421.
12. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 367-368.
13. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 17.
14. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 415.
15. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 64.
16. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 85.
17. राय, विवेकी. सोना माटी. तृतीय संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 164.
18. राय, विवेकी. किसानों का देश. प्रथम संस्करण, कर्मयोगी प्रेस, आजमगढ़, 1956, पृ. 161.
19. राय, विवेकी. किसानों का देश. प्रथम संस्करण, कर्मयोगी प्रेस, आजमगढ़, 1956, पृ. 162.

डॉ० सुरेन्द्र दत्त सेमल्टी की बाल कविताओं में राष्ट्रीय चेतना

शालू जोशी, शोधार्थी, हिंदी विभाग

डॉ० अलका मोहन शर्मा, शोध निर्देशक

एम०के०पी० (पी०जी०) कॉलेज, देहरादून।

शोध सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य डॉ० सुरेन्द्र दत्त सेमल्टी की बाल कविताओं में निहित राष्ट्रीय चेतना का विश्लेषण करना है। देवभूमि में जन्में सेमल्टी जी प्रमुख बाल साहित्यकार हैं। उनकी बाल कविताओं में राष्ट्रीय चेतना का स्वर मुखरित हुआ है। वे बच्चों में देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता-अखण्डता, हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम एवं सामाजिक समरसता की भावना विकसित करते हैं, साथ ही बच्चों को देश के महान पुरुषों से भी परिचित कराते हैं। सिर्फ देश के लिए मर मिटना ही राष्ट्रीय चेतना नहीं है, बल्कि बच्चों को अच्छी शिक्षा देना, संस्कारित एवं जागरूक नागरिक बनाना भी राष्ट्रप्रेम है। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना एक प्रमुख एवं आकर्षक विषय रहा है। बहुत सारे हिन्दी बाल साहित्यकार हुए हैं, जिनकी बाल कविताएं राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हैं। सेमल्टी जी ने सुभद्रा कुमारी चौहान, माखन लाल चतुर्वेदी एवं द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की बाल कविताओं को भी संकलित किया है, जो बच्चों में राष्ट्रीय चेतना का भाव जागृत करती हैं। सेमल्टी जी के बाल कविता संग्रह 'बढ़ते कदम', 'सफलता के सूत्र', 'हमारे अविस्मरणीय दिवस' एवं 'उत्तराखण्ड का पारम्परिक बाल साहित्य' के आधार पर इस शोध पत्र का विश्लेषण किया गया है। उनकी बाल कविताएं बच्चों के लिए बहुत उपयोगी हैं।

बीज शब्द :

राष्ट्रीय चेतना, संस्कारित नागरिक, बाल कविता, हिन्दी भाषा, सामाजिक समरसता, बच्चे, सेमल्टी।

डॉ० सुरेन्द्र दत्त सेमल्टी उत्तराखण्ड के बाल साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। डॉ० सुरेन्द्र दत्त सेमल्टी का जन्म 11 अक्टूबर 1955 को उत्तराखण्ड के टिहरी गढ़वाल जनपद के पुजार गाँव में हुआ। उनकी बाल संबंध उनकी बाल संबंधी कविताओं में राष्ट्रीयता की भावना देखने को मिलती है। बच्चों को देश का अच्छा नागरिक कैसे बनाया जाए, इसमें माता-पिता एवं शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। बच्चों को अगर बचपन से ही अच्छी शिक्षा दी जाए, संस्कारी बनाया जाए तो निश्चित ही वे देश के जागरूक नागरिक बन सकते हैं। 'अच्छे बच्चे' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं—

'पढ़ाने के संग दें संस्कार, बच्चे नहीं बनेंगे भार।

पढ़ेंगे मेहनत से जो बच्चे, देश के नागरिक बनेंगे अच्छे।'

एक माँ अपने बच्चे को वीर कैसे बनाती है, इसका वर्णन सेमल्टी जी ने 'स्तनपान' कविता में किया है।

इस संसार में माँ-बच्चे का नाता सबसे अलग एवं अटूट होता है। एक माँ ही बच्चे को जन्म देती हैं, उसका पालन-पोषण करती हैं। बच्चे के लिए माँ का दूध ही सर्वोपरि माना जाता है। माँ का स्तनपान करने से बच्चे का शारीरिक विकास ही नहीं होता, बल्कि इससे माँ की शोभा भी बढ़ती है। जो बच्चा माँ का दूध पिएगा, वो बड़े होकर देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान देने से बिल्कुल भी नहीं कतराएगा। इस संबंध में एक उदाहरण दृष्टव्य है —

**‘सभी करायें स्तन पान, माँ का इससे बढ़ता मान।
इससे मिटते हैं सब रोग, हर बच्चा करे इस दूध भोग।
नहीं थकते ओ करके काम, करते परिश्रम सुबह और शाम।
जो बच्चा करता नित स्तनपान, ओ राष्ट्रप्रेम में दे देता जान।’²**

सेमल्टी जी ग्रामीण और शहरी, हिन्दू-मुस्लिम या जैन सभी बच्चों को देश के रक्षक मानते हैं। वे सभी धर्मों के नागरिकों को समानता की दृष्टि से देखते हैं। कवि ने ‘देश के प्रहरी’ कविता में आपसी भाईचारे का संदेश दिया है।

**‘सारे होंगे देश के प्रहरी, ग्रामीण बच्चे हो या शहरी,
हिन्दू, मुसलमान हों या जैन, ये बनेंगे देश के रक्षक।’³**

जो लोग देश को धर्म, जाति या क्षेत्र के आधार पर बांटने का काम करते हैं, वे राष्ट्र-विरोधी कहलाते हैं और इससे साम्प्रदायिकता का जन्म होता है, जो राष्ट्र के विकास में बाधा बनती है। सेमल्टी जी सभी धर्मों का सम्मान करते हैं एवं जाति-पाति, क्षेत्रवाद का विरोध करते हैं। वे सभी बच्चों को इससे आगाह भी करते हैं। वे मानते हैं कि रंग-रूप चाहे सभी का अलग-अलग हों, लेकिन सभी लोग भारत माँ की ही सन्तानें हैं। राष्ट्र ही सर्वोपरि हैं। राष्ट्रीय एकता ही हमारा आदर्श वाक्य है। यहाँ पर कवि ने राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का परिचय दिया है। ‘राष्ट्रीय एकता’ कविता में वे कहते हैं—

**‘सभी धर्म हैं एक समान, सबका करें हम सम्मान,
धर्म जाति में देश न बाँटे, कहीं ये बन जायें न काँटे,
क्षेत्रवाद भी नहीं है अच्छा, इस बात को समझे हर बच्चा,
हम सब माला के हैं मन के, काले-गौरे भले हैं तनके,
भारत हम सबकी है माता, राष्ट्रीय एकता ध्येय हमारा।’⁴**

सेमल्टी जी ने सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता ‘झाँसी की रानी’ द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की ‘वीर तुम बढ़े चलो’ एवं माखन लाल चतुर्वेदी की ‘पुष्प की अभिलाषा’ कविता को अपनी रचना ‘उत्तराखण्ड का पारम्परिक बाल साहित्य’ में संकलित किया है। सुभद्रा कुमारी चौहान हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवादी विचारधारा की प्रमुख एवं सशक्त महिला कवयित्री रही हैं। राष्ट्रप्रेम की भावना उसके अंदर कूट-कूट कर भरी है। ‘झाँसी की रानी’ कविता 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम से संबंधित है। इसमें लक्ष्मीबाई की वीरता का वर्णन किया गया है। यह कविता बच्चों के अंदर देशप्रेम भरने का काम करती है।

**‘चमक उठी सन् सत्तावन् में, वह तलवार पुरानी थी,
बुन्देले हर बोलों के मुँह, हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी।’⁵**

राष्ट्रप्रेम संबंधी कविताओं को अगर बचपन से ही बच्चों को सुनाया जाए तो बच्चों के अंदर अपनी मातृभूमि के प्रति वीरता का भाव जागृत होता है। माखन लाल चतुर्वेदी 'पुष्प की अभिलाषा' में मातृभूमि की रक्षा करने के लिए सैनिकों को तैयार करते हैं—

**‘मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएँ वीर अनेक।’⁶**

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की 'वीर तुम बड़े चलो' कविता बच्चों में वीरता का भाव भरने, बच्चों को निडर बनाने, अपने लक्ष्य को प्राप्त करने एवं निरन्तर अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है—

**‘वीर तुम बड़े चलो, धीर तुम बड़े चलो।
साथ में ध्वजा रहे, बाल दल सजा रहे।’⁷**

सेमल्टी जी अपनी 'राष्ट्रपिता' कविता में बच्चों को महान पुरुष गाँधी जी से परिचित कराते हैं। गाँधी जी को राष्ट्रपिता कहा जाता है। देश को आजादी दिलाने में कई स्वतन्त्रता सेनानियों, क्रांतिकारियों, राजनेताओं, साहित्यकारों एवं पत्र-पत्रिकाओं का योगदान रहा है। महात्मा गाँधी जी ने अंग्रेजों के खिलाफ कई आन्दोलनों का नेतृत्व किया जिनमें से चम्पारण सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन एवं भारत छोड़ो आन्दोलन प्रमुख हैं। इसमें गांधी जी के साथ कई लोगों ने भाग लिया। गाँधी जी स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान कई बार जेल भी गये। अंग्रेजों ने भारतीय जनता पर खूब अत्याचार किये, लेकिन फिर भी गाँधी जी ने सत्य और अहिंसा का मार्ग अपनाया और अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ा। वे 'सादा जीवन, उच्च विचार' वाले व्यक्ति थे। 'राष्ट्रपिता' कविता में सेमल्टी जी बच्चों को सत्य और अहिंसा का मार्ग अपनाने पर बल देते हैं—

**‘राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, लाये सत्य-अहिंसा आँधी।
खुद चले ओ उस मार्ग पर, उसी दिशा में चले आज हर।
देश के खातिर रहे ओ नंगे, कभी नहीं किये हैं दंगे।
ऐसा ओजस्वी था ओ नर, अंग्रेज डरे जिन्हें देखकर,
भारत छोड़ स्वदेश को भागे, गाँधी ने नहीं गोले दागे।’⁸**

सेमल्टी जी ने राष्ट्रभक्त लाल बहादुर शास्त्री जी का भी वर्णन किया है। वे भारत के दूसरे प्रधानमंत्री थे। उन्हें अपने जीवन में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। शास्त्री जी गरीबी से भली-भाँति परिचित थे। देश की उन्नति के लिए, किसानों के हित के लिए वे निरन्तर प्रयास करते रहे। सन् 1965 में उन्होंने 'जय जवान, जय किसान' का नारा दिया। वे देश के सच्चे सपूत थे। उनकी माँ के अन्दर भी देशप्रेम की भावना थी। वे अपने पुत्र शास्त्री जी को देश पर मर-मिटने की प्रेरणा देती थीं। कवि सेमल्टी जी ऐसे देशभक्त को नतमस्तक होकर प्रणाम करते हैं—

**‘जय जवान जय किसान का, दिया था जिन्होंने नारा,
वे लाल बहादुर शास्त्री जी, थे भारतवर्ष को प्यारा,
प्रधानमंत्री बने शास्त्री जी, गरीबी में पल-बढ़कर,
देश की प्रगति के खातिर, नित संघर्षों से जूझते रहे,
यह आदेश हुआ था उनको, जन्म दिया था जिस माँ ने,
अपने देश पर मर मिटने की, माँ देती रहती थी ताने,**

ऐसे राष्ट्रभक्त शास्त्री जी को, नमन करते हम बारम्बार।⁹

देश के निर्माण में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सेमल्टी जी ने हिन्दी भाषा के महत्व पर भी बल दिया है। भारत में सबसे ज्यादा बोली एवं समझी जाने वाली भाषा हिन्दी है। यह हमारी मातृभाषा है। अपनी मातृभाषा को विकसित किये बिना देश की उन्नति भी सम्भव नहीं हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था— **“निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को मूल।”**¹⁰ हिन्दी जन-जन को जोड़ने वाली भाषा ही नहीं, अपितु हमारी संस्कृति, राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का भी प्रतीक हैं। भारतीय संविधान ने हिन्दी को 14 सितम्बर 1949 को ‘राजभाषा’ के रूप में मान्यता दी, इसलिए प्रत्येक वर्ष 14 सितम्बर को ‘हिन्दी दिवस’ के रूप में मनाया जाता है। सेमल्टी जी ‘हिन्दी भाषा की महत्ता’ कविता में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार पर बल देते हैं—

‘भारत के माथे की बिन्दी, युगों-युगों से भाषा हिन्दी।
इसके प्रति कुछ लोगों की रूढ़ि, बहुत हो चुकी है यह बूढ़ी।
इसको योवन फिर से हम दें, जो ज्ञान छिपा है उसको सब लें।
मातृभाषा है यह हम सबकी, आज से नहीं बनी है कबकी।
हिन्दी ने अज्ञान भगाया, हर मानव के मन को जगाया।
इसका अतीत है गौरवशाली, भविष्य बनायें प्रभावशाली।’¹¹

इस प्रकार सेमल्टी की बाल कविताओं में राष्ट्रीय चेतना का उत्कृष्ट स्वरूप प्राप्त होता है। उनकी कविताएं बच्चों के भविष्य के निर्माण में बहुत ही सार्थक सिद्ध होंगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सेमल्टी, सुरेन्द्र दत्त, बढ़ते कदम (बाल कविता संग्रह), विनसर पब्लिशिंग कंपनी देहरादून, 2012, पृ. 14
2. वही, पृ. 19
3. वही, पृ. 55
4. वही, पृ. 75
5. सेमल्टी, सुरेन्द्र दत्त, उत्तराखण्ड का पारम्परिक बाल साहित्य, समय साक्ष्य देहरादून, 2025 पृ. 56
6. वही, पृ. 56
7. वही, पृ. 54
8. सेमल्टी, सुरेन्द्र दत्त, बढ़ते कदम (बाल कविता संग्रह), विनसर पब्लिशिंग कंपनी देहरादून, 2012, पृ. 96
9. सेमल्टी, सुरेन्द्र दत्त, सफलता के सूत्र (बाल कविता संग्रह), विनसर पब्लिशिंग कंपनी देहरादून, 2019, पृ. 30
10. हिन्दी दिवस विशेष : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र— <https://www.amarujala.com>
11. सेमल्टी, सुरेन्द्र दत्त, हमारे अविस्मरणीय दिवस (बाल कविता संग्रह), विनसर हिमालय देहरादून, 2015, पृ. 49

The Word That Will Not Sit Still : Orality, Collective Authorship, and the Living Grammar of Folk Expression

Siddharth

PhD Scholar, Department of English and Cultural Studies
Panjab University, Chandigarh.

Abstract :

This paper examines folk language and folk literature not as archival remnants of a vanished peasant past but as a continuously regenerating system of communication bound to performance, reception, and community. Drawing on Alan Dundes's taxonomy of folk speech, Mikhail Bakhtin's theory of carnivalesque humor, and the oral-formulaic scholarship of Albert Lord and Walter Ong, the paper argues that the folk text resists the fixity of print and mechanical recording because each performance is authored anew through the interaction of speaker and listener. The essay further considers the question of authorship and collective ownership in folk literature, contrasting it with the individualist logic of modern intellectual property, before turning to a case study of the Bhakti saint-poets of Maharashtra, namely Chokhamela, Namdev, and Tukaram, whose deliberate rejection of Sanskrit and adoption of vernacular verse forms such as the abhang, the bharud, and the gavalan illustrate how folk language becomes an instrument of social access and, at moments, social protest. The paper concludes that folklore's apparent instability, its refusal to be finished, is in fact the principal source of its cultural power.

Keywords : Folklore; Orality; Folk Speech; Bakhtin; Carnavalesque; Bhakti Movement; Vernacular literature; Collective Authorship

1. Introduction: The Folk Word in Motion :

Folklore is frequently misread as sediment : the residue of a peasant past that survives, if it survives at all, in archives, museum vitrines, and nostalgic festival re-enactments. This paper begins from the opposite premise. Folk language is not a closed inheritance but an open system that regenerates itself in every act of telling, singing, cursing, joking, and mourning. Because it is produced

by ordinary people rather than professional authors, and because it is carried by voice and gesture rather than by the printed page, folk expression has historically been treated by literary scholarship as secondary to “high” literature. Yet the very qualities that once seemed to disqualify folklore from serious study, namely its anonymity, its variability, and its refusal to hold still, are precisely what make it a distinctive object of inquiry. A folk community does not merely preserve a fixed body of texts; it continually re-authors its own tradition in response to present circumstances, and in doing so keeps the past in active conversation with the present rather than sealing it off from it.

This essay proceeds in five movements. It first considers how the conditions of oral performance produce a kind of textual instability that recorded and printed language cannot replicate. It then surveys Alan Dundes’s influential taxonomy of folk speech genres and asks what has become of those genres in the era of digital transmission. A third section turns to Mikhail Bakhtin’s account of carnivalesque folk humor to show how laughter functions as a social and even political resource. A fourth section addresses the question of authorship: why folk literature so rarely names an individual creator, and what this tells us about the community’s relationship to its own words. The essay closes with an extended case study of the Varkari Bhakti saint-poets of Maharashtra, whose vernacular hymns show folk language operating simultaneously as devotion, as literature, and as social critique.

2. Performance, Reception, and the Problem of Fixity :

A folk text exists differently from a printed one. Milman Parry and Albert Lord’s studies of South Slavic epic singers demonstrated that oral poets do not memorize a fixed script but recompose their material anew at each telling, drawing on a stock of formulas and narrative units that can be recombined to fit the occasion, the audience, and the singer’s own memory on a given day (Lord). Walter Ong extended this insight into a broader theory of orality, arguing that sound-based communication is inherently “evanescent”: a spoken word exists only for the instant of its utterance and cannot be inspected, paused, or returned to in the way a written sentence can (Ong 32–33). Ruth Finnegan’s fieldwork among African oral poets reached a parallel conclusion, showing that what look like “versions” of the same song are often better understood as distinct compositions, each shaped by the particular performer-audience relationship of its telling (Finnegan).

This has a direct consequence for how we think about the folk audience. Reception in a folk setting is rarely a passive act of consumption; it is a form of co-authorship. A listener’s laughter, silence, interruption, or refrain redirects the performer in real time, so that the meaning of the piece is produced jointly rather than transmitted one-directionally, as it would be from a printed page or a sound recording. A mechanically reproduced text, such as a cassette, a compact disc, or a streaming file, freezes a single performance and repeats it identically on every playback; a living oral performance can never be repeated identically, because it depends on a unique configuration of speaker, listener,

place, and moment. The folk text, in other words, is not a fixed object that circulates through a community; it is an event that the community re-stages.

3. The Architecture of Folk Speech : Dundes's Genres and Their Afterlives :

In *The Study of Folklore*, Alan Dundes offered what remains the most widely cited definition of the folk group: “any group of people whatsoever who share at least one common factor,” whether occupation, language, religion, or something narrower still (Dundes 2). What binds such a group as folk, in Dundes’s formulation, is not shared ethnicity or rural origin but the possession of a body of traditional expressive forms it recognizes as its own. Within this frame, Dundes catalogued an extensive inventory of folk-speech genres: chants, charms, oaths, teases, toasts, tongue-twisters, retorts, similes, metaphors, nicknames, epitaphs, autograph-book verses, limericks, and even bathroom-wall writing, or latrinalia. What unites this otherwise heterogeneous list is functional rather than formal: each genre is compact, formulaic, and designed to be transmitted by word of mouth (or, later, by hand) between members of a group who already share the interpretive key needed to understand it.

Dundes later argued that folklore should be defined operationally as expressive material that “repeats and varies,” a definition flexible enough to admit forms produced by the photocopier and, eventually, the word processor, in what folklorists have called “xeroxlore.” The same logic extends easily to the present: the forwarded WhatsApp message, the recut internet meme, the hashtag challenge, and the classroom rumor all repeat a recognizable template while varying its specific content from one transmission to the next, which is exactly the structural signature of folklore as Dundes described it. A viral meme is, structurally, a proverb with an image attached; a chain message promising luck to whoever forwards it is a charm running on a telecommunications network rather than a village well. The genres change their medium far more readily than they change their underlying grammar, which suggests that what Dundes was describing was never simply a set of rural survivals but a permanent feature of how groups use compact, repeatable language to manage belonging, humor, and anxiety.

4. Laughter in the Marketplace : Bakhtin and the Carnavalesque :

If Dundes supplies a taxonomy of folk speech, Mikhail Bakhtin supplies an account of what that speech does socially, particularly in its comic register. In *Rabelais and His World*, Bakhtin locates the roots of Renaissance comic literature in a pre-existing “folk culture of humor” that he divides into three broad forms: ritual spectacles such as carnival pageants and marketplace comic shows; comic verbal compositions, both oral and written, in Latin and in the vernacular; and various genres of billingsgate: curses, oaths, and popular blazons, or exaggerated, often obscene, praise and abuse (Bakhtin 5). For Bakhtin, carnival laughter is not simply entertainment; it is “ambivalent,” simultaneously mocking and renewing, because it degrades official hierarchy while affirming the vitality of the collective body (Bakhtin 11–12). During carnival, the ordinary social order is suspended:

kings can be mocked, priests parodied, and the sacred treated with irreverence, precisely because the event is bounded in time and sanctioned by tradition.

Comparable structures recur outside the European context that first prompted Bakhtin's theory. The vidushaka, or court jester, of classical Sanskrit drama is licensed to mock kings and Brahmins in ways no other character may, functioning as a controlled outlet for social critique within an otherwise rigidly hierarchical dramatic form. Festivals such as Holi, with their temporary inversion of social distance, license teasing, mock insults, and role reversal between social unequals for the duration of the celebration. In each case, what Bakhtin calls billingsgate, that is, ritualized cursing, mock abuse, and exaggerated praise, performs real cultural work: it lets a community rehearse the transgression of its own rules under conditions that guarantee the rules will be restored once the festival ends. The folk culture of humor is therefore not merely a release valve for suppressed grievance; it is one of the mechanisms by which a community periodically tests, and thereby reaffirms, the boundaries of its own order.

5. Ownership Without Author : Collectivity as Genre :

A further distinguishing feature of folk literature is its characteristic indifference to individual authorship. Where a modern literary text is anchored to a named author who claims legal and reputational ownership of it, a folk song, proverb, or tale is understood to belong to the group that keeps it in circulation rather than to whichever individual happened to perform, adapt, or first compose a given version. This is not evidence of forgetfulness or of a primitive stage preceding "real" authorship; it reflects a different theory of where meaning resides. If a song's value lies in its capacity to be re-sung by successive generations in changing circumstances, then attaching it permanently to one composer's name would work against its function, fixing as private property what the community needs to treat as shared inheritance.

This collective orientation extends beyond the ownership of texts to the social occasions the texts serve. Harvest songs, wedding songs, and lullabies are typically sung in chorus rather than solo, and life-cycle rituals such as birth, marriage, and death are treated as occasions for the whole community's participation rather than a private family's alone; in many rural settings, for instance, a single household's bereavement suspends ordinary labor and commerce across the wider settlement for a period of mourning. Long narrative ballads such as the North Indian Alha-Udal cycle, sung by successive generations of professional and semi-professional performers without any stable single-author text, illustrate the same principle at epic scale: the ballad survives not despite having no fixed author but because it has none, which allows each generation of singers to keep it responsive to present audiences rather than treating it as a closed, inheritable estate. Contemporary frameworks for protecting "intangible cultural heritage" have had to invent new legal categories precisely because

conventional intellectual-property law, built around identifiable individual authors and fixed original expressions, was not designed to accommodate traditions whose very identity depends on being continually and collectively rewritten.

6. Vernacular as Vehicle : The Bhakti Saints of Maharashtra :

The Varkari Bhakti tradition of Maharashtra offers a concentrated example of folk language operating simultaneously as devotion, literature, and social argument. Beginning in the medieval period, saint-poets associated with the pilgrimage cult of the deity Vitthala at Pandharpur composed their hymns not in Sanskrit, the prestige language controlled by Brahmin religious authorities, but in Marathi, the spoken language of peasants, weavers, tailors, and other working communities (Namdev; Tukaram). Namdev, a tailor by trade, used simply worded praise-songs and a devotional style called *samkirtana* that were accessible to listeners with no formal education, helping to establish Marathi rather than Sanskrit as a legitimate vehicle for serious religious expression (Namdev). Tukaram, writing a century and more later, extended this vernacular commitment through the *abhang*, a short devotional lyric built from plain, often repetitive diction; tradition holds that his use of Marathi for religious composition provoked hostility from Brahmin authorities who considered themselves the sole legitimate interpreters of scripture (Tukaram).

Chokhamela, born into the Mahar community that was treated as untouchable within the caste hierarchy of his time, represents an even sharper instance of vernacular folk form as social protest. Composing in the *abhang*, Chokhamela described, in language any listener could follow, the lived experience of exclusion from temple worship and from ordinary village space, converting the fact of caste discrimination into devotional testimony rather than silent endurance; his poetry is now widely read as an early Dalit voice within Marathi literature. Alongside the *abhang*, the tradition developed the *bharud*, a semi-dramatic, often satirical devotional song later elaborated by the sixteenth-century saint Eknath, and the *gavalan*, a genre of devotional songs framed as the everyday speech of milkmaids, which folds domestic and pastoral imagery into theological argument. What unites these forms is a shared strategic choice: by composing in the rhythms, vocabulary, and performance conventions of folk song rather than in Sanskrit scholastic verse, the Varkari saints made theology, and implicitly social critique, available to audiences that formal religious institutions had excluded. Vernacular folk form here is not a simplification of doctrine for an unlettered audience; it is the deliberate selection of a medium whose openness to communal performance and reinterpretation was itself part of the argument being made.

7. Conclusion :

Read together, the oral-formulaic instability described by Lord and Ong, Dundes's catalogue of compact folk-speech genres, Bakhtin's account of carnivalesque laughter, the community's

characteristic indifference to individual authorship, and the vernacular strategy of the Maharashtrian Bhakti saints point toward a single conclusion: folklore's refusal to hold still is not a defect to be corrected by archiving but the very mechanism of its cultural survival. A tradition that could be fixed once and for all would also be a tradition that had stopped needing its community; it is precisely because each retelling, each joke, each hymn must be re-authored by present speakers and present listeners that folk language remains capable of addressing present concerns, from communal identity and humor to caste and exclusion. To study folklore seriously, then, is not to catalogue what a community once said, but to observe a community in the ongoing act of deciding, generation by generation, what its words are for.

Works Cited :

- Bakhtin, Mikhail. *Rabelais and His World*. Translated by Hélène Iswolsky, Indiana University Press, 1984.
- Dundes, Alan. *The Study of Folklore*. Prentice-Hall, 1965.
- Finnegan, Ruth. *Oral Literature in Africa*. Clarendon Press, 1970.
- Lord, Albert B. *The Singer of Tales*. Harvard University Press, 1960.
- Ong, Walter J. *Orality and Literacy: The Technologizing of the Word*. Methuen, 1982.
- Zumthor, Paul. *Oral Poetry: An Introduction*. Translated by Kathryn Murphy-Judy, University of Minnesota Press, 1990.

भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी का एकीकरण एवं माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता के प्रति अभिवृत्ति

संतोष कुमार उपाध्याय, शोध छात्र

डॉ. (प्रो.) उमेश प्रसाद यादव, शोध-निर्देशक, विभागाध्यक्ष,

शिक्षक-शिक्षा विभाग, जवाहरलाल नेहरू स्मारक पी.जी. कॉलेज, महाराजगंज,

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर (उ.प्र.)

सारांश (Abstract)

वर्तमान समय में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology-ICT) ने शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं में व्यापक परिवर्तन किया है। डिजिटल तकनीकों के प्रभावी उपयोग ने शिक्षा को अधिक सुलभ, समावेशी, शिक्षार्थी-केंद्रित एवं गुणवत्तापूर्ण बनाने की दिशा में नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। भारत सरकार द्वारा संचालित डिजिटल इंडिया, DIKSHA, SWAYAM, PM e-VIDYA तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 जैसी पहलों ने शिक्षा के डिजिटलीकरण को नई गति प्रदान की है। इन पहलों की सफलता का प्रमुख आधार शिक्षक हैं, क्योंकि प्रौद्योगिकी का वास्तविक एकीकरण तभी संभव है जब शिक्षक डिजिटल रूप से दक्ष हों तथा डिजिटल संसाधनों के उपयोग के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हों। माध्यमिक स्तर शिक्षा का वह महत्वपूर्ण चरण है जहाँ विद्यार्थियों में तार्किक चिंतन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, समस्या-समाधान क्षमता तथा डिजिटल दक्षताओं का विकास किया जाता है। इस स्तर के शिक्षक यदि डिजिटल साक्षरता से परिपूर्ण होंगे, तो वे आधुनिक शिक्षण-विधियों, ऑनलाइन संसाधनों, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरणों तथा मिश्रित शिक्षण (Blended Learning) का प्रभावी उपयोग करते हुए अधिगम को अधिक रोचक एवं परिणामोन्मुख बना सकेंगे।

प्रस्तुत शोध-पत्र में भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी के एकीकरण की अवधारणा, आवश्यकता एवं वर्तमान परिदृश्य का विश्लेषण किया गया है। साथ ही माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता, उसके प्रति उनकी अभिवृत्ति, प्रभावकारी कारकों, प्रमुख चुनौतियों तथा संभावित समाधानों का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शिक्षक प्रशिक्षण, डिजिटल अवसंरचना, सतत व्यावसायिक विकास तथा नीति-आधारित सहयोग के माध्यम से ही भारतीय शिक्षा प्रणाली को डिजिटल रूप से सशक्त एवं भविष्य-उन्मुख बनाया जा सकता है।

मुख्य शब्द : भारतीय शिक्षा प्रणाली, प्रौद्योगिकी का एकीकरण, डिजिटल साक्षरता, माध्यमिक स्तर के शिक्षक, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020।

1. प्रस्तावना :

इक्कीसवीं शताब्दी को ज्ञान, सूचना एवं प्रौद्योगिकी का युग माना जाता है। वैश्वीकरण, डिजिटलीकरण तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) के तीव्र विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है, जिनमें शिक्षा का क्षेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आज शिक्षा केवल ज्ञान के संप्रेषण का माध्यम न रहकर कौशल विकास, नवाचार, समस्या-समाधान, सहयोगात्मक अधिगम तथा आजीवन अधिगम (Lifelong Learning) की प्रक्रिया बन चुकी है। इस परिवर्तन के केंद्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology-ICT) की निर्णायक भूमिका है, जिसने शिक्षण-अधिगम की पारंपरिक अवधारणाओं को परिवर्तित करते हुए शिक्षा को अधिक प्रभावी, सहभागी, समावेशी एवं शिक्षार्थी-केंद्रित बनाया है।

भारत में शिक्षा के डिजिटलीकरण को गति प्रदान करने के उद्देश्य से केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अनेक महत्वपूर्ण पहलें की गई हैं। डिजिटल इंडिया, DIKSHA, SWAYAM, SWAYAM PRABHA, PM e-VIDYA, ई-पाठशाला तथा राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय जैसे कार्यक्रमों ने गुणवत्तापूर्ण डिजिटल शैक्षिक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि शिक्षा की गुणवत्ता, समानता, समावेशन तथा नवाचार को सुदृढ़ बनाने के लिए प्रौद्योगिकी का योजनाबद्ध एवं प्रभावी एकीकरण आवश्यक है। इसी प्रकार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2023 (NCF-2023) में भी डिजिटल दक्षताओं, प्रौद्योगिकी-सक्षम शिक्षण तथा शिक्षक क्षमता निर्माण पर विशेष बल दिया गया है।

प्रौद्योगिकी का एकीकरण केवल कंप्यूटर, स्मार्ट बोर्ड अथवा इंटरनेट के उपयोग तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शिक्षण, अधिगम, मूल्यांकन, शैक्षिक प्रबंधन तथा व्यावसायिक विकास की संपूर्ण प्रक्रिया में डिजिटल संसाधनों के उद्देश्यपूर्ण एवं प्रभावी उपयोग से संबंधित है। आधुनिक शिक्षण में ब्लेंडेड लर्निंग (Blended Learning), फ्लिप्ड क्लासरूम (Flipped Classroom), ऑनलाइन मूल्यांकन, वर्चुअल प्रयोगशालाएँ तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित अधिगम जैसे नवाचार तेजी से अपनाए जा रहे हैं। इन सभी नवाचारों की सफलता का प्रमुख आधार शिक्षक हैं।

माध्यमिक स्तर शिक्षा का वह महत्वपूर्ण चरण है जहाँ विद्यार्थियों में तार्किक चिंतन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, डिजिटल दक्षता, रचनात्मकता तथा भविष्य के व्यावसायिक कौशलों का विकास होता है। इस स्तर के शिक्षक केवल विषय-विशेषज्ञ नहीं होते, बल्कि अधिगम के मार्गदर्शक, प्रेरक एवं नवाचार के संवाहक भी होते हैं। यदि शिक्षक डिजिटल रूप से साक्षर होंगे तथा प्रौद्योगिकी के उपयोग के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखेंगे, तो वे विद्यार्थियों को इक्कीसवीं शताब्दी की आवश्यक दक्षताओं से युक्त कर सकेंगे।

डिजिटल साक्षरता का अर्थ केवल डिजिटल उपकरणों का संचालन करना नहीं है, बल्कि सूचना का समुचित चयन, डिजिटल सामग्री का निर्माण, ऑनलाइन संचार, साइबर सुरक्षा, डिजिटल नैतिकता तथा तकनीक का उत्तरदायित्वपूर्ण उपयोग करना भी है। अतः शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता तथा उसके प्रति उनकी अभिवृत्ति शिक्षा में प्रौद्योगिकी के सफल एकीकरण की मूल आधारशिला है। यदि शिक्षक नई तकनीकों को अपनाने के प्रति सकारात्मक होंगे, तो वे शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, नवाचारी एवं परिणामोन्मुख बना सकेंगे।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी के एकीकरण की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करते हुए माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता के प्रति अभिवृत्ति का समालोचनात्मक अध्ययन करना है। साथ ही अध्ययन में उन प्रमुख चुनौतियों एवं संभावनाओं पर भी विचार किया गया है, जो भविष्य में

डिजिटल शिक्षा को अधिक समावेशी, गुणवत्तापूर्ण एवं प्रभावशाली बनाने में सहायक हो सकती हैं। यह शोध-पत्र नीति-निर्माताओं, शिक्षक-शिक्षकों, विद्यालय प्रशासकों तथा शोधार्थियों के लिए उपयोगी मार्गदर्शन प्रदान करने का प्रयास करता है।

2. भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी का एकीकरण : अवधारणा, आवश्यकता एवं वर्तमान परिदृश्य :

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास का आधार होती है। समय के साथ समाज की आवश्यकताओं, ज्ञान के स्वरूप तथा तकनीकी विकास के अनुरूप शिक्षा प्रणाली में भी निरंतर परिवर्तन होते रहे हैं। वर्तमान समय में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology-ICT) ने शिक्षा के प्रत्येक आयाम 'शिक्षण, अधिगम, मूल्यांकन, शैक्षिक प्रशासन तथा शोध' को गहराई से प्रभावित किया है। फलस्वरूप प्रौद्योगिकी का एकीकरण (Technology Integration) आधुनिक शिक्षा प्रणाली की एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया है।

प्रौद्योगिकी का एकीकरण केवल कंप्यूटर, इंटरनेट, स्मार्ट बोर्ड अथवा डिजिटल उपकरणों के उपयोग तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ऐसी समग्र शैक्षिक प्रक्रिया है जिसमें तकनीकी संसाधनों का उद्देश्यपूर्ण, योजनाबद्ध एवं प्रभावी उपयोग कर शिक्षण-अधिगम की गुणवत्ता में सुधार किया जाता है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता, समस्या-समाधान क्षमता, सहयोगात्मक अधिगम तथा डिजिटल दक्षताओं का विकास करना है। इस प्रकार प्रौद्योगिकी शिक्षा को शिक्षक-केंद्रित व्यवस्था से शिक्षार्थी-केंद्रित व्यवस्था की ओर अग्रसर करती है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी के समावेशन की आवश्यकता अनेक कारणों से अनुभव की गई। बढ़ती छात्र संख्या, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकता, भौगोलिक विषमता, संसाधनों की असमान उपलब्धता तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा ने डिजिटल शिक्षा को एक प्रभावी विकल्प के रूप में स्थापित किया। विशेष रूप से कोविड-19 महामारी के दौरान जब विद्यालय एवं महाविद्यालय बंद हुए, तब ऑनलाइन शिक्षा ने शिक्षण-अधिगम की निरंतरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस अनुभव ने यह स्पष्ट कर दिया कि भविष्य की शिक्षा प्रणाली में डिजिटल तकनीक केवल सहायक साधन नहीं, बल्कि शिक्षा का अभिन्न अंग होगी।

भारत सरकार ने शिक्षा में प्रौद्योगिकी के एकीकरण को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रम प्रारम्भ किए हैं। DIKSHA (Digital Infrastructure for Knowledge Sharing) शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को डिजिटल पाठ्य सामग्री, ई-संसाधन तथा प्रशिक्षण उपलब्ध कराता है। SWAYAM एवं SWAYAM PRABHA के माध्यम से गुणवत्तापूर्ण ऑनलाइन पाठ्यक्रम और व्याख्यान उपलब्ध कराए जा रहे हैं। PM e-VIDYA, ई-पाठशाला, राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय, NISHTHA तथा विद्यांजलि जैसी पहलें शिक्षा की गुणवत्ता एवं पहुँच को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने शिक्षा में प्रौद्योगिकी को परिवर्तनकारी माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। नीति में स्पष्ट किया गया है कि डिजिटल तकनीकों के माध्यम से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को देश के प्रत्येक विद्यार्थी तक पहुँचाया जा सकता है। इसके अंतर्गत डिजिटल अवसंरचना का विकास, ई-सामग्री का निर्माण, ऑनलाइन एवं मिश्रित शिक्षण (Blended Learning), शिक्षक प्रशिक्षण तथा भारतीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री के विकास पर विशेष बल दिया गया है। इसी प्रकार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2023 (NCF-2023) शिक्षकों में डिजिटल दक्षताओं के विकास तथा प्रौद्योगिकी-सक्षम शिक्षण को विद्यालयी शिक्षा का अभिन्न अंग मानती है।

प्रौद्योगिकी के एकीकरण का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष शिक्षक की भूमिका है। आधुनिक कक्षा में शिक्षक केवल ज्ञान का स्रोत नहीं, बल्कि अधिगम का सुगमकर्ता (Facilitator), मार्गदर्शक तथा नवाचार का प्रेरक होता है। इसलिए शिक्षक की डिजिटल दक्षता, तकनीकी आत्मविश्वास तथा सकारात्मक अभिवृत्ति प्रौद्योगिकी के प्रभावी उपयोग की पूर्वशर्त है। यदि शिक्षक डिजिटल संसाधनों के उपयोग में दक्ष होंगे, तो वे विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षण को अधिक प्रभावी एवं परिणामोन्मुख बना सकेंगे।

वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), मशीन लर्निंग, वर्चुअल एवं ऑगमेंटेड रियलिटी, डिजिटल मूल्यांकन तथा लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम (LMS) जैसी नवीन तकनीकों ने शिक्षा के क्षेत्र में नए अवसर प्रदान किए हैं। इन तकनीकों के माध्यम से व्यक्तिगत अधिगम (Personalized Learning), त्वरित प्रतिपुष्टि (Immediate Feedback), डेटा-आधारित शिक्षण तथा समावेशी शिक्षा को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। तथापि इन तकनीकों का सफल उपयोग तभी संभव है जब शिक्षकों को निरंतर प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता तथा उपयुक्त संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ।

यद्यपि भारत ने डिजिटल शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी डिजिटल विभाजन, इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या, संसाधनों की असमान उपलब्धता, साइबर सुरक्षा तथा तकनीकी प्रशिक्षण की कमी जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। इन चुनौतियों के समाधान के लिए सरकार, शैक्षिक संस्थानों, शिक्षक-शिक्षा संस्थानों तथा समाज के बीच समन्वित प्रयास आवश्यक हैं। तभी प्रौद्योगिकी का वास्तविक एकीकरण संभव होगा और शिक्षा प्रणाली अधिक समावेशी, गुणवत्तापूर्ण तथा भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित हो सकेगी।

3. माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता के प्रति अभिवृत्ति : सैद्धान्तिक आधार, प्रभावकारी कारक एवं शोधपरक विश्लेषण :

भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी के सफल एकीकरण का सबसे महत्वपूर्ण आधार शिक्षक हैं। किसी भी शैक्षिक नवाचार की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शिक्षक उसे किस सीमा तक स्वीकार करते हैं तथा अपने शिक्षण-अधिगम में उसका प्रभावी उपयोग करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने भी स्पष्ट किया है कि शिक्षा में डिजिटल परिवर्तन तभी सफल होगा, जब शिक्षक डिजिटल रूप से सक्षम, नवाचारोन्मुख तथा सतत अधिगम के प्रति प्रतिबद्ध होंगे। इसलिए माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता तथा उसके प्रति उनकी अभिवृत्ति का अध्ययन वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक हो गया है।

डिजिटल साक्षरता (Digital Literacy) का आशय केवल कंप्यूटर या स्मार्टफोन का संचालन करना नहीं है, बल्कि डिजिटल उपकरणों, इंटरनेट, ऑनलाइन शैक्षिक संसाधनों, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित अनुप्रयोगों, डिजिटल संचार, साइबर सुरक्षा तथा सूचना के नैतिक, सुरक्षित एवं प्रभावी उपयोग से संबंधित ज्ञान, कौशल और दृष्टिकोण के समन्वित विकास से है। एक डिजिटल रूप से साक्षर शिक्षक डिजिटल सामग्री का निर्माण कर सकता है, ऑनलाइन कक्षाओं का प्रभावी संचालन कर सकता है, ई-मूल्यांकन कर सकता है तथा विद्यार्थियों को डिजिटल नागरिकता (Digital Citizenship) के मूल्यों से भी परिचित करा सकता है।

माध्यमिक स्तर शिक्षा का वह चरण है जहाँ विद्यार्थियों में तार्किक चिंतन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, समस्या-समाधान क्षमता तथा तकनीकी दक्षताओं का विकास किया जाता है। इसलिए इस स्तर के शिक्षकों का डिजिटल रूप से दक्ष होना अत्यंत आवश्यक है। डिजिटल रूप से सक्षम शिक्षक आधुनिक शिक्षण तकनीकों, जैसे मिश्रित शिक्षण (Blended Learning), फ्लिप्ड क्लासरूम (Flipped Classroom), परियोजना-आधारित अधिगम

(Project-Based Learning) तथा सहयोगात्मक अधिगम (Collaborative Learning) का प्रभावी उपयोग कर विद्यार्थियों की सीखने की गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं।

अभिवृत्ति (Attitude) किसी व्यक्ति की मानसिक तैयारी अथवा किसी विषय के प्रति उसकी सकारात्मक या नकारात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त करती है। शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता के प्रति अभिवृत्ति से आशय उनके उस दृष्टिकोण से है जिसके आधार पर वे डिजिटल तकनीकों को स्वीकार करते हैं, उनका उपयोग करते हैं तथा उन्हें शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अंग बनाते हैं। जिन शिक्षकों की अभिवृत्ति सकारात्मक होती है, वे नई तकनीकों को सीखने, प्रयोग करने तथा अपने शिक्षण में समाहित करने के प्रति अधिक उत्साहित रहते हैं। इसके विपरीत नकारात्मक अभिवृत्ति वाले शिक्षक प्रौद्योगिकी को अतिरिक्त कार्यभार मानते हैं और उसका सीमित उपयोग करते हैं।

शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता एवं अभिवृत्ति अनेक कारकों से प्रभावित होती है। इनमें आयु, शैक्षिक योग्यता, शिक्षण अनुभव, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) का प्रशिक्षण, विद्यालय में उपलब्ध डिजिटल संसाधन, इंटरनेट की उपलब्धता, संस्थागत सहयोग, तकनीकी आत्मविश्वास (Self-Efficacy), व्यावसायिक विकास के अवसर तथा नवाचार के प्रति रुचि प्रमुख हैं। जिन शिक्षकों को नियमित प्रशिक्षण प्राप्त होता है तथा जिन विद्यालयों में पर्याप्त डिजिटल संसाधन उपलब्ध होते हैं, उनमें प्रौद्योगिकी के उपयोग के प्रति अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति पाई जाती है।

कोविड-19 महामारी के दौरान ऑनलाइन शिक्षा के व्यापक प्रयोग ने शिक्षकों की डिजिटल दक्षता के महत्व को और अधिक स्पष्ट कर दिया। अनेक शिक्षकों ने Google Classroom, Google Meet, Microsoft Teams, Zoom, DIKSHA तथा अन्य डिजिटल मंचों का सफलतापूर्वक उपयोग कर शिक्षण कार्य को निरंतर बनाए रखा। इससे यह सिद्ध हुआ कि उचित प्रशिक्षण, संसाधन एवं संस्थागत सहयोग मिलने पर शिक्षक नई तकनीकों को सहजता से अपनाने में सक्षम हैं।

आधुनिक शैक्षिक अनुसंधानों में TPACK (Technological Pedagogical Content Knowledge) मॉडल को डिजिटल शिक्षण की एक प्रभावी सैद्धान्तिक आधारशिला माना गया है। यह मॉडल स्पष्ट करता है कि प्रभावी शिक्षक वह है जो विषय-वस्तु ज्ञान (Content Knowledge), शिक्षण ज्ञान (Pedagogical Knowledge) तथा तकनीकी ज्ञान (Technological Knowledge) का समन्वित उपयोग कर सके। इसी प्रकार SAMR Model यह बताता है कि प्रौद्योगिकी का उपयोग केवल पारंपरिक कार्यों के स्थानापन्न (Substitution) के रूप में नहीं, बल्कि शिक्षण में परिवर्तन (Transformation) और नवाचार (Redefinition) के स्तर तक होना चाहिए। इन दोनों मॉडलों के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल साक्षरता केवल तकनीकी दक्षता नहीं, बल्कि प्रभावी शिक्षण की एक समग्र व्यावसायिक क्षमता है।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी के प्रभावी एकीकरण के लिए माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता तथा उसके प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति अत्यंत आवश्यक है। डिजिटल रूप से सक्षम शिक्षक न केवल स्वयं आधुनिक शिक्षण विधियों का उपयोग करते हैं, बल्कि विद्यार्थियों में रचनात्मकता, आलोचनात्मक चिंतन, सहयोगात्मक अधिगम तथा उत्तरदायी डिजिटल नागरिकता का भी विकास करते हैं। इसलिए शिक्षक शिक्षा संस्थानों, विद्यालयों तथा नीति-निर्माताओं को शिक्षक क्षमता निर्माण, डिजिटल प्रशिक्षण तथा सतत व्यावसायिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिए।

4. भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी एकीकरण की चुनौतियाँ, संभावनाएँ, सुझाव एवं निष्कर्ष :

भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी का एकीकरण शिक्षा की गुणवत्ता, समावेशिता तथा नवाचार को सुदृढ़ करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यद्यपि केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा डिजिटल शिक्षा के विस्तार हेतु अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं, तथापि इनके प्रभावी क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। विशेष रूप से माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता, शिक्षकों का तकनीकी प्रशिक्षण तथा डिजिटल अवसंरचना की गुणवत्ता जैसे कारक प्रौद्योगिकी के सफल एकीकरण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

भारत जैसे विशाल एवं विविधतापूर्ण देश में डिजिटल विभाजन (Digital Divide) सबसे बड़ी चुनौती है। ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों के अनेक विद्यालय आज भी उच्च गति इंटरनेट, स्मार्ट कक्षाओं, कंप्यूटर प्रयोगशालाओं तथा आधुनिक डिजिटल उपकरणों से वंचित हैं। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को डिजिटल संसाधनों का समान अवसर प्राप्त नहीं हो पाता। यह स्थिति शिक्षा में समानता (Equity) तथा समावेशन (Inclusion) के उद्देश्य को प्रभावित करती है।

दूसरी प्रमुख चुनौती शिक्षकों के सतत व्यावसायिक विकास (Continuous Professional Development) से जुड़ी है। अनेक शिक्षक प्रारम्भिक ICT प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद नवीन डिजिटल उपकरणों, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), डिजिटल मूल्यांकन, लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम (LMS) तथा डिजिटल सामग्री निर्माण के क्षेत्र में नियमित प्रशिक्षण से वंचित रह जाते हैं। फलस्वरूप उपलब्ध संसाधनों का भी प्रभावी उपयोग नहीं हो पाता। इससे स्पष्ट होता है कि डिजिटल शिक्षा की सफलता केवल तकनीकी उपकरणों पर नहीं, बल्कि शिक्षक की दक्षता और आत्मविश्वास पर निर्भर करती है।

एक अन्य महत्वपूर्ण चुनौती साइबर सुरक्षा एवं डिजिटल नैतिकता से संबंधित है। ऑनलाइन शिक्षण के बढ़ते उपयोग के साथ डेटा सुरक्षा, गोपनीयता, साइबर अपराध, फर्जी सूचनाएँ तथा डिजिटल दुरुपयोग जैसी समस्याएँ भी बढ़ी हैं। इसलिए विद्यार्थियों के साथ-साथ शिक्षकों के लिए भी साइबर सुरक्षा, डिजिटल नागरिकता (Digital Citizenship) तथा डिजिटल नैतिकता का प्रशिक्षण आवश्यक हो गया है।

इन चुनौतियों के बावजूद भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी एकीकरण की संभावनाएँ अत्यंत व्यापक हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), मशीन लर्निंग, आभासी एवं संवर्धित वास्तविकता (Virtual and Augmented Reality), बिग डेटा (Big Data), अनुकूलनशील अधिगम (Adaptive Learning) तथा मुक्त शैक्षिक संसाधन (Open Educational Resources) भविष्य की शिक्षा को अधिक प्रभावी, लचीला एवं शिक्षार्थी-केंद्रित बना सकते हैं। इन तकनीकों के माध्यम से प्रत्येक विद्यार्थी की व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं सीखने की गति के अनुरूप शिक्षण उपलब्ध कराया जा सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने शिक्षा में ब्लेंडेड लर्निंग (Blended Learning), अनुभवात्मक अधिगम (Experiential Learning) तथा प्रौद्योगिकी-सक्षम शिक्षण को विशेष महत्व दिया है। यदि इन नीतिगत प्रावधानों का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाए, तो भारतीय शिक्षा प्रणाली वैश्विक गुणवत्ता मानकों के अनुरूप विकसित हो सकती है। विशेष रूप से माध्यमिक स्तर पर डिजिटल साक्षरता को विद्यालयी संस्कृति का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थी उच्च शिक्षा, रोजगार तथा डिजिटल समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को विकसित कर सकें।

सुझाव :

प्रौद्योगिकी के प्रभावी एकीकरण तथा माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं –

1. प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में उच्च गति इंटरनेट, स्मार्ट कक्षाएँ, कंप्यूटर प्रयोगशालाएँ तथा आधुनिक डिजिटल उपकरण उपलब्ध कराए जाएँ।
2. सभी शिक्षकों के लिए नियमित ICT, AI आधारित शिक्षण, डिजिटल मूल्यांकन तथा डिजिटल शिक्षणशास्त्र पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
3. शिक्षक-शिक्षा संस्थानों के पाठ्यक्रम में डिजिटल साक्षरता एवं शैक्षिक प्रौद्योगिकी को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाए।
4. DIKSHA, SWAYAM, PM e-VIDYA तथा अन्य राष्ट्रीय डिजिटल मंचों के प्रभावी उपयोग हेतु व्यवहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाए।
5. भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण डिजिटल शिक्षण सामग्री का विकास किया जाए ताकि स्थानीय स्तर पर भी डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा मिल सके।
6. साइबर सुरक्षा, डेटा गोपनीयता एवं डिजिटल नैतिकता के प्रति शिक्षकों और विद्यार्थियों में नियमित जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
7. विद्यालयों में प्रौद्योगिकी के उपयोग की समय-समय पर निगरानी, मूल्यांकन तथा प्रभाव अध्ययन किया जाए।
8. सरकार, विश्वविद्यालय, शिक्षक-शिक्षा संस्थान तथा विद्यालयों के मध्य समन्वित सहयोग स्थापित कर डिजिटल शिक्षा को सतत एवं प्रभावी बनाया जाए।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रौद्योगिकी का एकीकरण केवल तकनीकी परिवर्तन नहीं, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता, समानता, नवाचार एवं समावेशिता को सुदृढ़ करने की एक व्यापक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की सफलता का सबसे महत्वपूर्ण आधार माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की डिजिटल साक्षरता तथा उसके प्रति उनकी सकारात्मक अभिवृत्ति है। यदि शिक्षक तकनीकी रूप से दक्ष, नवाचारोन्मुख एवं सतत अधिगम के प्रति प्रतिबद्ध होंगे, तो वे विद्यार्थियों में इक्कीसवीं शताब्दी की आवश्यक दक्षताओं का प्रभावी विकास कर सकेंगे। अतः आवश्यक है कि डिजिटल अवसंरचना के विकास के साथ-साथ शिक्षक क्षमता निर्माण, सतत प्रशिक्षण तथा नीति-आधारित सहयोग को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जाए। यही प्रयास भारत को ज्ञान-आधारित, आत्मनिर्भर एवं डिजिटल रूप से सशक्त राष्ट्र बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

संदर्भ (References)

- Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Ministry of Education, Government of India.
- National Council of Educational Research and Training. (2023). *National Curriculum Framework for School Education (NCF-SE 2023)*. NCERT.

- National Council of Educational Research and Training. (2005). *National Curriculum Framework 2005*. NCERT.
- National Council of Educational Research and Training. (2022). *ICT in School Education*. NCERT.
- Ministry of Education. (2021). *Digital Education Initiatives*. Government of India.
- Ministry of Education. (2022). *PM eVIDYA: One Nation One Digital Platform*. Government of India.
- DIKSHA. (2023). *Digital Infrastructure for Knowledge Sharing*. Ministry of Education.
- SWAYAM. (2023). *Study Webs of Active Learning for Young Aspiring Minds*. Ministry of Education.
- UNESCO. (2018). *ICT Competency Framework for Teachers (Version 3)*. UNESCO.
- UNESCO. (2021). *Reimagining Our Futures Together: A New Social Contract for Education*. UNESCO.
- OECD. (2020). *Education in the Digital Age*. OECD Publishing.
- World Bank. (2020). *Remote Learning During COVID-19*. World Bank.
- Mishra, P., & Koehler, M. J. (2006). Technological Pedagogical Content Knowledge: A Framework for Teacher Knowledge. *Teachers College Record*, 108(6), 1017–1054.
- Koehler, M. J., Mishra, P., & Cain, W. (2013). What Is Technological Pedagogical Content Knowledge (TPACK)? *Journal of Education*, 193(3), 13–19.
- Prensky, M. (2001). Digital Natives, Digital Immigrants. *On the Horizon*, 9(5), 1–6.
- Selwyn, N. (2016). *Education and Technology: Key Issues and Debates*. Bloomsbury Academic.
- Siemens, G. (2005). Connectivism: A Learning Theory for the Digital Age.
- Sharma, R. C. (2018). *ICT in Education*. Shipra Publications, New Delhi.
- University Grants Commission. (2021). *Guidelines for Digital Learning in Higher Education*. UGC, New Delhi.
- NITI Aayog. (2021). *Digital India: Transforming Education*. Government of India.
- Kumar, K. (2019). *Educational Technology and Digital Learning*. New Delhi: APH Publishing.
- Aggarwal, J. C. (2015). *Essentials of Educational Technology*. New Delhi: Vikas Publishing House.
- Mangal, S. K., & Mangal, U. (2019). *Essentials of Educational Technology*. PHI Learning.
- Pandey, K. P. (2018). शैक्षिक प्रौद्योगिकी. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
- Best, J. W., & Kahn, J. V. (2017). *Research in Education* (10th ed.). Pearson Education.

Email: gurujiclassesmw@gmail.com

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा



Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFEREED RESEARCH JOURNAL

Website :

www.bohalshodhmanjusha.com

Email : grsbohal@gmail.com

Editor :

Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान

द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित



ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com

Email : grngobwn@gmail.com

Office : 8708822674

Editor :

Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tania University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ

द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639

Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : <https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Executive Editor : **Dr. Varsha Rani** M. 9671904323

Managing Editor : **Dr. Mukesh Verma** M. 9627912535

Editor :

Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा

जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540

Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :

Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :

Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से प्रकाशित करवाकर कार्यालय से

ISSN 2321:0540

